श्री श्री १०८ श्री स्वामी भावानन्दजी महाराज और उनका शिष्य मण्डल।

श्री हंसराज बच्छराज नाहटा
सरदारशहर निवासी
द्वारा
जैन विश्व भारती, लाडनू
को सप्रेम भेंट –

श्री परमात्मने नमः ।

अथ-त्रिकाण्ड-सार-संग्रहः

* अथ मंगलाचरणम् *

ॐ अखण्ड मण्डलाकारं, व्याप्तं येन चराचरम् ।
तत्पदं दर्शितं येन, तस्मै श्री गुरवे नमः ॥

गुरु गीता श्लोक ॥ ४५ ॥

भाषा—अपार अखण्ड आकृतिवाला यह चराचर जगत् जिसने व्याप्तकर रखा है उस ब्रह्मपद को जिसने दर्शाया उस गुरु महाराज के लिये नमस्कार हो ॥ १ ॥

* अथ-कर्म-काण्डम् *

[पंचमहायज्ञ-वर्णनम्]

अध्यापनं ब्रह्मयज्ञः, पितृयज्ञस्तु तर्पणम् ।
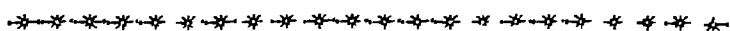
होमो दैवो बलिर्भौतो, नृयज्ञोऽतिथि पूजनम् ॥१

मनु अ० ३ श्लोक ॥७॥

भाषा–वेद का पठन पाठन ब्रह्मयज्ञ, अन्न या जल से पितरों का तर्पण करना पितृयज्ञ, और होम करना देवयज्ञ, जीवों को अन्न की बली देना भूत यज्ञ, और अथिति का आदर-सत्कार करना नृयज्ञ है ॥ २ ॥

ब्रह्म यज्ञ का फल।

यः पठेति लिखति पश्यति परिपृच्छति पण्डि-तानुपाश्रयति । तस्य दिवाकर किरणै र्नलिनी दलमिव विकास्ते बुद्धिः ॥३॥

भाषा–जो पढता है, लिखता है, देखता है, पूछता है, विद्वानों का संग करता उसकी बुद्धि का इस प्रकार विकास होता है, जैसे सूर्य की किरण से कमल ॥ ३ ॥ योग दर्शन में कहा है---

स्वाध्यायादिष्ट देवता संप्रयोगः ॥४॥

* *
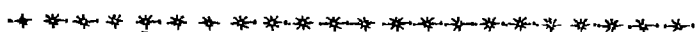
भाषा-स्वाध्याय की पूर्णता से इष्ट देव का दर्शन और अभीष्ट मनोरथ सिद्ध होता है, और देवता आप ही उस पर कृपा करता है ॥४॥

देव यज्ञ समय यज्ञ कर्ता के ध्यान की विधि-

आदित्प्रत्नस्यरेतसः उद्वयन्तमसस्परि ज्योतिः पश्यन्त उत्तर ᳪस्वः पश्यन्त उत्तरं देव देवत्रा सूर्यं मगन्म ज्योतिरुत्तममिति ज्योति रुत्तम मिति ॥५॥

छान्दोग्यो०पूर्वार्ध-खण्ड १७ मं०। ७ ।

भावार्थ-ज्योति तीन प्रकार की हैं, और उसके रहने के स्थान भी तीन हैं, एक ज्योति जो यज्ञ कर्ता के हृदय में है, दूसरी ज्योति सूर्य में है, और तीसरी ज्योति ब्रह्म रूप है। जो ज्योति हृदय में है, वही सूर्य में है, और जो सूर्य विषे है वही ब्रह्म विषे है, इस लिये तीनों ज्योतियों में समानता है और ऐसा ध्यान यज्ञ कर्ता करे ॥ ५ ॥

देव यज्ञ का फल ।

तस्मादग्निः समिधोयस्य सूर्यः सोमात्पर्जन्य

ओषधयः पृथिव्याम् पुमान् रेतः सिंचति
योषितायां बह्वीःप्रजाः पुरुषात्सम्प्रसूताः

द्वितीय मुण्डके खण्ड २ मं० ५

भाषा जिसके सूर्य और चन्द्र समिध हैं ऐसा स्वर्ग रूप प्रथम अग्नि उस परम पुरुष से उत्पन्न होता है और उस अग्नि से मेघ रूप द्वितीय अग्नि उत्पन्न होता है, तिस मेघ रूप द्वितीय अग्नि से पृथिवि रूप तृतीय अग्नि विषे अन्नादि ओषधिमान् और ओषधियों के परिणाम से पुरुष रूप चतुर्थ अग्नि उत्पन्न होता है वीर्य को स्त्री रूप पंचम अग्नि विषे सिंचन करता है इस क्रम से बहुत याने असंख्य ब्राह्मणादि सब प्रजा सम्यक् प्रकार उत्पन्न होती है ॥ ६ ॥

(पितृ यज्ञ की विधि और फल)

ऋतु कालाभिगामीस्यात्, स्वदार निरतःसदा॥
पर्व वर्जं व्रजेच्चैनां, तद्व्रतो रति काम्यया॥

भाषा -अपनी स्त्री में सन्तोषी पुरुष सदा ऋतुकाल गामी अर्थात् ऋतुकाल में गमन करने वाला हो ,और पत्नी व्रत हुआ सन्तान की कामना से अमावस्या आदि पर्व दिनों को छोड़ कर गमन करे ॥७॥

अभिवादन शीलस्य, नित्यं वृद्धोपिसेविनः।
चत्वारि तस्य वर्धन्ते, आयुर्विद्यायशोबलम् ॥

मनु० अ० २ = १२१

भाषा-नित्य बड़ों की सेवा करने वाले और नम्र होकर प्रणाम करने वालों की आयु, विद्या, यश, बल ये चारों बढ़ते हैं ॥८॥

अतिथि के लक्षण ।

विद्याविलाश मनसो धृत शील शिक्षाः, सत्य व्रताः रहित मान मलापहाराः ॥ संसार दुःख दलनेन सुभूषिता ये, धन्यानरा विहित कर्म परोपकारा

भषा- जिनका मन विद्या के विलाश में तत्पर है, जो

शील स्वभाव युक्त हैं सत्य ही जिनका व्रत है, जो अभिमान से रहित हैं, जो दूसरों के दोषों को दूर करने वाले हैं, संसार के दुःखों का नाश जिनका भूषण है— इस प्रकार जो परोपकार के कार्यों में ही लगे रहते हैं, उन मनुष्यों को धन्य है, और उन ही को अतिथि समझना चाहिये ॥९॥

अतिथि पूजा का फल ।

नवै स्वयंतदश्नीयात्, अतिथिं यन्नभोजयेत् ।
धन्यं यशस्यमायुष्यं, स्वर्ग्यं चातिथिपूजनम्॥

मनु अ० ॥ ३

भाषा -जो भोजन अतिथि को न कराया हो, वह भोजन आप स्वयं भी न करे पंक्ति भेद न होने दे, इस प्रकार कपट रहित होकर जो अतिथि की सेवा करते हैं, उन को धन, यश, दीर्घायु, और स्वर्ग प्राप्त होता है ॥१०॥

नकश्चनवसतौ प्रत्याचक्षीत तद्व्रतम् तस्माद्यया कया च विधयाबह्वन्नं प्राप्नुयात् आराध्यस्मा अन्नमित्या चक्षते एतद्वै मुखतोऽन्नं राद्धम्

* *

मुखतोऽस्मा अन्नं राध्यते एतद्वै मध्यतोऽन्न ँ राद्धम् मध्यतोऽस्मा अन्न ँ राध्यते एत- द्वाअन्ततोऽन्न ँ राद्धम् अन्ततोऽस्मा अन्न ँ राध्यते ॥

तैतरीयोपनिषद् भृगुवल्ली अनुवाक १० मं० १

भाषा—पृथिवी और आकाश की, जो पुरुष अन्न अन्नाद गुण करके उपासना करता है, उसके नियम के विधान कहते हैं, यदि कोई मनुष्य उसके घर में निवास करने के लिये प्राप्त हो जाये, तब उसका त्याग कदापि न करे, अर्थात् तिसको हटावे नहीं, उसके लिये अन्नअवश्य देवै, इस लिये येन केन करके वह अन्न का सग्रह करै और अति थियों को खिलावे॥ जो अतिथि की पूजा करके अतिथि को भोजन कराता है उस अन्नको दाता जितना वह अन्न देता है उससे हजार गुणा बल्कि लाखों गुणा अधिक अन्न जन्मान्तर में प्राप्त होता है और जिस अवस्था में देता है उसी २ अवस्था में उसको मिलता है, याने जो प्रथम अवस्था में अन्न का दान करता है, उसको जन्मान्तर
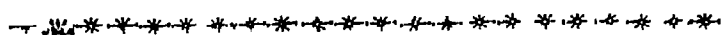
के प्रथम अवस्था में ही अन्न मिलता है, और जो मध्य अवस्था में दान करता है उसको मध्य में अन्न मिलता है, जो वृद्धावस्था में दान करता है उसको वृद्ध अवस्था में ही अन्न मिलता है ॥११॥

अतिथि की पूजा न करने से सर्वनाश।

ॐ आशा प्रतीक्षे सङ्गत ँ सूनृताञ्चेष्टा पूर्ते पुत्र पशूंश्च सर्वान् एतद् वृङ्क्ते पुरुषस्याल्पमेधसो यस्यानश्नन् वसति ब्राह्मणो गृहे ॥

कठो० अ० १ वल्ली १ मं०८।

भाषा—जिस अल्प बुद्धि वाले पुरुष के गृह में भूखा ब्राह्मण अतिथि वास करता है उसका भूखा रहना उस गृहस्थ पुरुष के स्वर्गादि सुख तथा मन के किये हुए सुख की इच्छा को, सत्संग के फल को प्रिय वाणी बोलने के फल को, इष्ट-पूर्त कर्म को, और सब पुत्र और पशुओं को नाश करता है ॥ १२ ॥

भूत यज्ञ के भागी—

——*—*—*—*—*—*—*—*—*—*—*—*—*—*—*—*—*—*

शुनां च पतितानां च,श्वपचां पाप रोगिणाम्
वायसानां कृमिणां च,शनकैर्निवपेद्भुवि ॥

भाषा—कुत्ता पतित, चाण्डाल, कुष्टी (कोढी) पक्षी कीट-पतंग इनके लिये पृथ्वी में शनैः २ अन्न की आहुति देवै, (और भी मिष्टान्न भात आदि की बली दी जाती है) ॥१३॥

भूत यज्ञ का फल—

एवंयः सर्व भूतानि, ब्राह्मणो नित्यमर्चति ॥
सगच्छति परं स्थानं, तेजोमूर्ति पथर्जुना ॥

मनु० अ० ३ श्लो० ९३ ॥

इस प्रकार जो ब्राह्मण संपूर्ण भूतों को पूजता है वह ब्राह्मण सीधे और प्रकाशमान मार्ग द्वारा परमस्थान को जाता है ॥१४॥

दश दोषों का वर्णन *—

परद्रव्येष्वभिध्यानं, मनसानिष्टचिन्तनम् ।

---

* हिंसा चोरी परत्रिया, निन्दा मिथ्या गाल ॥
क्रोध ईर्षा मान छल, मन वच तन से टाल ॥१॥

--*-*-*-*-*-*-*-*-*-*-*-*-*-*-*

वितथाभिनिवेशश्च, त्रिविधं कर्ममानसम् ॥

मनु० अ० १२ = ५

भाषा-अन्याय से दूसरे का धन लेने की बात शोचना, दूसरे का अनिष्ट चिन्तन करना, मनमें मिथ्या अभिनिवेश करना, (अर्थात् परलोक नहीं है, शरीर ही आत्मा है) ये अशुभ फल देने वाले तीन प्रकार के मानस कर्म हैं ॥१५॥

पारुष्यमनृतंचैव, पैशुन्यञ्चापिसर्वशः ।
असंबद्ध प्रलापश्च, वाङ्मयंस्याच्चतुर्विधम् ॥

मनु० अ० १२ = ६

भाषा-कठोर शब्द का उच्चारण करना, झूठ बोलना, दूसरे के दोषों को बखानना, और निरभिप्राय बात करना, ये चार प्रकार के अशुभ फल देने वाले वाचिक कर्म हैं ॥१६॥

अदत्तानामुपादानं, हिंसा चैवाविधानतः ॥
परदारोपसेवाच, शारीरं त्रिविधंस्मृम ॥

मनु० अ० १२७ ॥

भाषा—दूसरे की वस्तु को अन्याय से बल पूर्वक लेना, अवैध हिंसा याने "अन्याय से किसी प्राणी का जीव दुखाना" और पर स्त्री गमन ये तीन प्रकार के दैहिक दुष्कर्म हैं ॥१७॥

पांच प्रकार के पातकी—

स्तेनोहिरण्यस्य सुरां पिबꣳश्च गुरोस्तल्पमाव-सन् ब्रह्महाचैतेपतन्ति चत्वारः पञ्चमश्च चारꣳ स्तैरिति ॥

छान्दोग्यो० अ०५ खण्ड १०मं० ६

भाषा-हे गौत्तम ! चार प्रकार के महापातकी होते हैं, उनमें से १ जो ब्राह्मण का स्वर्ण चुराता है, २ जो मद्यपान करता है, ३ जो गुरु की स्त्री से गमन करता है, ४ जो ब्राह्मण को मारता है, और पांचवां वह जो महापातकियों का साथ करता है, ये पांचों पतित होते हैं ॥१८॥

वाचक ज्ञानी-प्रकरण—

नाविरतो दुश्चरितान्नाशान्तोनासमाहितः ।
नाशान्तमानसोवापि, प्रज्ञानेनैनमाप्नुयात् ॥

-

कठो० अ० २ व० २ मं०२४

भाषा-जो पुरुष अपने दुराचारों से नहीं हटा, जो शान्त नहीं है, जिसका चित्त एकाग्र नहीं, जिसका मन शान्त नहीं, वह इसको प्रज्ञा से नहीं पा सकता ॥१६॥

धर्म-प्रकरणम्

ॐ त्रयो धर्मस्कन्धा यज्ञोऽध्ययनन्दानमिति प्रथमस्तप एव द्वितीयो ब्रह्मचार्याचार्य कुलवासी तृतीयोत्यन्तमात्मानमाचार्य कुले वसादय-न्सर्व एते पुण्यलोका भवन्ति ब्रह्मसᳪस्थोऽमृतत्वमेति ॥

छान्दोग्यो० अ० २ खण्ड २३ मं०१

भाषा-तीन धर्म के भाग हैं पहला यज्ञ, वेदाध्ययन और दान, दूसरा तप, तीसरा आचार्य के गृह विषे रहने वाला आचर्य के गृह विषे अपने देह को अधिक कष्ट देने वाला ब्रह्मचारी ये सब पुण्य लोक वाले होते हैं, परन्तु ब्रह्मज्ञानी ब्रह्म काउपासक मोक्षको प्राप्त होता है ॥२०॥

शौचं दानं तपः श्रद्धा, गुरु सेवा क्षमा दया।
विज्ञानं विनय सत्यम् , इति धर्म समुच्चयः॥

(भारत)

भाषा–भीतर बहार की शुद्धि, दान तप, श्रद्धा, गुरु सेवा, क्षमा, दया, विज्ञान, नम्रता, और सत्य यह सब समुच्चय धर्म हैं २१॥

धृतिक्षमा दमोऽस्तेयं, शौचमिन्द्र निग्रहः॥
धीर्विद्या सत्यमक्रोधो, दशकंधर्म लक्षणम्॥

मनु० अ० ६ श्लो० १२

भाषा–धैर्य, क्षमा, मन-दबाना, बिना मांगे किसी की वस्तु न लेना, शारीरिक पवित्रता, इन्द्रियों का निग्रह, सात्विक बुद्धि, परमात्मा को प्राप्त कराने वाली विद्या, सत्य क्रोध न करना, ये दश * धर्म लक्षण हैं॥२२॥

॥ इति कर्म-कांडम् ॥

---

*अहिंसा दया मृदु, सत्य वचन तप दान॥
शील शौच तृष्णा बिना, धर्म लिङ्ग दश जान॥१॥

अथोपासनाकाण्डम्

(योग दर्शन-दोहे)

अथ मंगल और योग कह जानहु वृत्तिनिरोध ।
अनुशासनते जानिये, प्रतिपादन चित्त बोध ॥ १

चित की वृत्ति निरोध को, योग कहत मुनिराय ।
करत योग अभ्यास के , चित निरोध को पाय ॥ २

तब द्रष्टा निज रूप में, कर स्थित सुख मान ।
पुनि न भ्रमत चित अनत कहुं, निज स्वरूप पहिचान ॥ ३

वृत्ति निरोध न होत जब, द्रष्टा वृत्तिस्वरूप ।
इतर अत्र ते जानये, पृथक् रहत निज रूप ॥ ४

वृत्ति पांच प्रकार की, क्लिष्टाक्लिष्ट बखान ।
तिहि निरोधते होत है, योग शक्ति बलवान ॥ ५

प्रमाण विपर्य्य विकल्प, और निद्रास्मृतिज्ञान ।
पांच भेद चित वृत्ति कर, मुनिवर करत बखान ॥ ६

प्रत्यक्ष अनुमान और, आगम तीन प्रमाण ।
इनते जान्यो जात है, सत्यासत्य निधान ७

--*-*-*-*-*-*-*-*-*-*-*-*-*-*-*-*-*-*

जैसो जौन पदार्थ है, तस नहिं भासत सोइ।
मिथ्या ज्ञान प्रभावते, ज्ञान विपर्यय होइ ८
शब्द श्रवणते होत है, वस्तु शून्य को ज्ञान।
मुनिवर ताहि विकल्प कहें, लेउ सत्य जिय मान ९
अखिल वस्तु को ज्ञान जब, रहत नहीं चित माहिं।
आश्रय ज्ञान अभाव के, निद्रा वृति कहाहि १०
पूर्व में जो जो विषय, करत रहे अनुभूत।
तिनको पुनि चित में उदय, स्मृति कहत सुपूत ११
अभ्यास और वैराग्यते वृत्ती होत निरोध।
वृत्ती के अवरोध तें, होत आत्म कर बोध १२
निरोधादि थित के निमित, यत्न कह्यो अभ्यास।
अनुष्ठान कर यत्न को, आत्मा करत प्रकास १३
नैरंतर सत्कारयुत, सेवित दीरघ काल।
दृढ़ भूमी तब जानिये, होय अभ्यास विशाल १४
जौन जौन देखे सुने, इहामुत्र के भोग।
तिन की तृष्णा ते रहित, वशी कार समयोग १५
निज स्वरूप के ज्ञानते गुण तृष्णा मिटजात।
प्रकटत पर वैराग्य तब, पुरुष भिन्न दिखरात १६
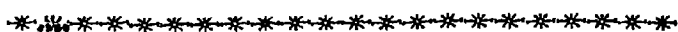
वितर्क विचार आनन्द और, अस्मितादिचहुं रूप।
संप्रज्ञात विराग के, जानहु चार स्वरूप १७
पूर्व कथित जो भावना, तिनके होत अभाव।
संस्कार के शेषते, असम्प्रज्ञात कहाव। १८
सो०—प्रकृति माहिं जे लीन, सो विदेह पहिचानिये।
जन्म मरण आधीन, भव प्रत्यय के वश भये १९
तज विदेह और प्रकृतिलय, पृथक् योगि जन जोइ।
ताको श्रद्धा वीर्य और, स्मृति समाधितें होइ २०
श्रद्धा आदिक यत्न ते, तीव्र होत वैराग।
ताको फल शीघ्र ही मिले, पाव मोक्षकर भाग २१
तीव्र वेग वैरागते, मृदु मध्याधिक भाव।
शीघ्र शीघ्रतर शीघ्रतम, है विशेष फल दाव २२
अथवा ईश उपासना, शीघ्र हि मिलत समाधि।
दृढ़ पूर्वक धारण किये, मिटत सकल जग व्याधि २३
क्लेश कर्म फल रहित जो, आशय सुख दुख हीन।
असंबद्ध जो पुरुष है, ईश्वर जानहु चीन २४
यथा तथ्य सर्वज्ञता, बीज ईश कह जान।
निरअतिशय मोह जानिये, न्यूनाधिक नहिंमान २५

कालते अवच्छिन्न नहिं, तिहिं कारणते ईश ।
ब्रह्मा आदिक को गुरू, गावत जाहि मुनीश २६
प्रणव कहत ॐ कारको, है ईश्वर को नाम ।
सुमिरणते सब दुःख कटत, चित्त लहत विश्राम २७
ओंकार जप अर्थयुत, अर्थ अनुरूपस्वरूप ।
ईश्वर की कर भावना, भासत रूप अनूप २८

ओं यस्तद्वेद स वेद सर्व ँ सर्वा दिशो बलिमस्मै हरन्ति सर्वमस्मीत्युपासीत तद्व्रतमतद्व्रतम् ॥

छान्दोग्यो० अ०१ खण्ड २१ मं० ४

भाषा—जो इस सर्वात्मक साम को जानता है वह सब को अर्थात् प्रत्येक वस्तु को जानता है सम्पूर्ण दिशाएँ उस उपासक के लिये भोग्य वस्तु देती हैं, मैं ही सब हूँ इस प्रकार उपासना करे यह नियम उस उपासक का है

सर्वमित्याकाशे तत्प्रतिष्ठेत्युपासीत प्रतिष्ठावान् भवतितन्मह इत्युपासीत महान् भवति॥

* *
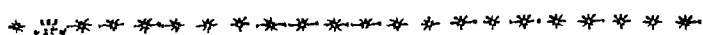
तन्मन इत्युपासीतमानवान् भवति ॥

तैत्तरीयो० अनुवाक १० मं० ४

भाषा—सर्वात्मक रूप ब्रह्म आकाश में स्थित है, ऐसी उपासना करनी योग्य है; वह ब्रह्म सब का अधिष्ठान है यदि ऐसी उपासन करे तो स्वयं सर्वाधिष्ठान रूप ब्रह्म होता है वह ब्रह्म सब से श्रेष्ठ है यदि ऐसी उपासना करे तो स्वयं श्रेष्ठ होता है वह ब्रह्म मन रूप है यदि ऐसी उपासना करे तो मनन याने ईश्वर के आराधन में समर्थ होता है ॥२॥

उपासना के दोहे

ज्ञानी सोऽहं कहत हैं, योगी जन ओंकार ॥
भगत राम को जपत हैं, साधो करो विचार ॥१

स्वांसों की कर सुमरणी, अजपा का कर जाप ॥
ब्रह्म तत्व का ध्यान धर, सोऽहं आपे आप ॥२॥

सेवक स्वामी होत है, सुने जो अनहद नाद ॥
जीव ब्रह्म हो जात है, पावे अपनी आदि ॥३॥

इन्द्रिय पलटे मन विषे, मन पलटे बुधि माहिं ॥

सुधि पलटे हरि ध्यान में, फेर होय लय जाहिं ॥४॥

अणोरणीयान् महतो महीयानात्माऽस्य जन्तो-र्निहितो गुहायाम् तमक्रतुः पश्यति वीतशोको धातुः प्रसादान् महिमानमात्मनः ॥

कठो० अ० १ वल्ली २ मं २०।

भाषा - छोटे से अति छोटा, बड़े से अति बड़ा आत्मा है, इस जीव के हृदय रूपी गुहा में वह स्थित है, और निष्काम शोक रहित पुरुष मन के प्रसाद से उस अपने महिमा को अथवा अपने आत्मा को देखता है ॥३॥

सर्वंह्येतद्ब्रह्मायमात्मा ब्रह्म सोयमात्मा चतुष्पात् ॥

माण्डूक्योपनिषद् मं० २।

भाषा-यह सब ओंकार रूप ब्रह्म है, वही यह ब्रह्म प्रसिद्ध आत्मा हृदयाकाश में स्थित है, और वह ही यह आत्मा (विश्व, तैजस, प्राज्ञ और तुरीय के भेद से) चार पाद वाला है ॥४॥

* *

नसन् दृशे तिष्ठति रूप मस्यन चक्षुषा पश्यति कश्चनैनम् । हृदामनीषा मनसाभिक्लृप्तोय एतद्विदुरमृतास्ते भवन्ति ॥

कठो० अ० २ वल्ली ६ मं० ९ ।

भाषा–इस प्रत्यगात्मा का रूप दर्शन विषे स्थित नहीं होता है, और कोई भी इसको चक्षु द्वारा नहीं देखता है, हृदय में स्थित बुद्धि करके और मन करके प्रकाशित हुआ यह ब्रह्म है इस प्रकार जो जानते हैं वे अमर होते हैं ॥७॥

हा ३ वुहा ३ वुहा ३ वु अहमन्नमहमन्नम् अहमन्नादो ३ अहमन्नादो ३ अहमन्नादः अह ँ श्लोक कृदह ँ श्लोक कृदह ँ श्लोक कृदहमस्मि प्रथम जो ऋता ३ स्य पूर्व देवे भ्योऽमृतस्यना ३ भायियोमाददाति सइह देवमा ३ वाः अहमन्न मन्नमदन्तमा ३ द्मि अहं विश्वं भुवनमभ्यवां ३

सुवर्णं ज्योतिः यः एवं वेद इत्युपनिषद्
राध्यते विद्युति मानवान् भवत्येकोहा ३
वुश एवं वेदै कश्च भृगुस्त मैयतो विशन्तितद्वि
जिज्ञासस्व तत्र यो दशान्नं प्राणं मनो विज्ञा-
नमिति विज्ञाय यतंतपमा द्वादशानन्द इति
सैषा दशान्नं न निन्द्यात् प्राणः शरीर मन्नं न
परित्वचीतापो ज्योतिरन्नं बहु कुर्वीतपृथिव्या-
माकाश एकदशैकादन कश्च नैहष्टिरेकान्नवि
ॐ शांतिरेकान्नवि ॐ शतिः ॥

तैत्तरीयो॰ अनुवाक १॰ भृगुवल्ली ३ मं॰ ७॥

भाषा–बड़ा आश्चर्य है ३ मैं अन्न हूं ३ मैं अन्न
का भोक्ता हूं ३ मैं कार्य कारण रूप हूं ३ मैं मूर्त
अमूर्त अर्थात् कार्य कारण के पूर्व उत्पन्न हुआ हूं,
और इन्द्रिया अभिमानी देवताओं से भी पहले उत्पन्न
हुआ हूं, और मोक्ष का नाभिः मध्य स्थान याने निधान
हूं, और मुझ अन्न रूप को अन्नार्थी के लिये है वह

-

ऐसे दान धर्म से मुझको अवश्य रक्षा करता है और अन्न कोअन्नार्थी के लिये न देकर अन्न भक्षण करते हुए को मैं भक्षण करता हूं, और मैं सूर्य की तरह प्रकाशमान होकर ब्रह्मा से तृण पर्यन्त लोक को तिरस्कार करता हूं,

"सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म" इस महावाक्यका तात्पर्य जो इस प्रकार जानता है और ऐसा जानने वाला है वह इस लोक से मरके और पूर्वोक्त अन्न मय शरीर को उलंघन करके और पूर्वोक्त मनोमय शरीर उलंघन करके और पूर्वोक्त विज्ञानमय शरीर को उलंघन करके और पूर्वोक्त आनन्द मय शरीर को उलंघन करके ब्रह्म रूप हो जाता है ॥६॥

इत्योपासना काण्डम्॥

अथ-ज्ञान-काण्डम्

दो० मल विक्षेप जाके नहीं, किन्तु एक अज्ञान ।
हो चहुं साधन सहित नर, सो अधिकृतमतिमान ॥

सत्येनलभ्यस्तपसा ह्येष आत्मा सम्यग्ज्ञानेन ब्रह्मचर्येणनित्यम् अन्तः शरीर ज्योतिर्मयो हिशुभ्रोयं पश्यन्ति यतयः क्षीणदोषाः ॥

मुण्डको तृतीय मुण्डक खण्ड १ मं० ५ ॥

भाषा-नित्य सत्य वचन और सत्य आचरण करके इन्द्रिय और मन की एकाग्रता रूपी तप करके यथार्थ परिपूर्ण ज्ञान करके नित्य ब्रह्मचर्य करके यह पूर्वोक्त परमात्मा प्राप्त होनेयोग्य है, और निश्चय करके यह परमात्मा शुद्ध स्वयं प्रकाशमान हृदयाकाश में वर्तमान है उस परमात्मा को दोष रहित तीक्ष्ण व्रत धारण करने वाले यति लोग आत्मभाव से देखते हैं ॥१॥

तस्यै तपोदमः कर्मेति प्रतिष्ठा वेदाः सर्वाङ्गानि सत्यमायतनम् ॥

\-*-

केनोप० खण्ड ४ मं० ८ ॥
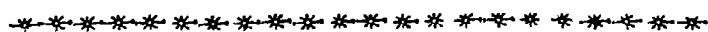
भाषा-उस ब्रह्म विद्या की प्राप्ति के लिये तप, दम और निष्काम कर्म इत्यादि उपाय हैं, और चारों वेद-वेदांग चरण हैं उस ब्रह्म विद्या के और सत्य घर है अर्थात् ब्रह्म विद्या के निवास का स्थान है ॥१॥

यस्तु विज्ञानवान् भवति समनस्कः सदा शुचिःसतु तत्पदमाप्नोति यस्माद्भूयोनजायते॥

कठो० अ० १ वल्ली ३ मं० ८॥

भाषा-और जो विवेकी एकाग्र चित वाला सदा पवित्र होता है वह निश्चय करके उस को प्राप्त होता है, जिस कर के फिर उत्पन्न नहीं होता है ॥२॥

यदापञ्चावतिष्ठन्ते ज्ञानानिमनसासह। बुद्धिश्च न विचेष्टते तमाहुः परमाङ्गतिम् ॥

कठो० अ० २ व० ६ म० १०॥

भाषा-जिस काल में ज्ञानेन्द्रियां मन के सहित आत्मा में स्थिर हो जाती हैं और बुद्धि भी चेष्टा रहित हो जाती है उस अवस्था को परम गति कहते हैं ॥४॥

यदेतद्धृदयं मनश्चैतत् सञ्ज्ञानमाज्ञानं विज्ञानं प्रज्ञानं मेधा दृष्टि धृतिर्मनीषा जूतिः स्मृतिः सङ्कल्पः कामोवशइति सर्वाण्ये वैतानि प्रज्ञानस्य नाम धेयानि भवन्ति ।

ऐतेरयो० खण्ड ५ मं० २॥

भाषा-जो यह हृदय है सोई मन है, चेतन आत्मविषयज्ञान है, ईश्वर विषयक ज्ञान विद्या जन्य लौकिक व्यवहार ज्ञान तत्काल जन्य भाव रूप ज्ञान, यथार्थ धारणा की शक्ति ज्ञान, इन्द्रिय द्वारा सर्व विषयों का ज्ञान, शरीर इन्द्रियों का रक्षक ज्ञान, मनन या विचार करने की शक्ति ज्ञान शास्त्र के विचार करने का ज्ञान, रोगादिजन्य दुःखाकार वृत्ति का ज्ञान, स्मरण ज्ञान, सामान्य रूप करके जाने गये जो कि शुक्लादि रूप उनके विशेष रूप का ज्ञान, निश्चय करने का ज्ञान, प्राणादि क्रिया का ज्ञान, अप्राप्त विषय की इच्छा स्त्री संसर्ग इच्छादि जितनी अन्तः करण की वृत्तियें हैं इनसे आत्मा भिन्न है पूर्वोक्त सम्पूर्ण वृत्तियों में प्रतिबिम्बित स्थित

हैं, इसलिये यह-तद्व्यत्युपाधि को द्वार कर के लक्षित जो चेतन है उसी के नाम हैं उपाधि रहित के यह सब नाम नहीं हैं ॥५॥

पराञ्चि खानि व्यतृणत् स्वयम्भूस्तस्मात्पराङ्पश्यति नान्तरात्मन् कश्चिद्धीरः प्रत्यगात्मनमैक्षदावृत्त चक्षुरमृतत्वमिच्छन् ॥

कठो अ० २ व० ४ मं० १ ॥

भाषा—परमेश्वर इन्द्रियों को बाह्य विषयों की ओर जाने वाली रचते हैं, इसी कारण विषयों को ही देखती हैं, अन्तरात्मा को नहीं देखती हैं, कोई विरला नर पुरुष अमर भाव की इच्छा करता हुआ चक्षु इन्द्रियों को विषयों से हटा कर अन्तर आत्मा को देखता है ॥६॥

नायमात्मा प्रवचनेन लभ्यो न मेधया न बहुना श्रुतेन यमेवैष वृणुते तेन लभ्यस्तस्यैष आत्मा विवृणुते तंनूस्वाम् ॥

मुण्डको-तृतीय मु० खण्ड २ मं० ३ ॥

भाषा—यह परमात्मा न वेद और शास्त्र के अध्य-

यन से न ग्रन्थ धारण समर्थ बुधि से न श्रवण करने से प्राप्त होने योग्य है जब यह(मुमुक्षु)जिस(परमात्मा को) अभेद दृष्टि करके प्राप्त होने की इच्छा करता है वह परमात्मा भी उस विद्वान् के निमित्त अपने शरीर को प्रकाश करता है (तब) उस (अभेद परस्पर सम्बन्ध) से यह (परमात्मा) निश्चय करके प्राप्त होने योग्य है ॥ ७

यदा सर्वे प्रमुच्यन्ते कामायेऽस्यहृदिश्रिताः अथमर्त्योऽमृतो भवत्यत्र ब्रह्म समश्नुते ॥

कठो० अ० २ वल्ली ६ मं० १४ ॥

भाषा–इस विद्वान पुरुष के हृदय में जो कामना स्थित है वे सब जब छूट जाती हैं तब मनुष्य अमर होता है और इसी जन्म में ब्रह्म को प्राप्त होता है ॥८

स जातो भूतान्यभिव्यैच्चत् किमिहान्यं वावदिषं दिति सएतमेवपुरुषं ब्रह्म ततमम पश्यदिद-मदर्शमिति ॥

ऐतरेयो० खं० ३ मं० १३ ॥

भाषा–वह (पुरुष याने अन्तःकरण विशिष्ट चेत-

न्य आत्मा) उत्पन्न हुआ भूतों को भली प्रकार विचार करता भया कि ऐसे शरीर विषे अपने से भिन्न औरों को क्या निश्चय करके कहूं इसलिये इस ही पुरुष को याने अपने आप को ही अत्यन्त करके व्यास ब्रह्म रूप देखता भया और कहता भया कि बारम्बार इस प्रकार इस ब्रह्म को अर्थात् अपने आप को मैं साचात् करता भया ॥ ६ ॥

एष सर्वेश्वर एष सर्वज्ञ एषोऽन्तर्याम्येषयोनिः सर्वस्य प्रभवाप्ययौ हि भूतानाम् ॥

माण्डूक्योपनिषद् मं० ६ ॥

भाषा—यही प्राज्ञ जब उपाधि माया को त्याग के अपने चैतन्य स्वरूप विषे स्थित होता है। तब सब का ईश्वर*है, यही सर्वज्ञ है, यही अन्तर्यामी है, यही सब

---

*दोहा—परमानन्द सरूप तूं, नहिं तो में दुःख लेश।
अज अविनाशी ब्रह्म चित, क्यों माने हिय क्लेश॥१॥
आप भुलाना आप में, बन्ध्यो आपही आप॥
जाको तू ढूंढ़त फिरे, सो तू आप ही आप॥२॥

-

का आदि कारण है यही सम्पूर्ण भूतों के उत्पत्ति और लय का स्थान है ॥ १० ॥

सवेदैतत्परमं ब्रह्म धामयत्रविश्वं निहितं भाति शुभ्रम् उपासते पुरुषं ह्यकामास्ते शुक्रमेत दति वर्तंति धीराः ॥

तृतीय मुण्डक खण्ड २ मं १

भाषा–जिस ब्रह्म में समस्त जगत ओत प्रोत है, और जो ब्रह्म सर्वोत्कृष्ट सबका आश्रय स्थान शुद्ध और स्वयं प्रकाश है उसको वह पूर्वोक्त शुद्ध अन्तःकरण वाला आत्मज्ञानी पुरुष जानता है और उसी के तद्-रूप होता है, जो विवेकी जन ऐसे ज्ञानी पुरुष को निष्काम होते हुए उपासना करते हैं वे इस प्रसिद्ध वीर्य को जो कि शरीरान्तर का उपादान करण है, उल्लंघन कर

नहिं कारण नहिं कार्य, कछु, नहीं काल नहीं देश ॥
शिव स्वरूप पूरण अचल सजाति विजाति नहिं लेश॥३।
चली पूतरी लवण की, थाह सिंधु की लैन ॥
अनाथ आप आपे भई, पलट कहैं को बैन ॥४॥

-*-

जाते हैं अर्थात् फिर गर्भ में नहीं प्राप्त होते हैं ॥११॥

यदा सर्वे प्रभिद्यन्ते, हृदयस्येह ग्रन्थयः। अथ मर्त्योऽमृतो भवत्येतावदनुशासनम् ॥

कठो० अ० २ व० ६ मं० १५ ॥

भाषा-जब यहां यानी जीवित अवस्था में ही इस विद्वान् के हृदय की ग्रन्थियां टूट जाती हैं तब मनुष्य अमर हो जाता है, इतना ही वेद का उपदेश है ॥

कुतस्तु खलु सोम्यैवं स्यादिति होवाचक थम सतः सज्जायेतेति सत्त्वेव सोम्येदमग्र आसी देक मेवाद्वितीयम् ॥

छान्दोग्यो अ० ६ खण्ड २ मं० २

भाषा- उद्दालक ऋषि ने कहा कि हे सौम्य! हे प्रिय पुत्र! असत् से सत् की उत्पत्ति नहीं हो सकती, इस लिये नाम रूपात्मक जगत को देख कर यही अनुभव होता है कि इसकी उत्पत्ति एक अद्वितीय सत् से ही है ॥१२॥

(१) आत्मा स्वरूप ।

अनेजदेकम्मनसो जवीयो नैत द्देवा आप्नुव न्पूर्वमर्शत्तद्धावतोऽन्यानत्येति तिष्ठत्तस्मिन्न पोमातरिश्वादधाति ॥

ईशो० मं० ४

भाषा—यह आत्मा अचल है, विकार रहित है, अद्वैत है, मन से आगे जाने वाला है, पहले से ही गया हुआ है, जिसको चक्षुरादि इन्द्रिय अभिमानी देवता भी नहीं प्राप्त होते हैं, वही आत्मा शीघ्र चलते

१कवित्त--ब्रह्म तो वही है जौन सच्चिदानन्द घन, निर्विकार निर्विकल्प नित्य ही प्रकाशै है। माया तो वही जौन रजतमसत गुण, धार नाना नाम रूप जिनके विनाशै है ॥ ईश्वर तो वही है निज रूप को न भूले कभो, माया गहैं मायासों पृथक उजासै है। जीव तो वही है जो अविद्या को संयोग पाय, भूले निज रूप भ्रमफांस ना निकशै है, जाको शुद्ध हियो ताको अनुभव तुमरो होन, नाथ निज तेज ही से माया नाशै है ॥१॥

हुए मन आदिकों को उलंघन करता है उसी चेतन आत्मा में सूत्रात्मा प्राणवायु, अग्नि, आदित्य आदि और सब प्राणियों के ज्वलन दहन आदि सब कर्मों को धारण करता है यानी अपने २ कर्मों में प्रेरणा करता है ॥१३॥

गुरु शिष्य से कहते हैं-कि तुम्हें ब्रह्म को जाना ?
इसका उत्तर शिष्यदेता है--

नाहंमन्येसुवेदेति नोनवेदेति वेद च ।
योनस्तद्वेदतद्वेद नोन वेदेति वेदच ॥

केनो० खण्ड २ मं० २

भाषा-मैं भली प्रकार ब्रह्म को जानता हूं ऐसा नहीं मानता हूं और ब्रह्म को नहीं जानता हूं ऐसा भी नहीं समझता हूं, जो हम में से उस ब्रह्म को विचार करके जानता है वही जानता है ऐसा नहीं और नहीं जानता हैं ऐसा भी नहीं ॥१४॥

तस्मादुहैवं विद्यपि चाण्डालायोच्छिष्टं प्रयच्छेदात्मनिहैवास्य तद्वैश्वानरे हुत छं

स्यादिति ॥

छान्दोग्यो० अ० ५ खण्ड २४ मं० ४॥

भाष्य-इस प्रकार वैश्वानर विद्या का जानने वाला यदि चण्डाल के लिये अपना झूठा अन्न दे देवे तो इस ज्ञान के कारण वैश्वानर आत्मा में उसका दिया हुआ अन्न निस्सन्देह ही हवन किया हुआ होता है, इति ॥१५॥

यस्मिन्सर्वाणि भूतानि, आत्मन्येवाभूद्विजानतः। तत्र को मोहः कः शोक, एकत्वमनुपश्यतः॥

ईशो० मं० ॥७॥

भाषा-जिस काल में ज्ञानवान् को सम्पूर्ण भूत अपना आत्मा ही प्रतीत होता है तिस काल में एकत्व को यानि अभेद देखने वाले पुरुष को कहां मोह है और कहां शोक है किन्तु मोह शोक रहित होता है ॥१६॥

यस्तु सर्वाणि भूतानि, आत्मन्येवानु पश्यति

-*-

सर्वंभूतेषु चात्मानं, ततोनविचि कित्सति ॥

ईशो० मं० ६॥

भाषा—और जो ज्ञानी पुरुष सब भूतों को आत्मा में (याने अपने में) निश्चय करके देखता है और सम्पूर्ण भूतों में आत्मा को (यानी अपने को) देखता है वह इस प्रकार के दर्शन से सन्देह को प्राप्त नहीं होता है ॥१७॥

ॐ तद्वेतत्सत्यमृषिरंगिराः पुरोवाच नैतद चीर्ण व्रतोऽधीते नमः परम ऋषिभ्यो नमः परम ऋषि भ्य. ॥

तृतीय मुण्डक खं० २ मं० ११॥

भाषा—इस प्रकार इस अविनाशी पुरुष * को

---

*कवित्त—कोउ तो कहत ब्रह्म नाभि के कमल मध्य, कोउ तो कहत ब्रह्म हृदय में प्रकाश है। कोउ तो कहत कण्ठ नासिका अग्र भाग, कोउ तो कहत ब्रह्म भृकुटी वास है ॥ कोउ तो कहत ब्रह्म दशवें द्वार बिच, कोउ

अंगिरा नामक ऋषि पहले शौनक ऋषि के अर्थ कहता भया इस सत्य बोधक शास्त्र को व्रत रहित पुरुष अध्ययन करने के योग्य नहीं है, नमस्कार है परम ऋषियों को नमस्कार है परम ऋषियों को ॥१८॥

ओमिति समाप्तश्चं ॥ ग्रंथः हरि ॐ सत्सत् ३ ॥

तो कहत भँवर गुफा में निवास है। पिण्ड में ब्रह्माण्ड में निरन्तर विराजे ब्रह्म, सुन्दर अखण्ड जैसे व्यापक अकाश है ॥१॥

गज़ल [स्वामी-रामतीर्थ]

अपने मजे की खातिर, गुल(१) छोड़ ही दिये जब ।
रूयें जमीं (२) के गुलशन, मेरे ही बन गये सब ॥१॥
जितने जुबां (३) के रस थे, कुल तर्क कर दिये जब ।
बस जायके जहां (४) के, मेरे ही बन गये सब ॥ २ ॥
खुद के लिये जो मुझ से, दीदों (५) की दीद (६) छूटी
खुद हुस्न (७) के तमाशे, मेरे ही बन गये सब ॥ ३ ॥
अपने लिये जो छोड़ी, ख्वाहिश (८) हवाखोरी की ।
बादे सबा (९) के झोंके, मेरे ही बन गये सब ॥४॥
निज (१०)की गर्ज से छोड़ा, सुनने की आरज़ू ११को ।
अब राग और बाजे, मेरे ही बन गये सब ॥ ५ ॥
जब बेहतरी के अपनी, फिक्रो खयाल १२ छूटे ।
फिकरो खयाल रंगी (१३) मेरे ही बन गये सब ॥६॥
आहा ! अजब तमाशा, मेरा नहीं है कुछ भी ।
दावा नहीं जरा भी, इस जिस्मो इस्म(१४) पर ही ॥७॥
यह दस्तो पा (१५) हैं सब के, आंखें यह हैं सब की ।
दुनियां के जिस्म (१६) लेकिन, मेरे ही बन गये सब ।८

---

१ फूल, २ पृथिवी भर के बाग, ३ जीभ के, ४ दुनिया के स्वाद, ५ नेत्र, ६ नेत्रों की दृष्टि, ७ सौंदर्य--रूप, ८ इच्छा, ९ परवा हवा--पवन, १० खुद--अपनी, ११ गर्ज--इच्छा, १२ शोक-चिन्ता, १३ भांति २ के विचार, १४ शरीर, १५ हाथ--पैर, १६ शरीर ॥

श्रीपरमात्मने नमः

अथ ब्रह्म ज्ञान–प्रश्नोत्तरावली

प्रश्न–१ ब्रह्म और जगत्

प्रश्नः–एक ब्रह्म के सिवाय और कुछ नहीं है, तब संसार क्या है, ब्रह्म चैतन्य और जगत् जड़ है इस लिये जड़ (जगत्) चैतन्य ब्रह्ममें से नहीं हो सक्ता ?

उत्तरः–अपने प्रश्न का उत्तर समझने के लिये तुझको पहले अपनी बुद्धि निर्मल और एकाग्र करनी चाहिये। जब तक मैं तुझको समझाऊँ तब तक इस प्रश्नके विषय में जो

कुछ तूने ख्याल बांध रक्खा है इस ख्याल को तुझे अलग रखना चाहिये ।

तेरे प्रश्न का सम्पूर्ण उत्तर यह है । जगत् जो दीखता है, सो अज्ञान से दीखता है, वास्तव में है नहीं ज्ञानी पुरुषों की दृष्टि से एक ब्रह्म के सिवाय और कुछ नहीं है । ब्रह्म चैतन्य स्वरूप में से जगत् उत्पन्न नहीं हुआ है, इसी से चेतन्य ब्रह्म में जड़ जगत् की उत्पत्ति कैसे सिद्ध की जाय ? इस लिये तूने जो विरोध दिखलाया था । उसका भी अवकाश न रहा ।१।

प्रश्न २ जीव

प्रश्न— जीव क्या चीज है । चेतन होतो चैतन्य असंग है इस लिये कर्ता भोक्ता नहीं हो सकता और जड़ होतो क्रिया नहीं कर सकता ?

उत्तरः—जो प्रश्न करने वाला है वही जीव है, जीव पंचभौतिक स्थूल वस्तु नहीं है, जो

तुझ को हाथ में देकर बता सकूं परन्तु सूक्ष्म बुद्धि से तू उसे समझ सकता है. सावधान होकर श्रवण कर-तू ऐसे कहता है कि मैं जीव को नहीं जानता । जीव में कर्त्ता भोक्ता पने का अभिमान अज्ञान है, वह अज्ञान माया का कल्पित है, कल्पित अवस्था में कल्पित को सच्चा समझने वाला जीव भी कल्पित है, । जब वह माया के कल्पित दबाव से मुक्त होता है, तब उसी समय प्राकृत जीव हटकर जीव का आद्य स्वरूप शेष रहता है। जो परमात्मा ब्रह्म है। ट्राम के दृष्टान्त से भी यही सिद्ध होता है, कि- सामान्य सत्ता स्वयंक्रिया नहीं करती और ट्राम की जड़ गाड़ियां भी क्रिया नहीं करती, यंत्र में लकड़ी के सहारे से आई हुई सत्ता यंत्र की विशेष सत्ता सहित कार्य करती है? अन्तिम सारांश—चैतन्य के प्रकाश

सहित माया का भाव जीव है इससे प्राकृत जीव असँग नहीं है और चैतन्य के आभाससे निदान जड़ भी नहीं है, वही अज्ञान स्वरूप जीव कर्त्ता भोक्ता है ॥२॥

प्रश्न—३ अज्ञान और ज्ञान

प्रश्न:- अज्ञान और ज्ञान किसको होता है? उत्तर- तेरे प्रश्न का बिचार करने से यह भाव निकलता है कि आत्मा ज्ञान स्वरूप है और जो ज्ञान स्वरूप है उसको और क्या ज्ञान होगा, ज्ञान स्वरूप है अज्ञान कदापि हो नहीं सकता, इस लिये उसको अज्ञान क्या होगा, इसी प्रकार माया अज्ञान स्वरूप है अज्ञान को ज्ञान नहीं हो सकता, उसे ज्ञान होना किसी प्रकार से संभव नहीं है। प्रश्न के उत्तर का संक्षिप्त—अर्थ ये हुआ कि—जड़ और चैतन्य के मिले हुए भाव को जीव कहते हैं, ज्ञान और अज्ञान उनका विषय हो-

ने से उसीको होता है, और जीव का मिले हुए इस अशुद्ध भाव से जो मुक्त होना है, वह मोक्ष कहा जाता है. जैसे ज्ञान और अज्ञान जीव का विषय है उसी प्रकार बन्ध और मोक्ष भी उसी को होते हैं. बन्धन में पड़े हुये को ही मोक्ष होती है. और जिसे अज्ञान है वही अज्ञान को हटाकर ज्ञान प्राप्त कर सकता है और ज्ञानाज्ञान रहित अपने स्वरूप को प्राप्त होता है ॥३॥

प्रश्न(४) अद्वैत

प्रश्नः—जगत् प्रत्यक्ष है और तुम एक ब्रह्म को और बताते हो तब जगत् और ब्रह्म दो होने से द्वैत हुआ अद्वैत कैसे है ?

उत्तरः-तेरे इस प्रश्न का उत्तर प्रथम प्रश्नों के उत्तर में आगया है तो भी तेरे दृढ़ बोध के निमित्त मैं फिर समझाता हूं, तेरे पूछने से ऐसा प्रतीत होता है, कि—जगत् को मैं प्रत्यक्ष देखता हूं,

और ब्रह्म को तुम देखते हो, द्वैत दृष्टि से अद्वैत समझने में आना कठिन है, जैसे बन्ध्या स्त्री पुत्र प्रसव को नहीं जान सकती, वैसे ही द्वैत को निकाले बिना अद्वैत नहीं होता, तेरे प्रश्न का सरांश रूप उत्तर यह है:—तेरी विकारी दृष्टी से भिन्न२ प्रकार का नाशवन्त जगत भासता है और अविकारी दृष्टि से वालेको जगत् भाव हट कर अद्वैत ब्रह्म भासता है, जगत् का दिखाव अवस्तु है और परब्रह्म वस्तु स्वरूप है ॥४॥

प्रश्न (५) स्वर्ग, नरक और मोक्ष ?

प्रश्न—पाप पुराय स्वर्ग नरक, और मोक्ष क्या चीज है, कर्म कहां रहते हैं ?

उत्तर:-पाप, पुराय, स्वर्ग, नरक आदि क्या है ? और कर्म कहां रहते हैं ? यह तेरा प्रश्न अज्ञान के विवेचन करने का है, वह अज्ञान में है और तू आज्ञान, माया, भ्रम

और कल्पना को सच्ची मानकर प्रश्न करता है, वे वास्तविक नहीं हैं, स्वप्नवत् हैं तो भी विवेचन के योग्य हैं, वे सब अज्ञान स्वरूप हैं, तो भी वे किस क्रम से उत्पन्न होते हैं, यह जानने से जब मूल अज्ञान का पता लगता है तभी उसको हटा सकते हैं अज्ञान ढीला पड़े बिन अथवा उसके नाश हुए बिना मोक्ष का स्वरूप समझ में नहीं आता, और समझे बिना उसकी प्राप्ति नहीं होती। क्रिया करके जो होता है वह कर्म कहाता है कर्म आन्तरिक और बाह्य दो प्रकार के होते हैं। शुभ भाव पुण्य स्वरूप, और अशुभ भाव पाप स्वरूप है पुण्य सुख रूप है और स्वर्ग है, और पाप दुःख रूप और नरक है, जब अदृष्ट पक्व होता है तब उसका फल सुख दुःख होता है इस अज्ञान से मुक्त होकर अपने आद्य

स्वरूप में टिक जाने को मोक्ष कहते हैं अर्थात् अज्ञान की मर्यादा से बाहर निकल जाने का नाम मोक्ष है पाप और पुण्य स्थूल वस्तु नहीं हैं। स्थूल के सम्बन्ध से अज्ञान के कारण राग द्वेष सहित उठा सूक्ष्म भाव पाप पुण्य है. यह भाव यदि तीव्र हो तो बहुत जल्दी पक्क हो जाता है, और यदि मंद होता है तो देर में पक्क होता है, पक्क होकर जब वह फल देने को तत्पर होता है, तब उसको प्रारब्ध कहते हैं । वह फल दिये बिना नहीं रुक सकता, पाप कर्म कौन २ हैं, और पुण्य कर्म कौन २ हैं इसका यथार्थ निर्णय सहज में नहीं हो सकता। सामान्य रूप से ही अमुक पाप कर्म है और अमुक पुण्य कर्म है, ऐसा कह सकते हैं ? जो पाप पुण्य मात्र स्थूल कार्य हो तो ऐसा निर्णय हो सके, परन्तु वह सूक्ष्म भाव स्वरूप है। इसलिये उसका यथार्थ

निश्चय देश, काल स्थिति, योग्यता, सामर्थ्य सहित लोक सम्मति, शास्त्र वाक्य और अपने अन्तःकरण के शुद्ध भाव के अनुसार होता है। शास्त्र में अमुक कर्म को पाप और अमुक कर्म को पुण्य कहते हैं। एक दूसरे शास्त्र में अन्तर भी पड़ता है, और कभी २ शास्त्र वाक्य से विरुद्ध फल भी होता है। देश, काल, संयोगादिक को छोड़कर मात्र शास्त्र वाक्य को ही ग्रहण करना भारी भूल है। इस कारण पाप, पुण्य और कर्तव्य अकर्तव्य के निर्णय करने में दीर्घ दृष्टि से काम लेना चाहिये। लोक सम्मति का भी विचार करना चाहिये, विद्वानों की दृष्टि में जो लोग सज्जन समझे जाते हों, और जिनका व्यवहार देश, काल और शास्त्र के अनुसार हो उन लोगों की सम्मति लोक सम्मति है। और अपना शुद्ध अन्तःकरण

इस बारे में क्या कहता है, इस प्रकार तीनों बातों के ठीक २ मिलान करने से यथार्थ निर्णय होना सभंव है। जैसे शास्त्र में आज्ञा दी है कि माता पिता और गुरु की आज्ञा के उलघंन करने वाले को पाप लगताहै, ध्रुव, प्रह्लाद और बली ने क्रम से माता पिता और गुरु कि आज्ञा का उलघंन किया था तो भी लोक और शास्त्र उन लोगों को दूषित—पापी नहीं समझते हैं, माता पिता और गुरु की आज्ञा भंग करके यदि कोई विशेष महत्व का कार्य होता हो तो आज्ञा पालन न करने का दोष नहीं होता, किन्तु विशेष फल होता है, माता की आज्ञा भंग करके ध्रुव ने तपश्चर्या की, पिता की आज्ञा न मान कर प्रह्लाद ने ईश्वर का भजन किया, और बलि ने गुरु की आज्ञा पालन न करके दान देने की प्रतिज्ञा पूरी की, क्रिया स्थूल सूक्ष्म

शरीर से होती है. जिसे स्थूल क्रिया कहते हैं वह क्रिया स्थूल शरीर से सम्बन्ध रखती है, स्थूल शरीर इस लोक का है, और क्रिया का कर्म भी इस लोक में है. स्थूल कर्म वास्तविक कर्म नहीं है, उससे कुछ फल प्राप्त नहीं होता, परन्तु कर्म करने के साथ में अज्ञान सहित जो भाव है उसी सूक्ष्म भाव वाले कर्म फल देने वाले होते हैं। वह सूक्ष्म भाव अज्ञान स्वरूप अन्तःकरण में रहता है, जिसका फल सुख दुख, पाप पुण्य है. जब तक अज्ञान में स्थिति है, तब तक अज्ञान में क्रिया और भोग होते हुए अज्ञानी को फल प्राप्त होना झूठा नहीं है, कर्म अज्ञान से उत्पन्न होते हैं. और अज्ञान को पुष्ट करते हैं। जब ज्ञान की प्राप्ति होती है तब कोई कर्म अवशेष नहीं रहता, कर्म मीमांसा बहुत सूक्ष्म है, अन्य प्रसंग में समझाई जायगी ? कर्म क्या वस्तु है? इसके समझने का

यही फल है, कि—कर्म अनित्य हैं. और परिणाम दोष रूप है, उनको समझ कर मुमुक्षु को उनकी सत्ता के बाहर जाने का प्रयत्न अवश्य कर्तव्य है. अन्तिम सारांश—अनेक प्रकार कि क्रिया से होने वाला कर्म है कर्म का भोग रूप फल. पाप अर्थात् नरक और पुण्य अर्थात् स्वर्ग है पुण्य , पाप, स्वर्ग, नरक और सब कर्म अज्ञान में रहते हैं. इन सब से सम्बन्ध छोड़ना और अपने आद्य स्वरूप में स्थिति करना अर्थात् जगत् का अत्यन्त अभाव होना और परमानन्द की प्राप्ति होना मोक्ष है ॥ ५ ॥

प्रश्न ६ माया और मोक्ष ॥

प्रश्नः—माया अनादि मानते हो तो अनादि का नाश कभी नहीं होता, इस लिये माया कभी नहीं छूटेगी और जीव का भी मोक्ष नहीं होगा. फिर मोक्ष क्या ?

उत्तरः—वेदांत सिद्धान्त तेरी समझ में नहीं आया है, इस लिये तूं, यह प्रश्न करता है, जब तूं सिद्धान्त को समझ लेगा तब ऐसा प्रश्न न करेगा। माया का स्वरूप तुझ को पूर्व में दिखलाया गया है, माया उसको कहते हैं, जो वस्तुतः कोई वस्तु नहीं हो, और देखने में सत्य के सामान प्रतीत होती हो. जिसकी आदि मालूम न हो जो स्वरूपान्तर वाली हो, नित्य एक रूप में टिकने वाली न हो, जैसे इन्द्र जाली की माया, स्वप्न की सृष्टि रज्जु में सर्प की भ्रान्ति इत्यादिक, अब देख उसमें अनादित्व किस प्रकार का है ? तेरे समग्र प्रश्न का यह उत्तर है—माया अनादि होने पर भी कल्पित है, इस लिये कल्पित-भ्रान्ति के बाध होने से अज्ञान नहीं रह सकता, जब अज्ञान नहीं रहता तब अनादि अज्ञान में फँसे हुए जीव भाव का

मोक्ष हो जाता है, अनादि कल्पित अज्ञानका छूट जाना और अपने वास्तविक आत्म स्वरूप में स्थितहोना इसी का नाम मोक्ष है। चैतन्य, चिदाभास और अविद्या इन तीनों के मिश्रण का नाम जीव है। तीनों में चिदाभास और अविद्या कल्पित मिथ्या हैं इन दोनों का बाध होकर मुख्य अद्वितीय निर्विशेष शुद्ध चेतन मात्र रहना मोक्ष है ॥६॥

प्रश्न ७ ब्रह्मकी असंगता ॥

प्रश्नः—असंग होकर ब्रह्म सृष्टि का कर्ता कैसे है ? एक ही सब व्यवहार का हेतु है, तो सब एक समान क्यों नहीं होते ?

उत्तरः—ब्रह्म असंग है, यह बात तूने मात्र सुनली है, इस लिये तू पूछता है कि–ब्रह्म असंग होकर सृष्टि का कर्ता कैसे है ? असंग ब्रह्म, सृष्टि और कर्ता यह प्रत्येक ठीक२ समझना चाहिये। उनके वाक्यार्थ को लक्ष्या-

र्थ सहित समझना चाहिये । संग और असंग दोनों ही प्रपंच का भाव और अभाव रूप हैं, एक दूसरे से विरुद्ध स्वभाव वाले हैं, संग, सोहवत, मिलना, आसक्ति को कहते हैं, इस प्रकार जब मेल न हो तब उसको असंग कहते हैं, ब्रह्म को लक्ष्य द्वारा समझने के लिये विधि और निषेध, दो प्रकार के विशेषण कहते हैं जो नकार के भाव से लक्ष्य पहुचाने में सहायक हो उसे निषेध विशेषण कहते हैं ?

तेरे प्रश्न के उत्तर का सार ये है—मुमुक्षुओं को समझ में शीघ्र आने के लिये वेदान्त आचार्यों ने ब्रह्म को असंग समझाया है, और सृष्टि करता ईश्वर को कहा है, ईश्वर का ब्रह्म से अभेद है, भेद दृष्टि वाले के लिये असंग होते हुए उपाधि सहित को ईश्वर कहते हैं, ऐसा ईश्वर असंग

होकर सृष्टि का कर्ता है। जीवों के पूर्व कर्म ही सृष्टि करने में हेतु हैं, जैसे जीवन मुक्त असंग रह कर व्यवहार करता है, वैसे ही ईश्वर सृष्टि का कर्ता है, जिसके दृष्टान्त से समझाया गया कि-पुर्जे रूप अंतःकरण भिन्न २ होने से सब का व्यवहार एक समान नहीं होता ॥७॥

प्रश्न ८ पुनर्जन्म

प्रश्नः—पुनर्जन्म का शास्त्र वाक्य के सिवाय क्या सुबूत है? पुनर्जन्म होता है तो याद क्यों नहीं रहती?

उत्तरः—तेरा प्रश्न योग्य होते हुए भी शास्त्र की अश्रद्धा सहित है। अश्रद्धा वालों को शास्त्र ने उपदेश करने को मना की है। इस प्रकार की अश्रद्धा आर्य कहलाने वालों को शोभा नहीं देती और मुमुक्षुओं को विष के समान है।

प्रश्न का सारांश उत्तर यह हुआः—
अनेक दृष्टांतों से प्रत्यक्ष अनुभव में आया है जिससे पूर्व जन्म की युक्ति द्वारा सिद्धि होती है (शास्त्र से तो सिद्ध है ही) बुद्धि स्थूल से संबंध वाली होने से, रूपान्तर वाली होने के कारण विषेश तीव्र प्रयोजन सिवाय स्मृति को नहीं रखती, यदि खास याद रहने के तीव्र संस्कार कर्म स्वरूप से अदृष्ट में दाखिल करें तो याद रहना असम्भवित भी नहीं है, सामान्य भाव से तो बुद्धि परिवर्तन वाली होने से पुनर्जन्म की याद नहीं रहती ॥८॥

प्रश्न ९ कर्म का फल

प्रश्नः—पूर्व जन्म में किये हुए कर्मों का फल इस जन्ममें भोगा जाता है, पाप कर्म का फल दुःख भोग होता है, पूर्व जन्म की याद नहीं, किये हुए कर्मों की खबर नहीं, पाप जाने बिना पाप का फल भोगना यह

अन्याय क्यों है ?

उत्तरः—पूर्व जन्म में किये हुए समग्र कर्मों का फल इस जन्म में भोगा जाता हो, ऐसा नहीं है और इस जन्म में जितने फल का भोग होता है वह पूर्व जन्म का ही हो ऐसा भी नहीं है। कर्म की सूक्ष्मता गहन है, सूक्ष्म बुद्धि वाले सज्जनों से ही उसका मार्मिक भाव ग्रहण होता है। कर्मों का फल भोग नहीं है परन्तु जो कर्म अज्ञान से किये जाते हैं और कर्मों के संबंध से जो अज्ञान का भाव दृढीभूत होता है उसी अज्ञान का भाव फल रूप होता है, यद्यपि कर्म की मीमांसा वेदान्त का विषय नहीं है तो भी वेदांत का किसी शास्त्र से समूल विरोध भी नहीं है। जितने कर्म हैं, वे सब ही अज्ञान स्वरूप हैं, ऐसा जान कर अज्ञान के हटाने के लिये उसका विवेचन भी मुमुक्षुओं को उपयोगी

है ॥ जन्म, मृत्यु, पाप, पुण्य, सब ज़गत् क्रम से (सिल सिले वार) होने हुए भी अनिर्वचनीय है। माया की रचना भ्रमात्मक, काल्पनिक और विनाशी है, उसको माया स्वरूप समझ कर मुमुक्षुओं को सत्यता का भाव न करना चाहिए संसार में सब कुछ ठीक है तो भी आत्मा में संसार को मानना बंधन करने वाला है। ऊपर जो समझाया गया है वह जगत् की तरफ के भाव को हटाने के निमित्त है, उसमें बंधायमान होने के लिये नहीं है। मुमुक्षुओं को जगत् का मिथ्यात्व भाव ही आगे ले जाने वाला है। ज्ञान होने के पश्चात् यह और वह किस प्रकार का मालूम होता है यह नहीं कह सक्ते परन्तु जिस ज्ञानी को उसका अनुभव होता है वह ही उसे यथार्थ रीति से जानता है। आर्य धर्म के ऊपर निष्ठा रखने वाले सब पुनर्जन्म को मानते हैं।

मीमांसकों का पुनर्जन्म मुख्य फल—सिद्धान्त है न्याय वैशेषिक, सांख्य और योग सभी उसको मानते हैं। इसी प्रकार वेदान्त भी व्यवहार में मानता है इसके सिवाय आर्य धर्म रहित मनुष्य उसको मानें या न मानें, उनके लिये हमें कुछ कहना नहीं है। अन्तिम साराश:—कर्म की गति अत्यन्त सूक्ष्म है और गहन है। किसी अंश में वह समझाई गई है। मरने के समय में स्थूल बुद्धि सूक्ष्म होती है और फिर स्थूल परिणाम को प्राप्त होती है वह प्रारब्ध कर्म के समान बनी हुई होती है। पूर्वजन्म की स्थूल बुद्धि पूर्व के प्रारब्ध अनुसार बनी थी। पूर्वजन्म में जो बुद्धि थी वह इस जन्म में नहीं रहती, जैसे बुद्धि बदलती है उसी प्रकार शरीर भी बदलता है इस लिये पूर्वजन्म की याद नहीं रहती तो भी शुद्ध सूक्ष्म बुद्धि भले बुरे दोनों को जता देती है। शास्त्र

और अनुमान से पाप कर्म का फल दुष्ट-दुःख समझा जाता है। अनेक जाति के बहुत कर्मों के मेल से दुःख का भोग होता है तब अमुक पाप का अमुक फल भिन्न२ किस प्रकार कहा जाय ? इस लिए पूर्ण याद न रहते हुए भी पाप का फल भोगना अन्याय नहीं है। सामान्य भाव से पाप का फल दुःख सब को विदित है॥ ९॥

प्रश्न १० कर्ता भोक्ता

प्रश्नः—एक शरीर के किये हुए शुभ अशुभ कर्मों का फल दूसरे शरीर में भोगना यह अन्याय क्यों ? उत्तरः प्रथम स्लथू शरीर को जानना चाहिये, जो स्थूल शरीर देखने में आता है वह कर्मों का कर्ता भोक्ता नहीं है। जो कर्ता होता है वह भोक्ता भी होता है, यह नियम है। जो स्थूल शरीर ही कर्ता हो तो मरने के पश्चात् भी वह रहता है, उसके रहते

हुए कार्य क्यों नहीं होता? मरने के पश्चात् कार्य न होने से सिद्ध होता है कि कर्ता कोई और है, जब तक वह शरीर में रहता है तब तक क्रिया होती है। कर्ता भोक्ता कर्तृत्व भोक्तृत्व के अभिमान वाला सूक्ष्म शरीर समझो। सूक्ष्म शरीर स्थूल शरीर की अपेक्षा भीतर होता है। सूक्ष्म शरीर के टिकने का स्थान स्थूल शरीर है इसलिए वह आयतन—घर कहा जाता है। जैसे एक व्यापारी एक दुकान पर बैठ कर धंधा करके धन कमावे और संयोग बस दुकान उसे छोड़नी पड़े और दूसरे स्थान पर उसे जाना पड़े, वहां जाकर पूर्व दुकान पर कमाये धन का उपयोग करने लगे, इसी प्रकार व्यापारी रूप जीव एक स्थूलशरीर रूपी दुकान से धर्मा धर्म रूप कमाई करके दूसरे स्थूल शरीर रूप स्थान में जाकर पूर्व शरीर मे उपार्जन की हुई कमाई को भोगता

है, इस में अन्याय क्या हुआ दुकान कमाई करने वाली न थी? दुकान पर बैठ कर धंधा करने वाला व्यापारी कमाई करने वाला था, वह ही व्यापारी दूसरे स्थान में जाकर पहले कमाये हुए धन का भोग करता है तो यह न्याय ही है। जैसे दुकान स्थान जड़ है ऐसे ही स्थूल शरीर भी जड़ है। जड़ वस्तु न तो कर्ता हो सक्ती है न भोक्ता ही हो सक्ती है कोई राजा एक तलवार से शत्रु को वश में करके समृद्धि प्राप्त करे और तलवार पुरानी होने पर यदि वह उसे छोड़दे और राज समृद्धि के उपभोग समय दूसरी नई तलवार अपनी कमर में बांध ले, तब कोई कहे प्रथम तलवार ने राज प्राप्त किया था, राजा के साथ सुख भोगने में दूसरी तलवार क्यों है? इसी प्रकार कर्ता कौन है और भोक्ता कौन है? यह न समझने से बालक के समान तू यह प्रश्न

करता है। तलवार शत्रु को वश नहीं कर सकती। राजा शत्रु को वश करता है तलवार कार्य करने के लिये केवल एक औजार है इस लिये कर्ता भोक्ता दोनों ही राजा है। साहूकार शुद्ध आत्मा है, अज्ञान में पड़ा हुआ अज्ञान सहित चिदाभास बदमाश समझो। लेन देन का धंधा वह करता है। आत्मा साहूकार उन गुणों को ग्रहण करता है—उनमें संयुक्त होता है। अकर्ता होते हुए भी अज्ञान के भाव से वह कर्ता बनता है। इसी प्रकार शरीर की चेष्टाओं को जीव ग्रहण करता है इस लिये जीव ही कर्ता भोक्ता है, शरीर कर्ता भोक्ता नहीं है। अन्तिम सारांशः—कर्म शरीर से होता है परन्तु कर्म करने वाला शरीर नहीं है। कर्म कर्ता और कर्म का अभिमान करने वाला जीव है। शरीर जीव के रहने का स्थान है इस लिये

एक शरीर रूप स्थान में बैठ कर जो शुभा-शुभ कार्य किये जाते हैं उनका फल मरण रहित जीव दूसरे शरीर में भोगता है, उसमें अन्याय कुछ नहीं है ॥

प्रश्न-११ जीव सर्वज्ञ क्यों नहीं !

प्रश्न: आत्मा शुद्ध है तो सब बातों को क्यों नहीं जानता ?

उत्तरः—आत्मा शब्द से तू किसको कहता है? शास्त्र में आत्मा शब्द का भिन्न२ स्थानों पर भिन्न भिन्नअर्थ में उपयोग किया गया है। स्थूल शरीर को आत्मा कहा है, मन को आत्मा कहा है, और जीव को आत्मा कहा है और शुद्ध कूटस्थ परम तत्त्व (परमात्मा) को आत्मा कहा है। स्थूल शरीर विकारी, रूपांतर वाला और पंच भौतिक होने से शुद्ध नहीं है, मन त्रिगुणात्मक

विकार वाला होने से शुद्ध नहीं है। जीव अज्ञान के भाव सहित कल्पित है, अब रहा कूटस्थ, वह व्यापक, चैतन्य परमात्मा है और एक वह ही शुद्ध है। शुद्ध विकार रहित और स्वच्छ को कहते हैं, ऐसा शुद्ध आत्मा सब बातें, भूत भविष्य, ऊपर नीचे, और सब जगत् को क्यों नहीं जानता? यदि ऐसा तेरा प्रश्न हो तो श्रवण कर:—जो कुछ जानने को है वह सब मायिक प्रपंच है जो कुछ प्रपंच है वह वस्तुतः है नहीं, इससे एक अद्वैत तत्त्व में माया की भिन्न भिन्न वस्तुओं का ज्ञान नहीं है। ज्ञान जानने को कहते हैं, त्रिपुटि में जानना होता है, शुद्ध तत्त्व में त्रिपुटि है नहीं, तो उसमें जानना किस प्रकार बन सके? आत्मा ज्ञान गुण वाला नहीं है परन्तु ज्ञान स्वरूप है, अद्वैत है। गुण और गुणी का भेद होता है, आत्मा गुण और गुणी के भेद वाला

नहीं है, जहां भेद नहीं होता वहां भेद ज्ञान नहीं होता, जहां जगत् नहीं है वहां पृथक् भाव से जानने वाला कौन होवे ? किसे जाने? क्या जाने ? किससे किसको जाने ? किस प्रकार जाने ? किस निमित्त जाने । जहां भेद का अभाव है वहां किसी प्रकार की कल्पना होना असम्भव है।

शुद्धात्मा अतीन्द्रिय है और इन्द्रियों से उत्पन्न होने वाला ज्ञान उसका विषय नहीं है। इसलिये इन्द्रिय रहित होने से, इन्द्रियों से होने वाले विविध प्रकार के प्रपंच ज्ञान को वह ग्रहण नहीं करता। शुद्ध शुद्ध का विषय होता है। अशुद्ध अशुद्ध का विषय होता है। आत्मस्थिति में आत्मा के समान अन्य कोई शुद्ध नहीं है। जब धर्मी और प्रतियोगी का भेद होता है तभी भेद ज्ञान होता है, इसके बिना भेद ज्ञान नहीं हो

सक्ता इसलिये शुद्धात्मा में धर्मी और प्रतियोगी का अभाव होने से प्रपंच का ज्ञान नहीं होता ।

यदि कोई कहे कि शुद्ध आत्मा वह ही होना चाहिये जो प्रपंच के सब भिन्न भिन्न भेदों को भिन्न २ भाव से जाने, जो इस प्रकार न जाने तो शुद्धात्मा विशेषता ही क्या है? इसका यह उत्तर है कि कूप का मेंढक समुद्र का लक्ष पहुंचाने को असमर्थ हो तो भी समुद्र कूप के स्थान छोटा नहीं होता, प्रपंच में फंसे, डूबे मनुष्य विशेष करके प्रपंच को ही जानते हैं। योगी लोग अनेक प्रकार के संयम करके सामान्य मनुष्यों से प्रपंच की विशेष बातों को जान सक्ते हैं। जिसका संयम जितना दृढ़ होता है उतना ही उसमें सिद्धि का विशेष सामर्थ्य होता है । यह विशेषता संयम और अन्तःकरण की है, ज्ञान

का इस विशेषता से कुछ सम्बन्ध नहीं है। विशेषता होते हुए भी सिद्धियां माया-अज्ञान का हैं, परिछिन्न होने से दुःख का हेतु है। योग सिद्धियां प्रपंच का चमत्कार हैं और ज्ञान मार्ग में मुमुक्षुओं को बाधक हैं।

अन्तिम सारांशः- अद्वैत तत्त्व ही शुद्ध आत्मा है, उसमें भेद नहीं है। भेद बुद्धि से जाना जाता है। जानने में ज्ञाता, ज्ञान और ज्ञेय रूप त्रिपुटी की आवश्यकता है। जानने में तियोगी राग द्वेष होता है, बहिर्दृष्टि होती है, इन सब सामग्री से प्रपंच जाना जाता है यह सब सामग्री अद्वैत में अध्यस्त है, अध्यस्त की मिथ्या कल्पना को सत्य अधिष्ठान किस प्रकार किस प्रयोजन से जाने?

प्रश्न १२ प्रारब्ध।

प्रश्नः-प्रारब्ध का ही भोग होता है तो शास्त्र और गुरु उपदेश व्यर्थ हैं, प्रारब्ध

से परतंत्र हुआ मनुष्य क्या कर सक्ता है?

उत्तरः प्रारब्ध भोग, शास्त्र, गुरु उपदेश और परतंत्रता क्या वस्तु है इसको समझ! कर्म तीन प्रकार के होते हैं, संचित, प्रारब्ध और क्रियमाण। अनेक जन्म के किये हुए कर्मों का फल देने वाले सूक्ष्म संस्कार जो अपक्व होने से वर्तमान समय में भोग नहीं दे सक्ते उनको संचित कर्म कहते हैं। एक व्यापारी ने धंधा करके बहुत धन एकत्र किया है, उस विशेष धन को उपयोग में लाने की इस समय आवश्यकता नहीं है, तब वह व्यापारी धन को तहखाने में बंद कर रखता है, उस धन को संचित कहते हैं, इसी प्रकार संचित कर्म हैं। संचित कर्म में से जो संस्कार पक्व होकर बाहर निकल आये हैं और वर्तमान में फल देना आरम्भ कर चुके हैं वे प्रारब्ध कर्म हैं, अथवा सूक्ष्म संचित में से जो पक्व होकर

स्थूल शरीर के भोग का हेतु हुए हैं वे प्रारब्ध कर्म हैं। व्यापारी ने तहखाने में से कुछ धन खर्च करने के लिये निकाल लिया है. यह प्रारब्ध है, प्रारब्ध स्थूल शरीर का भोग है, विशेष करके स्थूल शरीर के अन्त के साथ समाप्त हो जाता है। तीसरी प्रकार के कर्म क्रियमाण हैं। उनको आगामी भी कहते हैं, प्रारब्ध कर्म के भोग करते समय जो नये मानसिक सूक्ष्म संस्कार उत्पन्न होते हैं उनको अगामी कहते हैं। संचित और अगामी अपक्व होने से सूक्ष्म हैं और प्रारब्ध पक्व होने से स्थूल भोग वाला है। स्थूल के सम्बन्ध के साथ सुख दुःख का जो भान होता है वह भोग कहलाता है। भोग अन्तः करण में होता है तो भी स्थूल सम्बन्ध होने के कारण भोग स्थूल कहा जाता है, वह भोग ही प्रारब्ध है॥

इस दृष्टांत से देखा जाता है कि प्रारब्ध

में बाधक न होते हुए युक्ति पूर्वक जो कार्य कर सक्ते हैं वही पुरुषार्थ है। उस पुरुषार्थ को जब आत्मिक भाव में लगाते हैं तब परम पुरुषार्थ कहा जाता है। आज कल मनुष्य प्रारब्ध और पुरुषार्थ को उल्टे हिसाब से समझ रहे हैं इसी से दोनों ही ठीक नहीं होते। प्रारब्ध में पुरुषार्थ समझ कर दौड़ते हैं और पुरुषार्थ को प्रारब्ध पर छोड़ देते हैं। सद् गुरु की सहायता से उन दोनों को ठीकर समझ वर्तना चाहिये।

अन्तिम सारांशः—प्रारब्ध का वेग स्थूल है। शास्त्र और गुरु के उपदेश सूक्ष्म हैं, प्रारब्ध में जीव परतन्त्र है, उपदेश ग्रहण करने में स्वतंत्र है। जिस अंश में प्रारब्ध अविरोधी उपदेश हो सक्ता है उसमें शास्त्र और गुरु का उपदेश सार्थक है।

प्रश्न १३-जीव का शरीर से निकलना !

प्रश्नः—जीव मरने के समय किस प्रकार जाता है ?

उत्तरः—प्रथम यह विचार करना चाहिये कि मरने वाला कौन है । तेरे प्रश्न से यह विदित होता है कि जीव निकलने वाला, मरने वाला नहीं हैं । शरीर की तीन अवस्था हैं १ जाग्रत २ स्वप्न ३ सुषुप्ति। यह तीनों अवस्थायें क्रम से १ स्थूल २ सूक्ष्म ३ कारण शरीर की हैं उन तीनों शरीरों में से स्थूल शरीर नाशवान् है. सूक्ष्म और कारण शरीर का नाश नहीं होता. वे अत्यन्त सूक्ष्म और सूक्ष्म तर होने से स्थूल दृष्टि का विषय नहीं हैं । पंचीकृत पंच महाभूत उनका नाश नहीं कर सके । उन दोनों शरीरों का नाश ज्ञान के सिवाय किसी प्रकार नहीं होता । जन्म और मरण मात्र स्थूल शरीर का हुआ करता है ।

कारण शरीर आवरण का है और सूक्ष्म शरीर वासनामय है। जो २ वासना स्थूल होती जाती हैं उनके भोग निमित्त स्थूल शरीर होता है। सूक्ष्म शरीर की वासनायें बदला करती हैं किन्तु स्थूल शरीर के साथ उसका नाश नहीं होता। चौदह लोक में भूत प्राणियों का शरीर पंच भूतों का बना हुआ एक ही प्रकार का होता है। सब के स्थूल शरीरों में तत्त्वों की न्यूनाधिकता होती है। सूक्ष्म शरीर में स्थूल पदार्थों की आड़ नहीं होती। गमनागमन करने वाला सूक्ष्म शरीर है, स्थूल और सूक्ष्म का कारण-कारण शरीर है वह सूक्ष्म शरीर से कभी भिन्न नहीं होता। ज्ञान होने पर सूक्ष्म और कारण दोनों शरीरों का नाश हो जाता है क्योंकि वे दोनों अज्ञान के है।

अब विचार करने से शंका होती है कि

सूक्ष्म शरीर माया का जड़ होने के कारण स्वयं गमनागमन नहीं कर सक्ता क्यों कि जड़ में गमनागमन की शक्ति नहीं होती। उसका उत्तर यह है:—यद्यपि यह शरीर जड़ है तो भी चैतन्य सब स्थानों में व्यापक होने से उसमें है. उस चैतन्य का विशेष प्रकाश चिदाभास उसमें पड़ता है और उसकी सत्ता से वह (सूक्ष्म शरीर) गमनागमन करने को समर्थ होता है, वही जीव कहलाता है उसका ही जाना आनाहोना है। वेदान्त में जीव की संज्ञा इस प्रकार है:—१ व्यापक चैतन्य कूटस्थ, २ उसका आभास—चिदाभास और ३ जिस अज्ञान में आभास पड़ता है वह अज्ञान। अथवा सहज समझने के लिये आत्मा अंतःकरण और अंतःकरण में पड़ा हुआ आभास ये तीनों मिल कर जीव है। जीव में व्यापक चैतन्य जो उपाधि में

होकर भी शुद्ध है वह कूटस्थ है और जाने आने से रहित है। जैसे मटके में रहा हुआ आकाश, मटके को एक स्थान से उठा कर दूसरे स्थान पर लेजा कर रखने पर भी मटके वाला आकाश एक स्थान से हटकर दूसरे स्थान में नहीं जाता। तुच्छ बुद्धिवालों को आकाश मटके के साथ जाता हुआ जान पड़ता है परन्तु आकाश सब स्थान में भरा हुआ होने से उसका आना जाना नहीं हो सकता।

इस प्रकार की अनेक कथायें लोक प्रच-लित हैं और सच्ची हो य ऐसा सब भास होता है परन्तु ऐसी सब कथायें सच्ची नहीं होती, मरने वाला क्रम २ से तीनों शरीरों को छोड़ कर फिर उन शरीरों में कभी नहीं आता। कभी २ ऐसा हो जाता है कि मनु-ष्य का प्राण दब जाता है अंतर में स्वप्न

की समान दृश्य दीख पड़ता है, जब दबा हुआ प्राण ठीक चलने लगता है तब जाग्रत अवस्था में आकर सूक्ष्म में देखे हुए भाव को वर्णन करता है। स्वप्न का भविष्य भी कभी २ ठीक मिलता है इसी प्रकार दूसरे श्यामलाल का उसी समय मरण होना स्वप्न का सच्चा भविष्य था जिस प्रकार पृथ्वी पर न्यायालयों में कभी २ भूल हो जाती हैं इसी प्रकार की भूल यम-शासन में भी लोगों ने समझ ली है। समष्टि ईश्वर का सब व्यवहार बिना भूल होता है, वह सर्वज्ञ और आप्तकाम है, उसके किसी नियम में कभी भी किंचित् मात्र भूल होना असम्भवित है। जीव का गमनागमन भाव रूप है जिसका भाव सच्चा हो रहा है, उसके लिये गमना-

गमन भी सच्चा ही है। प्रपंच के भाव में टिके हुए, प्रपंच को सच समझने वालों को पाप पुण्य और गमनागमन नहीं है ऐसा कहना—मानना अत्यतं पापिष्ट का लक्षण है, उसके लिये ससार के नियम वज्र लेप समान है।

अंतिम—सारांशः—स्थूल शरीर के भाव वाला जीव मरने के समय इन्द्रियों और प्राण सहित सूक्ष्म शरीर में आकर अपने कर्मों के भाव का दृश्य देखता है। वहां संचित और प्रारब्ध का विभाग होता है और प्रारब्ध अनुसार नये शरीर की प्राप्ति होती है। देव-यान और पितृयान में जाने वाले उपरोक्त बताये हुये मार्ग से जाते हैं। ज्ञानी के प्राण ऊपर नहीं जाते, वहीं के वहीं लय हो जाते हैं।

प्रश्न १४--मोक्ष की इच्छा।

प्रश्नः—मोक्ष सुख का किसी ने प्रत्यक्ष नहीं किया है, बिना जाने किसी वस्तु की प्राप्ति की इच्छा नहीं होती, तो मोक्ष की इच्छा कौन करेगा ?

उत्तरः—मनुष्य जिन पदार्थों की इच्छा करता है, उन पदार्थों का प्रत्यक्ष अनुभव करके ही उनकी इच्छा हो ऐसा नियम नहीं है। किसी ने किसी देश अथवा वस्तु का वर्णन सुना तो सुनकर के भी उस देश के देखने अथवा वस्तु के पाने की इच्छा होती है सामान्य मात्र से 'मैं' हूं इस प्रकार आत्मा का प्रत्यक्ष हर एक को है। उसको विशेष जानने की इच्छा हो सक्ती है, तेरे कहे अनुसार इच्छा करने वाले ने पूर्व में मोक्ष

का अनुभव कभी नहीं किया है ऐसा स्वीकार किया जाय तो भी शास्त्र वाक्य और संत पुरुष, जिन्हों ने मोक्ष स्वरूप का अनुभव किया है उन महत् पुरुषों का वाक्य श्रवण करके और संसार में दुःख देख कर मोक्ष प्राप्ति की इच्छा हो सक्ती है आत्मा का अनुभव अज्ञान भाव से सब को है माया में जहां २ विषय सहित अथवा विषय रहित सुख की किंचित छाया पड़ती है वह आत्मा की है माया के आवरण के कारण से वास्त्विक प्रकाश जानने में न आते हुये भी जो कुछ जानने में आता है वह आत्मा—मोक्ष स्वरूप का प्रकाश है। बादल से ढका हुआ सूर्य देखने में नहीं आना तो भी जिस प्रकाश में व्यवहार होता है वह सूर्य का प्रकाश है इस प्रकार

अज्ञानियों को भी अनुभव होता है, इस लिये अज्ञान भाव से जाने हुए आत्म प्रकाश को यथार्थ रूप से प्राप्त करने की इच्छा संस्कारी जिज्ञासुओं को अवश्य होती है हर एक जानता हुआ अथवा न जानता हुवा मोक्ष की इच्छा करता है। इस प्रकार मोक्ष की इच्छा स्वभाविक है जीव का मुख्य तत्त्व मोक्ष स्वरूप है इसलिए सब को मोक्ष की इच्छा रहती है मोक्ष का अर्थ मुक्त होना–छूट जाना है वह जो बन्धन में पड़ा हुआ है यदि बन्धन को बन्धन समझे और बन्धन के दुःखों को जाने तो अवश्य बन्धन से मुक्त की इच्छा करेगा। परतंत्रता बन्धन है और स्वतंत्रता मोक्ष है, मनुष्य का तो कहना ही क्या है पशु पक्षी जीव जंतु

सभी स्वतंत्र रहना चाहते हैं तब मनुष्य अनेक प्रकार के माया के दुःखों को जान कर माया के बंधन से मुक्त होना-निवृत होना क्यों न चाहे मोक्ष परम सुख रूप है सुख की इच्छा प्रत्येक को होती है सुख की इच्छा न करना असम्भवित है। पाषाण अथवा पाषाण समान अन्तःकरण वाले को ही सुख की इच्छा न होती होगी, सुख सब चाहते हैं इस लिए परमसुख स्वरूप मोक्षभी सब चाहते हैं अब कोई ऐसी शंका करे सुख तो विषयों के संग से होता है और मोक्ष में किसी ने विषय दिखलाये नहीं हैं, विषय बिना वहां सुख क्या होगा सुख का भान त्रिपुटी में होता है त्रिपुटी रहित सुख का कहना व्यर्थ है इस का उत्तर यह है त्रिपुटी रहित

अवस्था समाधि की है और वहां ज्ञानियों ने परम सुख परमानन्द का अनुभव किया है वहां त्रिपुटी नहीं है समाधि से थोड़े अंश में मिलती हुई सुषुप्ति अवस्था है वहां त्रिपुटी का भान न होते हुए भी सुख का जो अनुभव होता है वह विषय रहित ही होता है, अज्ञानियों को भी इसका अनुभव है यदि कोई ऐसा कहे सुषुप्ति में सुख कहां है? वहां तो न सुख है न सुख का भाव है सुषुप्ति के पश्चात् जाग्रत अवस्था में आने से स्मरण होता है कि वहां कुछ प्रपंच न था। तो सुनो सुख और दुःख दोनों एक दूसरे से विरुद्ध हैं। दुःख का होना सुख का न होना और सुख का होना दुःख का न होना है जब किंचित् भी दुःख न हो तब जो रहा सो

सुख नहीं तो और क्या है? सुषुप्ति का सुख दुःख भाव रहित भाव से है परन्तु समाधि सुख सुख दुःख रूप द्वन्द रहित स्वरूप स्थिति परम सुख परमानन्द है जो अनुभव गम्य है। जब तक अज्ञानी का अज्ञान हट कर स्वरूप का स्वयं अनुभव न करें तब तक उनकी समझ में आना कठिन है, विषयों के सम्बन्ध से सुख का भान होता है और विषयों के वियोग से दुःख का भान होता है विषय सहित सुख सुख, स्वरूप से अल्प और क्षणिक है तो भी वह प्रकाश सुख स्वरूप का ही है। जगत् अज्ञान का कार्य है, अज्ञान ज्ञान से विरुद्ध होने पर भी ज्ञान रहित नहीं है उलटे भाव से रहने वाले ज्ञान को अज्ञान कहते हैं यह न जान कर भी सुख सब को

प्रिय है। मोक्ष सुख स्वरूप होने से मोक्ष भी सब को प्रिय है॥

मगर की माता समुद्र के किनारे अंडे रखती है उनमें से बच्चे उत्पन्न होते ही समुद्र की तरफ दौड़ते हैं। बच्चे ने समुद्र देखा नहीं है तो भी उसके अंग समुद्र-संबंध से बने हुये होने के कारण उसका जीवन भोजन समुद्र में है। इसी प्रकार अज्ञान के कारण चाहे जितने जन्म धारण किये जायँ तो भी शरीर इन्द्रिय आदिक में अधिष्ठान स्वरूप से चैतन्य आत्मा ही विराज मान है, उत्पत्ति, स्थिति और लय आत्मा स्वरूप से बाहर नहीं है। इसीलिये सब की इच्छा आत्म प्राप्ति-मोक्ष की तरफ स्वभाविक होती है।जिस प्रकार चुम्बक में लोहे का आकर्षण स्वाभाविक

रहता है इसी प्रकार मूल से अंशमात्र से मानने वाले जीव का स्वाभाविक आकर्षण आत्मा की तरफ रहता है। आत्मा स्वतंत्र और आनन्द स्वरूप होने से जीव भाव को प्राप्त होकर भी सुख और स्वतंत्रता चाहता है।

इच्छा ही जगत् का जीवन है। सब मनुष्य किसी न किसी प्रकार के पदार्थों की इच्छा किया ही करते हैं, इच्छा करके प्रयत्न में लगते हैं। कार्य इच्छानुसार हो तो भी इच्छा नहीं रुकती और बढ़ती जाती है यदि इच्छा के विरुद्ध कार्य हो तो दुःख होता है. अन्य प्रकार की इच्छा होती है। इच्छा की पूर्ती और अपूर्ति में बार बार दुःख होने से वैराग्य होना सम्भव है वैराग्य से मोक्ष की इच्छा होती है इस प्रकार सद्य अथवा

विलम्ब से या क्रम से मोक्ष की तरफ जाता है अन्त में सब इच्छाओं की निवृति करने वाली मोक्ष की इच्छा आ ही जाती है। इसी प्रकार मोक्षेच्छा थोड़ी बहुत सब इच्छाओं में सम्मिलित है।

अन्तिम सारांशः—मोक्ष स्व स्वरूप अपना आत्मा होने से उस का सामान्य अनुभव सब को है। अज्ञान के कारण पूर्ण स्मृति नहीं होती। अज्ञानी का भाव भी आत्मा की तरफ होने से आत्म प्राप्ति—मोक्ष स्वरूप की इच्छा वह भी कर सक्ता है। सुनने से इच्छा होती है। शास्त्र और संतों के मुख से परम सुख स्वरूप आनन्द स्वरूप आत्मा को सुना और हर एक सुख चाहता है इस लिये मोक्ष है की इच्छा होती है। परम सुख विषयों के

सम्बंध से प्राप्त नहीं होता। विषय रहित अखंडित सुख मोक्ष है। जब योग्यता सहित मोक्ष की तीव्र इच्छा होती है तब श्रवण, मनन और निदिध्यासन से परम पुरुषार्थ सिद्ध होता है।

प्रश्न—१५ सत् और असत्।

प्रश्नः—प्रत्यक्ष दीखने वाले संसार को तुम असत्य बताते हो और न दीखने वाले आत्मा को सत्य बताते हो, यह कैसे समझने में आवे ?

उत्तरः—जो पदार्थ दीखते हैं और जो नहीं दिखते वे असत्य हैं ऐसा नहीं है। तू भी इस प्रकार नहीं मानता। वायु देखने में नहीं आता तो भी वायु है ऐसा कहना पड़ता है वायु नहीं है ऐसा नहीं कह सकते,

सुगन्ध, दुर्गन्ध नेत्रों का विषय नहीं है इस लिये दिखते नहीं हैं तो भी वे नहीं हैं अथवा मिथ्या हैं ऐसा नहीं कह सक्के। ऐसे ही जितना दिखता है वह सभी सच्चा है यह भी नियम नहीं है। स्वप्न में देखे हुए अनेक पदार्थ, मरुस्थल का जल और रस्सी में सर्प की भ्रान्ति दीखती हुई भी वस्तु रूप से सत्य नहीं है इससे यह सिद्ध होता है कि दीखने वाले पदार्थ सच्चे और झूठे दोनों ही हो सक्के हैं वैसे ही न दीखते हुए पदार्थ भी सत्य और असत्य दोनों ही होते हैं संसार दीखता है इस लिये असत्य न हो ऐसा नहीं है तू ही रात्रि को जब सोता है गहरी नींद में पड़ जाता है तब तेरे लिये संसार कहां रहता है? संसार वाला तेरा शरीर कहां रहता है संसारी

भाव वाला स्वयं तू है या नहीं है इसकी भी तुझे खबर नहीं रहती तब संसार को सत्य कीस प्रकार से कह सकते हैं। वेदान्तानुसार सत्य की व्याख्या इस प्रकार है:—जो पदार्थ अविकारी, उत्पत्ति नाश रहित तीनों काल में एकसा रहने वाला हो वह सत्य है जो उसमे विरुद्ध स्वभाव वाला हो वह असत्य है ॥

अंतिम सारांश:—अध्यस्त (सत्य में बनावटी दीखने वाला) अधिष्ठान (सच्ची वस्तु) को दूषित नहीं करता, पर ब्रह्म अधिष्ठान। स्वरूप है और जगत उसमें अध्यस्त है जब अज्ञानी अध्यस्त पदार्थ को सच्चा समझ लेता है तब अधिष्ठान को नहीं जानता जिन उपाधियों करके जगत् सत्य दीख रहा है उन उपाधियों को हटा कर जब अधिष्ठान को

देखा जाय तब प्रसिद्ध सत्य दीखता जगत् असत्य है और अज्ञानियों को प्रसिद्ध न दीखता हुआ परब्रह्म सत्य है ऐसा समझ में आजाता है अस्ति, भाति और प्रिय रूप परब्रह्म और नाम रूप जगत् का स्वरूप पृथ्वी और नाटक के दृष्टांत से समझाया है जिससे संस्कारी बुद्धि वाले समझ सक्ते हैं।

प्रश्न--१६ आत्मा की चैतन्यता

प्रश्नः--आत्मा सामान्य प्रकाश वाला है तो प्रकाश करने वाले दीपक की समान जड़ हुआ, सामान्यता में विशेषता नहीं और विशेषता बिना चैतन्यता कहां? शरीर पैदा होताहै उसमें जीव के प्रवेश होने का क्या प्रमाण है ?

उत्तरः—आत्मा क्या है, यह समझ ने से

ही सब बात समझ में आजाती हैं, जब तक आत्मा को न जाने तब तक आत्मा को अनात्म पदार्थों के साथ मिला लिया जाता है अथवा अनात्म पदार्थों में से किसी एक में आत्मा होने की भ्रांति हो जाती है। अपने आपको आत्मा कहते हैं, सब का जो अपना आप हैं वह आत्मा है सबका आत्मा समान है इस लिये वह समान कहा जाता है। आत्मा किसी में अधिक अथवा न्यून नहीं है। अपना आत्मा सब को विशेष प्रिय होता है। शूकर को नीच योनि में होने के कारण अपना आत्मा न्यून प्रिय हो ऐसा नहीं है। चींटी से लेकर ब्रह्मा पर्यन्त अपना २ आत्मा सब को एक सा ही प्रिय हैं। जैसे मनुष्य अपनी बुद्धि के अनुसार समझे हुए

अपने आत्मा की रक्षा करते हैं वैसे ही क्षुद्र जन्तु भी अपनी सामर्थ्य अनुसार अपनी रक्षा करते हैं जैसे मनुष्य अपना मूल्य विशेष समझता है और क्षुद्र जंतुओं को तुच्छ समझता है ऐसे ही यदि कोई क्षुद्र जंतुओं से जाकर पूछे तो वे अपना मूल्य विशेष बतावेंगे।

एक समय एक मनुष्य और एक शेर में मित्रता थी मनुष्य जो कुछ कहता था उसे शेर समझ जाता था और अपनी आवश्यकता के अनुसार किसी न किसी चिन्ह से अपना भाव मनुष्य को समझा देता था। एक बार दोनों मित्र एक वन में जा रहे थे. वहां एक मंदिर देखा उसकी दीवारों पर अनेक प्रकार के चित्र बने हुए थे। उनमें से

एक चित्र में मनुष्य और शेर की कुश्ती हो रही थी। मनुष्य बहुत तगड़ा पहलवान दीखता था, उसने शेर की गरदन पकड़ रक्खी थी और उसे पछाड़ने ही को था, उसको देख कर मनुष्य ने शेर से कहा, मित्र, देख तेरे जाति भाई की पहलवान क्या दुर्दशा कर रहा है ? शेर नें ठंडी सांस लेकर कहा, हां, ठीक है ? परन्तु हे मनुष्य मित्र ! तू जानता है कि चित्र खींचने वाला मनुष्य है इस लिये मनुष्य ने मनुष्य की शौर्यता दिखाई है। तूने भी मुझ को जो यह चित्र दिखलाया है, यह मनुष्यत्व के अभिमान से ही दिखलाया है, यदि चित्रकार शेर होता तो, तू इस समय जाति भाई की दुर्दशा देख रहा होता, शेर की युक्ति पूर्वक बात सुन कर मनुष्य चुप

हो गया।

अंतिम सारांशः—आत्मा के सामान्य प्रकाश और दीपक के प्रकाश की समानता नहीं हो, उसकी विशेषता बिना चैतंन्यता न हो यह नियम नहीं है। भौतिक—मायिक पदार्थों के दृष्टांतों से समझाये हुए जड़ चैतन्य से आत्मा की चैतन्यता विलक्षण है, वह किसी प्रकार जड़ नहीं हो सक्ता शरीर के उत्पन्न होने के पश्चात् उसमें जीव का आना नहीं होता किन्तु जीव सहित ही स्थूल शरीर उत्पन्न होता है, जब उसमें जीव का प्रवेश है ही नहीं तो प्रवेश होने का प्रमाण क्या हो।

प्रश्न १७ जन्म किसका ?

प्रश्नः—मरने के बाद जल कर खाक

हो गया कुछ न रहा, फिर जन्म किसका होगा ?

उत्तरः—जो मरा सो कौन मरा वह चैतन्य था अथवा जड़ था ? प्रथम तो यह विचारना चाहिये । पंचीकृत पंचभूतों से बना हुआ जो शरीर है वह जड़ है वही जगत में उत्पन्न होता है और मरता है जो मर गया वह पंचतत्व को प्राप्त हो गया ऐसा भी कहते हैं इसका अभिप्राय यही है कि जो ताने बाने के समान पंच महाभूतों से ग्रथित हुआ था वह निवृत्त हो गया और पंचतत्व अपने २ तत्वों को प्राप्त हो गये इसका नाम मरना है स्थूल शरीर को जलाते, जल में प्रवाह करते पृथ्वी में गाड़ते अथवा जंगल में फेंक देते हैं इस प्रकार मृतक शरीर की चार

गति है इन चारों प्रकार से सातों धातु (रस, रुधिर, मांस, मेद, मज्जा, अस्थि और रेत) जिनका स्थूल शरीर बना है अपने २ तत्त्व में मिल जाती हैं अर्थात् शरीर नाश होने से पांचो तत्व पंच महा भूतों में मिल जाते हैं उन्हीं को तू कहता है कि खाक होगया और कुछ न रहा यह कैसे क्या जो कुछ था शरीर ही था जीते और मरे शरीर में कुछ अन्तर है या नहीं यदि अन्तर न होय तो तेरे कहे अनुसार कुछ न रहा परन्तु स्थूल शरीर में कोई एक ऐसी वस्तु है कि जिसके रहने ही से अपवित्र वस्तुओं से बना हुआ शरीर समझा जाता है जब वह नहीं रहता तब जो कुटुम्बी उसे प्यार करते थे वेही उसे घर से बाहर निकाल कर जला देते हैं जब वस्तु

नहीं रहती तब किसी प्रकार की क्रिया नहीं होती यदि उसे जलाया न जाय तो सड़ जाय विचारना चाहिए कि सड़ने का क्या कारण है जो प्रथम सौन्दर्य वाला दीखता था वही भयंकर दीखने लगता है इससे सिद्ध है कि कोई वस्तु उसमें अवश्य थी जिससे वह जीवित था मरने के समय कोई पदार्थ बाहर जाता हुआ दिखाई नहीं देता इसलिये उसमें कुछ और न था और कुछ निकल कर नहीं गया ऐसा मूर्ख के सिवाय और कोई नहीं कह सकता जो था वह स्थूल पदार्थ न था इस लिये स्थूल दृष्टि का विषय नहीं था फिर किस प्रकार दिखाई दे उसी वस्तु से अन्तःकरण काम करने योग्य बना हुआ था उसी से ज्ञानेन्द्रिय ज्ञान वाली थीं. वह वस्तु

ही शरीर में राजा रूप थी जैसे राजा जब राज्य स्थान छोड़ कर चला जाता है तब उसकी सब प्रजा भी उसके साथ चली जाती हैं सब शहर खाली पड़ा रहता है और वहां भूत पिशाच औरशेर गीदड़ आदि का वास हो जाता है इस प्रकार जब शरीर का अधि-पति शरीर को छोड़कर चला जाता हैं तब शरीर का भी वही हाल हो जाता है बाहर के चिन्हों से तो इतना ही मालूम होता है कि श्वासोश्वास जो पहले लेता था अब नहीं लेता जो शरीर पहले गरम था अब ठंडा पड़ा है उस गरमी के साथ ही प्राकृत जीव रहता था उसने शरीर रूप स्थान छोड़ दिया है वह जीव अन्तःकरण संयुक्त और वासनामय होता है इसलिये एक शरीर को

भोग रूप वासना को समाप्त करके दूसरे प्रकार.......इस दृष्टांत से विदित हुआ होगा कि पूर्व के कर्मों के अनुसार प्रारब्ध बनता है जब पूर्व के कर्मों का फल यही जन्म है तब अब के किये हुये कर्मों का फल उत्तर जन्म भी है।

अन्तिम सारांश—मरने के पीछे जल कर खाक होने वाला स्थूल शरीर है जिसका यह स्थूल शरीर है वह करता भोक्ता जीव उससे भिन्न है जब तक वह शरीर में रहता है तब तक शरीर जीता कहलाता है जब वह शरीर का भाव छोड़ता है तब शरीर मृतक हो जाता है जीव अपने कर्मानुसार दूसरा शरीर धारण कर लेता है इस प्रकार शरीर का धारण करना जन्म कहा जाता है नास्तिक

शरीर को ही आत्मा मानते हैं यह उनका न मानना शास्त्र और संतों के अनुभव से विरुद्ध है और लोक दृष्टि से भी इस प्रकार मानना अयुक्त है यह बात दृष्टांत से समझाई है।

प्रश्न-१८ मैं कौन हूं ?

प्रश्नः-मैं कौन हूँ किस के सहारे टिका हुआ हूं ? जाग्रतादि अवस्था क्या है ? किस की हैं ? और अवस्थाओं का फल क्या है ? भावना अनुसार फल होता है तो हम राजा होने की भावना करने से राजा क्यों नहीं हो जाते।

उत्तरः—एक गँवार एक शहर में गया और एक दुकान से कुछ सोदा लेने लगा दुकान वाले ने किसी कारण से कहा तू

गधा है गँवार ने कहा क्या मैं सचमुच गधा हूं उसकी यह बात सुन कर एक मनुष्य ने जो पास खड़ा था हँस कर कहा सच मुच तू गधा ही है गँवार विचार करने लगा और थोड़ी देर में बोल उठा नहीं मैं गधा नहीं हूँ. गधा हूँ तो भुस क्यों नहीं खाता दुकानदार मुसकरा कर बोला तू है तो गधा ही परंतु चतुर गधा है गँवार की तरफ देख कर भुस तो तू इस लिये नहीं खाता कि लड़कपन से तुझे रोटी खाने को मिलती रही है। गँवार जी में सोचने लगा ठीक तो है ऐसा है तो मैं गधा हो सक्ता हू और रोटी मिलने से भुस नहीं खाता उसे सोच में देख कर दुकानदार ने कहा मूर्ख जो तुझे मेरी बात का विश्वास न हो तो दूसरे से कुछ देख

थोड़ी दूर पर एक मनुष्य जा रहा था उसको पास बुला कर गँवार ने कहा सेठजी यह लालाजी मुझे गधा बताते हैं क्या मैं सच मुच गधा हूं आप सच २ बताइये ऐसी मूर्खता का प्रसन्न सुन कर पथिक ने मुसकरा कर कहा हां, तू गधा है। अब तो गँवार को गधा होने का भाव दृढ़ होने लगा परन्तु पूर्ण दृढ़ता न हुई मैं गधा हूं या कुछ और हूं इस चिन्ता ने उसको व्यग्र कर डाला। वहां से वह चल दिया मार्ग में जो मिलता उससे यही प्रश्न करता उसका प्रश्न सुन कर सब उसे गधा बताते अंत में एक सच्चा मनुष्य मिला उसने कहा अरे मूर्ख क्या तू नहीं जानता तू मनुष्य है गँवार सोचने लगा सब मुझे गधा बताते हैं यह एक मनुष्य बताता है

अब मैं किस की बात सच्ची मानूं निश्चय नहीं होता कि मैं सचमुच कौन हूं। क्या तेरा यह प्रश्न इसी प्रकार नहीं है जैसे उस गँवार को गधा बताने वाले बहुत थे और मनुष्य बताने वाला एक ही था इस प्रकार तुझे कर्ता भोक्ता जीव बताने वाले संसारी मनुष्य बहुत हैं और एक सच्चा संत तुझ को आत्मा कहता है तू संशय के जाल में पड़ा हुआ है इस लिये निश्चय नहीं कर सक्ता कि तू कौन है तू सच्चिदानंद आत्मा है, परब्रह्म तुझ से अभिन्न है जगत की उत्पति स्थिति और लय जिसमें हुआ करती है जो सब का अधिष्ठान स्वरूप है, वही तू आत्मा है परन्तु जब तक तेरा भाव अज्ञान से सम्मिलित है तब तक तू उसे कर्ता भोक्ता के भाव

में लगाता है जब तेरा अज्ञान जाता रहेगा तब तू मैं का शुद्ध आत्मा में प्रयोग करेगा।

तेरा दूसरा प्रश्न है मैं कैसा हूं जब तक तू कौन है यह नहीं जानता तब तक तू कैसा है किस प्रकार जान सकेगा तू शरीर पर काला कुरता काला पजामा और काला साफा बांध कर अपने को कपड़ों के साथ एक करके पूछे मैं कैसा हूं तो हर एक तुझे काला बतावेगा और जब तू किसी संत के पास जाकर इस प्रकार का प्रश्न करेगा तो वह तेरे अज्ञान का प्रश्न देखकर कहेगा कि तू अज्ञान वाला है भिन्न २ दृष्टि के कारण एक ही प्रश्न के तुझे भिन्न २ उत्तर मिलेंगे यदि मैं तेरे प्रश्न का उत्तर वस्तु के शुद्ध भाव से कहूं तो तू अव्यय अक्रिय सर्वव्यापक और सत्य

वस्तु ज्ञान स्वरूप निर्विकार है इस पर यदि तू ऐसा कहे कि मैं ऐसा नहीं हूँ तो तेरा यह कहना इसलिये है कि तैंने वास्तविक स्वरूप नहीं समझा है शरीर सहित अपने को मानता है इस लिये अव्यय नहीं हूं ऐसा कहता है जिसमें से कभी न्यून न हो उस को अव्यय कहते हैं। उपाधि के कारण तू अपने को सर्वव्यापी भी नहीं मानता मैं जिस तेरे स्वरूप का वर्णन करता हूं जब तू उस स्वरूप के भाव वाला होवे अथवा उस स्वरूप में स्थिति वाला होवे तब ही ठीक समझ सक्ता है जब तक तू ऐसा न होवे तब तक महत् पुरुषों के वाक्य मान कर तुझ को समझने का प्रयत्न करना चाहिये। थोड़े वचनों में तेरे प्रश्न का उत्तर यह है कि तू

सब माया-प्रपंच का अधिष्ठान शुद्ध स्वरूप अद्वैत ब्रह्म है ॥

अपनी भावना के निश्चय से ब्राह्मण पुत्र राजा का जमाई हुआ, दृढ़ी भूतभाव, वाह रे तेरा सामर्थ्य? ऊपर के दृष्टान्तों से तूने देखा होगा कि राजा होने की अथवा और किसी प्रकार की भावना करने वाले राजा अथवा और कुछ होते ही हैं जब तू राजा होने की इच्छा करता है तब तू नहीं जानता कि तेरी इच्छा तीव्र है अथवा मंद है। जब तू 'मैं राजा होऊं तो यह २ काम प्रथम करूंगा' ऐसा कहता है तब तेरे अन्तःकरण का भाव इससे विरुद्ध होता है चाहे तुझे मालूम पड़े या न पड़े उसमें यह भाव अवश्य होता है, राजा होने के योग्य मैं नहीं हूं मेरा प्रारब्ध ऐसा कहां है, जो

राजा होना ही होता तो सामान्य मनुष्य के यहां मेरा जन्म ही क्यों होता ? यह विरुद्ध भाव तेरे राजा होने के भाव को काट देता है, जब तुझे स्वयं ही राजा होने का निश्चय नहीं है तब तू राजा कैसे हो सके ? यदि तू कहे कि मैं भीतर से ऐसा भाव होने हो न दूं तो क्या राजा हो जाऊंगा इसका उत्तर यह है कि हां अवश्य हो जायेगा परन्तु इस प्रकार की काटने वाली विरूद्ध भावना न होने देना तेरे इस मलिन अन्तःकरण का काम नहीं है। फल प्राप्त कराने वाली भावना जैसी तीव्र और निश्चल होनी चाहिये यदि वैसी न होगी तो फल न होगा और यदि किसी कारण से वैसी तीव्र भावना हो जायगी तो फल प्राप्त होने में कुछ संदेह

नहीं है पांच की कमाई करने वाले को दश कमाने की तीव्र भावना हो सक्ती है परन्तु पांच रुपये कमाने वाले को करोड़ रुपये कमाने की तीव्र इच्छा नहीं होती। ज्यों ज्यों तू इच्छाओं से बढ़ता है त्यो त्यों तेरी इच्छाएं बढ़ती जाती हैं, यह सामान्य नियम भी तेरी राजा होने की भावना के विरुद्ध है ॥

अंतिम सारांश—अज्ञान को हटा कर विचार दृष्टि से देखे तो तू सच्चिदानन्द ब्रह्म है, ऐसा सच्चिदानन्द परब्रह्म किसी के सहारे नहीं टिका है वह तो महान विभु, अव्यक्त होने से अपनी महिमा में टिका है। जाग्रतादि अवस्थायें व्यवहार में जीव के टिकने का स्थान रूप हैं। अवस्थायें स्थूल, सूक्ष्म और कारण शरीर की हैं परन्तु अज्ञान के कारण

से जीव की कही जाती हैं उन तीनों अवस्था-ओं का फल मुमुक्षुओं को आत्मबोध कराने में है। मलिन और अदृढ़ भावना से राजादिक होने की कीहुई इच्छा सफल नहीं होती परंतु निश्चय दृढ़ता और तीव्रता से जो भावना की जाय तो भावना के अनुसार अवश्य फल होता है। अनेक संयोग भी इस प्रकार की भावना होने में सहायता करने वाले हो जाते हैं

प्रश्न-१६ जीव सृष्टि और ईश्वर सृष्टि

प्रश्नः—लोभ क्रोध मोह आदिकों को दुःख देने वाले जान कर भी जीव क्यों नहीं त्यागता ? सब संसार और संसार के पदार्थ ईश्वर रचित हैं, तो लोभ क्रोध मोहादिक भी ईश्वर रचित हैं उनको जीव कैसे हटा सक्ता है।

उत्तरः—जगत् में जितने पदार्थ हैं उनमें कोई भी ऐसा नहीं है जिसमें दोष ही दोष हों अथवा जो मात्र दुःख देने वाला ही हो सुख और दुःख दोनों मिले रहते हैं वह उनके प्रमाण में अंतर होता है। लोग जिस को सुख कहते हैं वह दुःख रहित नहीं होता ऐसे ही दुःख भी सुख रहित नहीं होता जिस में सुख दिखता हो और दुःख दबा हो उसको सुख, और जिसमें दुःख दिखता हो और सुख दबा हो उसको दुःख कहते हैं। लोभ क्रोध मोहदिक का संसारी दुरुपयोग करते हैं इस लिये वे विशेष रूप से दुःखदायक होते हैं जब उनका सदुपयोग किया जाता है तो वे सुख देने वाले होते हैं। पदार्थ के गुण अथवा अवगुण का ग्राहक और उपयोग पर

आधार है। जब लोभादिक का सदुपयोग किया जाता है तो वे ज्ञान प्राप्ति में हितकारक होते हैं। दुःखदायक समझे हुए प्रपंच के विषयों को चित्त से हटाने पर भी चित्त बारम्बार उन्हीं में दौड़ कर जाता है में उस चित्त पर क्रोध करने से वैराग्य स्थिर होता है। स्वस्वरूप आत्मा का मोह प्रपंच को तोड़ कर आत्म प्राप्ति कराता है। जगत् के पदार्थों का विषयासक्ति से उपयोग करना उनका दुरुपयोग होता है वह दुःख उत्पन्न करने वाला है। लोभ, क्रोध, मोहादि प्रपंच में दुःख देने वाले हैं, ऐसा जीव सामान्य जानता है, विशेषता पूर्वक दृढ़ता से नहीं जानता इस लिये सामान्य जाने हुओं का जीव त्याग नहीं कर सक्ता. जब जीव उनमें

दब जाता है तब उसका दुःख रूप होना भूल जाता है यदि उस दुःखका ज्ञान आंतरिक भाव से दबने न पावे तो जीव लोभादि को त्याग सक्ता है। अनिश्चत मनुष्य एक पक्के निश्चय पर नहीं आता। डावांडोल चित्त वाला एक क्षण में एक निश्चय वाला और दूसरे क्षण में दूसरे निश्चय वाला होता है, इस लिये प्रपंच में प्रवृत करने वाले लोभादि को छोड़ नहीं सकता॥

जगत् भूल का बना हुआ है, उसमें क्षण २ में भूल हुआ करती है। जो मनुष्य जगत भाव में फंसा हुआ है उसको सामान्यता से जानी हुई भूल का छोड़ना नहीं बनता, जीव भाव भूल से बना हुआ है इस लिये जीव भाव सहित सब भूल का त्यागना

असंभव है, जीव में शुद्ध तत्व जो भूल और विकार से रहित है उसके सहारे से वह भूलों का परित्याग कर सक्ता है। लोभ, क्रोध, मोहादिक कराने वाली कामना है, यदि कामना छुट जाय तो वे भी छुट जायं जीव कामना नहीं छोड़ सकता इस लिये वे भी नहीं छुटते।

लोभादिक तमोगुण की विशेषता में होते हैं। जब तमोगुण न्यून हो जाता है और सतोगुण की विशेषता होती है तब वे नहीं आते। जिस प्रकार अंधेरे में घुघु, पिशाचादि विचरा करते हैं इसी प्रकार तमोगुण के अंधेरे में पिशाच की उपमा वाले लोभादिक विचरा करते हैं जब ज्ञान रूप प्रकाश वाला सूर्य उदय होता है तब उनका

विचारना बन्द हो जाता है। जैसे श्मशान में होने वाला वैराग्य नाम मात्र है, कुछ फल नहीं देता, ऐसे ही किसी प्रसंग पर लोभादिक दुःखदायक हैं ऐसा जानना कहने मात्र है, वह त्याग रूप फल उत्पन्न नहीं कर सक्ता, जब मनुष्य पूर्ण उत्कंठा से विषयों में आसक्त हो जाता है तब गुरु शास्त्र के उपदेश आदि सब बातें भूल जाता है, जब विषयों में दुःख मिलता है तब अपने को धिक्कारता भी है परन्तु वह धिक्कार पानी की बून्द के समान स्थिर नहीं रहती किन्तु कामना रूप वायु लगते ही सूख जाती है। जब विषय सामने आते हैं उनमें सुख ही है इस भाव के सिवाय और भाव नहीं आता। ऐसे प्रसग में उसका किया हुआ पूर्व का

धिक्कार कुछ काम नहीं देता ॥

एक ग्राम के लोगों को नाटक का तमाशा देखने की इच्छा हुई। उन सब ने चंदा करके एक थियेटर बनाया, एक सूत्रधार और कई तमाशा करने वाले नोकर रक्खे। सीन, सीनरी आकर्षण करने वाली बनाई गई। तमाशा आरम्भ हुआ। नाटक घर जब देखें तब प्रेक्षकों से भरा दीखे, सूत्रधार ने जगन्नाटक का खेल आरम्भ किया। संसार दुःख रूप है, उसके पादर्थ विष रूप हैं, संसार की तरफ से सुख की वृत्ति ही जन्म मरण का कारण है" इस प्रकार बारंबार दिन प्रतिदिन उपदेश होते हुए भी ग्राम वाले कंगाल हो गये परन्तु उन्हें तमाशा देखने की ऐसी चाट पड़ गई कि वे अपना कर्तव्य कर्म भी छोड़ बैठे ॥

कई वर्ष पीछे सुज्ञ मनुष्य ने बिचार किया मैं और सब ग्राम वाले इस प्रकार दुखी क्यों है ?कंगाली बहुत ही बढ़गई है। इसको दूर करने का कुछ उपाय करना चाहिये ? ऐसा बिचार कर उसने दो मनुष्य अपनी तरफ मिलाये और नाटक घर में जाकर सूत्रधार से कहा, अब तू हमारे ग्राम में से अपने डेरे तम्बू उठा लेजा जब से तूने तमाशा आरंभ किया है तब से हम लोग दुःखी हैं हमारा सब प्रकार से नाश करने वाला तू ही है सूत्रधार ने कहा, महाशयो! मैं बारम्बार आपको उपदेश करता हूँ नाटक देखना बुरा है आप मेरे उपदेश को ग्रहण नहीं करते, यदि तमाशा देखने से आपका नाश होता है तो आप तमाशा मत देखिये ? सुज्ञ मनुष्य ने कहा नहीं ! तू तमाशा

करना बंद करदे जो तू तमाशा करता रहेगा तो हम लोग देखे बिना नही रह सक्के । सूत्रधार ने कहा वहां मैं आप लोगों को बुलाने तो नहीं जाता हूं आप लोग अपनी इच्छासे आते हैं और दुखी होने का दोष मेरे सिर पर मढ़ते हैं। अपने करने का काम आप न करके दूसरे को बंद करना क्या यह न्याय है ? सुज्ञ पुरुष ने कहा तेरा तमाशा मोह उत्पन्न करता है, तेरे पात्रों की शोभा हाथ, पैर, नेत्र और शरीर की चेष्टा, शब्द की माधुर्यता हमको बलात्कार से खींच लाती है भले आदमी अपना तमाशा उठा लेजा और हमें सुखी कर सूत्रधार ने कहा महाशय ! न मेरा तमाशा है, न मैं करता हूं आप लोगों ने ही रुपया एकत्र करके नाटक घर बनाया

है और सब सामग्री तैयार की है, मैं तमाशा कैसे बन्द करूं ? तुम तमाशा करने को प्रथम ही दाम दे चुके हो। सुज्ञ पुरुष ने कहा, तू भागजा ! हमारा रुपया अपने पास रहने दे। सूत्रधार ने कहा वाह ! आप तो मुझे दगा करके भाग जाने की शिक्षा देते हैं। आपके दाम-कपड़े का यह सब तमाशा है, यदि आप दिये हुए कपड़े लेलें तो मैं चला जाऊं, रोकड़ मेरे पास कुछ है नही, तुमको कपड़े लेकर सब ग्राम की तरफ से रसीद देनी पड़ेगी। इतने में सुज्ञ पुरुष का एक परदेशी मित्र आगया उसकी आज्ञा से सुज्ञ ने सूत्रधार के सब वस्त्रों को खींच लिया तो क्या देखा कि सूत्रधार कोई नहीं है उनकी अपनी ही छाया वस्त्र धारण

करके सूत्रधार बनी थी। कपड़े खेंचते ही नाटक घर, पात्र, सीन और सब सीनरी लोप होगई स्वयं शेष रह गया।

नाटक रूप संसार और ईश्वर रूप सूत्र-धार इस प्रकार हैं। जीव की वासनामय वृत्ति के मौल्य से सूत्रधार और उसकी सृष्टि बनी है। नाटक के हाव भाव, लोभ क्रोध, मोह, नाटक के नहीं हैं किन्तु जीव की वासना के ही स्वरूप हैं। इस प्रकार संसार और संसार के पदार्थ ईश्वर रचित नहीं हैं।

अंतिम सारांशः—लोभ, क्रोध, मोह दुःखदायक हैं यह जो जीव जानता है यह भाव हमेशा नहीं रहता इसलिये वह जान कर भी उन्हें छोड़ नहीं सकता। जैसे

श्मशान का वैराग्य, वैराग्य रूप नहीं है ऐसे दुःख के समय लोभादिक दुःख रूप हैं ऐसा जानने से वे छोड़े नहीं जाते। जब दुःख का भाव हमेशा बना रहता है तब जीव लोभादिक के छोड़ने को समर्थ होता है। संसार और संसार के पदार्थ निरपेक्ष ईश्वर रचित नहीं हैं। जीव के कर्मानुसार अज्ञान के होने से जीव रचित ही समझने चाहिये। इसी प्रकार लोभादिक भी जीव में हैं और जीव भाव की वासना की रचना है इस लिये जीव अपनी वासना छोड़ सक्ता है उनके छोड़ने में जीव स्वतंत्र है। संसार, संसार के पदार्थ और संसार का कर्ता सब कुछ जीव की छाया का स्वरूप है। अपने शुद्ध आत्म तत्त्व में स्थित होते ही—अपनी वासना खैंचते

ही परब्रह्म शेष रह जाता है।

प्रश्नः—मात्र ज्ञान ही सत्य है तो कर्म उपासना, भक्ति आदिक विधान बताने वाले शास्त्र किस अर्थ हैं ?

उत्तरः—सत्य एक ज्ञान ही है तो भी समझ में आने के लिये तीन प्रकार से समझाते हैं। संसार में तीन प्रकार के पदार्थ हैं प्राति भासिक, व्यवहारिक और वस्तु स्वरूप। (१) भ्रान्ति काल में दीखती हुई सत्यता प्रतिभासिक है जैसे किसी दोष के कारण एक चन्द्रमा के बदले दो दीखते हों। जिस समय ऐसा दीखता है उस समय दूसरा चन्द्रमा सत्य होता है। (२) जाग्रत की ठीक बोध वाली स्थिति व्यवहारिक है, उसमें एक चन्द्र देखना व्यवहारिक सत्य है। प्रातिभासिक सत्यता

व्यवहार में असत्य हो जाती है और व्यव-हारिक सत्यता प्रतिभासिक अदृश्य हो जाती है। (३) वस्तु स्वरूप सत्यता सम्पूर्ण सत्य है। उसके सामने प्रतिभासिक और व्यवहारिक सत्यता दोनों असत्य हैं। वस्तु में व्यवहारिक भी प्रतिभासिक हो जाता है वस्तु पर ब्रह्म है उसकी अपेक्षा दोनों सत्यताए अति तुच्छ हैं। वस्तु सत्य होने से वस्तु का ज्ञान भी सत्य होता है। वस्तु के अज्ञान से व्यवहारिक है और व्यवहार के विशेष ज्ञान के अभाव से प्रातिभासिक है। वस्तु—ब्रह्म का आवरण करने वाला कोई है नहीं. इस लिए वस्तु का ज्ञान ही सत्य है। उसमें सत्य शब्द का उप-योग भी समझने के निमित्त किया है। प्रतिभा-सिक और व्यवहारिक एक दूसरे में असत्य होते

हैं। और वस्तु में दोनों ही असत्य हैं क्योंकि वस्तु की सत्यता किसी समय में असत्य नहीं होती। वस्तु व्यावहारिक और प्रतिभासिक दोनों का आद्य अधिष्ठान है। अज्ञान के कारण उसकी सत्यता न दीखे तो भी कहीं चली नहीं जाती। जैसे भ्रान्ति से सर्प देखने के समय रज्जु का रज्जुत्व नहीं जाता। प्रतिभासिक और व्यावहारिक परिच्छिन्न सत्य हैं, तुच्छ और अल्प हैं, मात्र वस्तु स्वरूप का ज्ञान ही एक पूर्ण सत्य है।

भ्रान्ति में प्रतीत होने वाली सत्यता प्रतिभासिक है। कर्म में रहने वाली सत्यता व्यावहारिक है जो कर्म फल देकर निवृत्त होता है कर्म संसार है इसलिये कर्म का फल संसार से निकालने वाला नहीं होता उपा-

सत्ता की सत्यता भी व्यवहारिक के समान है। वह भी मानसिक कर्म रूप है, सर्व श्रेष्ठ ब्रह्म लोक तक पहुंचाना अथवा कर्म मोक्ष मार्ग में लेजाना उपासना का फल है । यह भी संसार के बहार नहीं है। इसलिए संसार के अन्त तक पहुंचा देती है ज्ञान स्वरूप आत्मा संसार से बहार है इसलिये सम्पूर्ण वह ही है ॥

अंतिम सारांशः—ज्ञान ही सम्पूर्ण सत्य है। कर्म और उपासना उसकी अपेक्षा तुच्छ होने से असत्य हैं परन्तु कर्म के अधिकारी को कर्म और उपासना के अधिकारी को उपासना फल देने वाली होने से उनके लिये असत्य नहीं हैं। संसार में सब मनुष्य एक प्रकार के नहीं हैं, सब मनुष्य तीन वर्ग बना

कर हरेक वर्ग को अलग २ उपदेश किया है कर्म और उपसना का फल ज्ञान के फल के समान अंतिम नहीं है। जितना हो सके उतना कल्याण करने को शास्त्र में कर्म और उपासना का विधान है। उन दोनों के करने से ज्ञान का अधिकारी हो जाता है, कर्म और उपासना का विधान सत्य की तरफ लेजाने की प्रेरणा करने वाला होने से बहुत से अधिकारियों के लिये सफल है॥

प्रश्न—२१ दुःखकर जगत्

प्रश्नः—जीव को संसार में विशेष करके दुःख ही दुःख होता है तो जीवों को दुख देने के लिये ऐसी दुनियाँ ईश्वर ने क्यों रची ?

उत्तरः—शास्त्रों में जगत् का कर्ता ईश्वर कहा है और जगत् को अनादि भी बताया है। अना-

दि की उत्पत्ति यह विरुद्धता किस प्रकार होगी इसका विचार करना चाहिये. अनादि जगत् का बनाने वाला ईश्वर किस प्रकार होगा और वह ईश्वर कैसा होगा? ऐश्वर्य वाले को ईश्वर कहते हैं। किसी प्रकार की विशेषता का नाम ऐश्वर्य है। जीव व्यष्टि भाव वाला है उसका जो समष्टि भाव है वह ही ईश्वर है। सब जीवों की पृथक् अहंता को छोड़ कर जिस एक में सब का समावेश किया जाय उसको ईश्वर कहते हैं ब्रह्मांड भर जिसका एक शरीर है ऐसा कोई एक ईश्वर समझा जाता है कर्म और उपासना के अधिकारी इस गुप्त रहस्य को नहीं समझते और योग्यता रहित समझ जायं तो कर्म और उपासना में से उन लोगों की

श्रद्धा उठ जाय इस लिये पुराण आदि शास्त्रों में उनकी रुचि के अनुसार ईश्वर वर्णन किया गया है । जैसे एक मनुष्य अपने शरीर अंग उपांग सहित चैतन्य को मिलाकर अज्ञान से मैं हूं ऐसा कहता है इसी प्रकार समष्टि शरीर को अज्ञान भाव सहित "मैं हूं" ऐसा ईश्वर नहीं कहता । जो परम तत्त्व ब्रह्म है वह ही ईश्वर है, उस से दूसरा कोई ईश्वर नहीं है वेदान्त के अनुसार माया की उपाधि सहित ईश्वर कहा जाता है तो भी वह उपाधि वाला नहीं है न वह उपाधि के भाव वाला है और उपाधि से तादात्म्य है परन्तु अक्रिय में क्रिया रूप जो सृष्टि की रचना है उसे समझाने के निमित्त ईश्वर की संज्ञा है ।

ठीक विचार कर देखा जाय तो वृक्षों के समूह रूप का नाम ही बगीचा है, वृक्ष अपने पूर्व के बीज के अनुसार पैदा होते हैं। बगीचा वृक्षों को अपनी इच्छानुसार नहीं बनाता, इसी प्रकार ईश्वर को समझो।

यदि ऐसा कहो कि बगीचा और वृक्ष माली ने बनाये हैं तो भी वृक्ष और बगीचा क्या भिन्न २ हैं? वृक्षों को निकाल देने से बगीचा नहीं रहेगा। माली जो वृक्ष लगाता है उनमें अमुक वृक्ष का होना उसके पूर्व बीज का ही प्रभाव है। माली किसी बीज में से किसी वृक्ष की उत्पत्ति नहीं कर सक्ता। यदि इसी प्रकार ईश्वर सृष्टि का कर्ता है तो वह अपेक्षिक कर्ता हुआ क्योंकि पूर्व काल के संस्कारों के अनुसार सृष्टि करता है।

यदि कोई कहे कि इस प्रकार मानने से ईश्वर में स्वतन्त्रता नहीं रहेगी तो सुनः—स्वतन्त्रता दूसरे पदार्थ की अपेक्षा से है, ईश्वर का भाव द्वैत में है नहीं, तब स्वतन्त्रता और परतन्त्रता किस प्रकार कही जाय? जीव अज्ञान में दबा हुआ होने से परतन्त्र दीखता है, ईश्वर माया में दबा नहीं है इस लिये जीव की दृष्टि में वह स्वतन्त्र है परन्तु आश्चर्य यह है कि उसको स्वतंत्रता का उपयोग करने के लिये अन्य स्थान नहीं है। जिसका भाव द्वैत में है वे एक पृथक व्यक्ति के समान महान् सामर्थ्य वाला सृष्टि का रचने वाला मानते हैं। यदि उसने अपनी इच्छानुसार जीवों को दुःख देने के लिये संसार बनाया है तो जीव कभी दुःख से

निवृत न होंगे ? क्योंकि जीव की सामर्थ्य नहीं है कि ईश्वर से विरुद्ध होकर अपने सुख दुःख को आप प्राप्त करे। परन्तु ऐसा नहीं है जीव अपना हिताहित करने में स्व-तंत्र है। जो कुछ परतंत्रता का भाव होता है वह उसका बनाया हुआ है यदि ईश्वर सृष्टि में कोई पदार्थ दुःख रूप होता तो वह सब को एक समान मालूम होना चाहिये था ऐसा नहीं है एक पदार्थ एक को सुख रूप और दूसरे को दुःख रूप होता है, जो ईश्वर एक को सुख देने का और दूसरे को दुःख देने का भाव करता रहे तो ब्रह्मांड भर के जीवों का सोच करता रहे तब तो उसे क्षण भर भी शान्ति न रहे एक मन से सब का विचार होना असम्भवित है यदि अनेक मन

से करे तो व्यक्ति न रहे उसमें न्याय के अनुसार बर्ताव न हो और अन्याय रहित इच्छानुसार बर्ताव हो। ऐसा ईश्वर मानना योग्य नहीं है और उसकी बनाई हुई यह सृष्टि नहीं हो सक्ती ॥

अंतिम सारांशः—सृष्टि सब को एक समान दुःख रूप हो ऐसा मालूम नहीं होता इस लिये सृष्टि दुःख रूप ही है ऐसा नहीं है सुख दुःख जगत में नहीं हैं जीवों के भाव से हैं संसार अनादि होने से ईश्वर उसका बनाने वाला नहीं है शास्त्रों में जो संसार की उत्पत्ति बताई गई है वह संसार की संकुचित अवस्था से प्रफुल्लित अवस्था है, यदि प्रफुल्लितता ही उत्पत्ति माने तो जीवों के पूर्व कर्मों के अनुसार ईश्वर उसका रचने

वाला है वह अपनी तरफ से कुछ नहीं बनाता इस लिये वह कर्ता होकर भी अकर्ता है ईश्वर ब्रह्म स्वरूप है जीव की दृष्टि में जीव का समष्टि भाव उनके समझने का ईश्वर है अपने संसार को आपही रचने वाला है, उत्पत्ति का क्रम उपासना में उपयोगी होने से शास्त्रों में बताया है उत्पत्ति के निमित्त नहीं बताया उत्पत्ति के निमित्त ही बताते तो उत्पत्ति का कथन भिन्न २ प्रकार न होता जीवों को दुःख देने को ईश्वर ने जगत नहीं बनाया ॥

प्रश्न-२२ आत्मा अशुद्ध कैसे हुआ।

प्रश्नः—आत्मा शुद्धस्वरूप है तो अशुद्ध स्वरूप वाला जीव किस प्रकार हुआ ? अशुद्ध किस ने किया जड़ माया चेतन

आत्मा को अशुद्ध नहीं कर सक्ती, स्वयं अशुद्ध हो नहीं सक्ता, और दूसरा अशुद्ध करने वाला है नहीं।

उत्तरः—पूर्वप्रश्नों के उत्तर में जो विचार कर देखा जाय तो इस प्रश्न का उत्तर आगया है, फिर भी पृथक रीति से उसे सुनाता हूं आत्मा को शुद्ध स्वरूप और जीव को अशुद्ध स्वरूप वाला जो कहता है तो यह बता कि व्यवहारिक लक्ष से अथवा परमार्थिक लक्ष से तू ऐसा कहता है? परमार्थिक लक्ष अद्वैत है और व्यवहारिक लक्ष द्वैत है। अद्वैत लक्ष में आत्मा जीव और शुद्ध अशुद्ध का विशेषण नहीं लग सक्ता और व्यवहार के द्वैत के लक्ष से आत्मा शुद्ध है इत्यादि कहना अज्ञान में बिना जाने हुआ

है। यदि तू व्यवहार को शुद्ध कहे तो व्यवहार वाला जीव भी अशुद्ध नहीं होता दोनों में से किसी लक्ष से भी तेरा प्रश्न संभव नहीं है।

शास्त्र में आत्मा को शुद्ध और जीव को अशुद्ध जो कहा है वह उपदेश की श्रेणी में कहा है, जीव को अशुद्ध समझने से विकार रूप उपाधि को पृथक करने में सहायता मिले और आत्मा को शुद्ध समझने से आत्मा की तरफ रूचि हो, इस लिये मुमुक्षुओं को इस प्रकार समझाया जाता है क्योंकि यह क्रम आत्म भाव प्राप्त करने का सहारा रूप है।

आत्मा ऐसा है, इसको वर्णन करके समझाना अशक्य है क्योंकि वह शब्दातीत

है इस लिये वेद भी जो परब्रह्म के ज्ञान के दिखलाने की प्रतिज्ञा करता है पृथक् खड़ा हो कर ही संकेत (इशारा) ही करता है और किये हुए संकेत को लक्ष के पीछे काटने के लिये नेति नेति—(यह नहीं यह नहीं) ऐसा कहता है इस लिये आत्मा किसी से समझाया नहीं जाता आत्मा को आत्मा ही समझाता है शास्त्र और गुरू जो कुछ कहते हैं वह लक्ष में सहायता पहुँचाने के निमित्त है। अनेक कथन किये हुए वाक्यों का यथार्थ सत्यता आत्मा में नहीं मिलती ऐसा होने पर भी शब्द निरर्थक नहीं हैं किंतु लक्ष की प्रेरणा करने से सार्थक हैं उन वाक्यों सिवाय और किसी प्रकार श्रेय—परम पद की प्राप्ति का होना ही संभव नहीं है।

सब वाक्य माया में हैं, माया के हैं, उनसे माया के हटाने का उपदेश है माया, माया को काटनी है, सजाति को सजाति ही काटना है अन्तर इतना है कि काटने और कटने वाले का स्वभाव विरुद्ध होता है जैसे लोहा लोहे को काटता हैं परन्तु काटने वाला लोहा कठिन होता है और कटने वाला नरम होता हैं। लकड़ी को लकड़ी ही काटनी है लकड़ी की सहायता से काटना है लकड़ी मुलायम पृथ्वी तत्त्व है और लोहा कठिन पृथ्वी तत्त्व है। लोहा रूप कुल्हाड़ा लकड़ी को काट देता है, कुल्हाड़े में भी दस्ता लकड़ी का ही रहता है। इसी प्रकार अज्ञान को अज्ञान ही काटता है। एक अज्ञान फंसाने वाला है, उससे विरुद्ध दूसरा अज्ञान

फंसावट में से निकालने वाला है। सामान्यता से ज्ञान को अज्ञान का काटने वाला कहा है किंतु वह ज्ञान माया में है। यहां ज्ञान और ज्ञान स्वरूप के भेद को लक्ष में रखना चाहिये। ज्ञान से जब अज्ञान निवृत हो जाता है तब जीव शुद्ध हुआ कहा जाता है और उस से विरुद्ध स्वभाव वाला जीव अशुद्ध कहलाता है जीव की शुद्धता और अशुद्धता माया से है और माया में है आत्म स्वरूप में शुद्धता और अशुद्धता नहीं है तब आत्मा जो नित्य शुद्ध है वह अशुद्ध हो कर जीव भाव को प्राप्त हुआ यह कैसे कहा जाय ? आत्मा शुद्धा शुद्ध विकार रहित स्वयं तत्त्व है इस लिये वह कभी अशुद्ध नहीं होता। आत्मा अशुद्ध होकर

जीव हुआ है ऐसा ज्ञानियों की दृष्टि में नहीं है जब आत्मा जीव हुवा ही नहीं तो मैं किस प्रकार बताऊं, कि इस प्रकार जीव हुवा है तो भी वह किस प्रकार हुआ है क्या हुआ है और वास्तविक हुआ है या नहीं यह बात तुझे दृष्टांत से समझाता हूं।

और तूने कहा है कि आत्मा को अशुद्ध करने वाला दूसरा नहीं है। यह कहना यदि अद्वैत लक्ष से हो तो ठीक ही है और यदि तेरे कहने का भाव यह हो कि माया के सिवाय उसको अशुद्ध करने वाला और कोई नहीं है तो यह ठीक नहीं है माया कोई वस्तु नहीं है कल्पना के वृक्ष पर लगे हुए आम खाकर जाग्रत में किसी को अजीर्ण नहीं होता यह तेरा प्रश्न माया का ठीक २

स्वरूप समझने से ही चूर्ण हो. जाता है। जैसे माया में रह कर आत्मा का समझना अशक्य है ऐसे ही माया में रह कर माया को समझना भी अशक्य है क्योंकि माया भ्रम है भ्रम में रह कर भ्रम का अंत कभी नहीं आता माया में रह कर शंकाओं की निवृति न होगी। उत्तर के सहारे समझ कर वर्तना चाहिये ऐसा किये बिना उत्तर का फल नहीं होता। माया और आत्मा का तर्कों से कोई निर्णय नहीं कर सक्ता। क्योंकि दोनों ही निर्णय करने वाली बुद्धि से परे हैं ? उनके निर्णय करने के लिये शास्त्रानुसार अधिकारी हो कर श्रवण मननादि में प्रवर्त होना चाहिये ॥

अंतिम सारांश—आत्मा को शुद्ध और

जीव को अशुद्ध जो कहा जाता है वह मुमुक्षुओं के उपदेश के निमित्त है। वस्तुतः आत्मा और जीव भिन्न नहीं हैं इसलिए शुद्धाशुद्ध भी नहीं है। वस्तु अनिर्वचनीय है उसका लक्ष पहुंचाने के लिये जो जो शब्द और युक्तियां वर्णन की है वे संकेत (इशारे) स्वरूप हैं, व्यर्थ नहीं हैं इस लिये लक्ष के पश्चात उन शब्दों और युक्तियों का त्याग होता है आत्मा को अशुद्ध किसी ने नहीं किया है उस में जो अशुद्धता दीखती है वह माया के भाव में फंसे हुओं को दीखती है माया आत्मा को अशुद्ध नहीं कर सक्ती न आत्मा स्वयं अशुद्ध होता है। वस्तु रूप एक होने से दूसरा कोई अशुद्ध करने वाला नहीं है॥

प्रश्न-२३ ईश्वर की समानता।

प्रश्न—ज्ञान और अज्ञान ईश्वर कृत हैं। ईश्वर ने किसी को ज्ञानी, किसी को अज्ञानी बनाया तो ईश्वर पक्षपाती हुआ ऐसा क्यों ?

उत्तरः—ईश्वर का स्वरूप में प्रथम समझा चुका हूं अभी तेरी समझ में नहीं आया यह तेरा प्रश्न बे समझी का है इसका उत्तर इक्कीसवें प्रश्न में दे चुका हूं। यदि तू ईश्वर का स्वरूप थोड़ा-सा भी समझ जाता तो उस पर पक्षपात का दोष न लगाता। ईश्वर में पक्षपात नहीं है. पक्षपात तो तुझ में ही भरा हुआ है। अपना स्वरूप छोड़ कर माया से प्रेम करता है यह ही तेरा पक्षपात है। ज्ञान और अज्ञान ईश्वर करता है

ऐसा तू कहता है। यह कौनसा ज्ञान अज्ञान हैं? क्या पदार्थों के ज्ञान अज्ञान को कहता है अथवा किसी और के जो पदार्थ के ज्ञान अज्ञान को कहता है तो यह बुद्धि के सहारे बुद्धि का हैं। बुद्धि और पदार्थ को दोनों की उपस्थिति में पदार्थ का ज्ञान होता है और पदार्थ होते हुए बुद्धि के अभाव में पदार्थ ज्ञान नहीं होता। जब बुद्धि पदार्थ को जानती है तब उसका ज्ञान और जब नहीं जानती तब अज्ञान कहा जाता है बुद्धि भ्रष्ट होने पर जाना हुआ ज्ञान भी अज्ञान हो जाता है। इस प्रकार पदार्थों का ज्ञान और अज्ञान बुद्धि से होता है तो ईश्वर कृत कैसे है? ईश्वर एक है इसलिये यदि ईश्वरकृत ज्ञान अज्ञान हो तो एक ही प्रकार

का होना चाहिये। एक मनुष्य में या तो ज्ञान ही हो अथवा अज्ञान जिसको ज्ञान हो उसको अज्ञान न हो और जिसको अज्ञान हो उसको ज्ञान न हो परन्तु ऐसा देखने में नहीं आता इसलिये ज्ञान अज्ञान ईश्वरकृत नहीं हैं। आज जिसको अज्ञान होता है कल उसीको ज्ञान हो जाता है और कल जिसको ज्ञान था आज उसीको अज्ञान हो जाता है। जाग्रत पदार्थों का ज्ञान जाग्रत में होता है उन पदार्थों के होने पर भी सुषुप्ति में उनका ज्ञान नहीं होता यदि अहेतुक ज्ञान अज्ञान का बुद्धि में प्रवेश कराता हो तो ईश्वर पक्षपाती ठहरे किन्तु ऐसा नहीं है। ज्ञान अज्ञान सब नियम बद्ध हैं। ईश्वर ने ज्ञान अज्ञान जीवों में बांट

दिया है यदि थोड़ी देर के लिये ऐसा मान भी लिया जाय तो क्या वह एक बार ही बांट कर बैठ रहता है ? या बांटे हुए की बदली भी किया करता है ? जो बारम्बार बदली करने वाला कहो तो उसे परिश्रम करते २ अवकाश ही नहीं मिलेगा । यदि अपने किये हुए में भूल देखकर बदली करता हो तो उसमें ऐश्वर्य ही क्या हुआ जो तेरा ऐसा ईश्वर ही है तो हमको अमान्य है। जो ऐसा कहे कि जो एक ही बार ज्ञान और अज्ञान को बांटता है तब मनुष्य परतन्त्र होने से उसमें घटा बढ़ा नहीं सक्ता। जगत् में ऐसा देखने में नहीं आता, मनुष्य मायिक पदार्थों के अज्ञान में ज्ञानवान होते हैं तब एक बार बांटने वाला ईश्वर किस

प्रकार हो सक्ता है ? यदि यह कहो की बांटना तो एक ही बार है परन्तु जीव उसमें बदली कर सक्ता है तो ऐसा ईश्वर मनुष्य से भी गया बीता हुआ ? ईश्वर ने बांटा और मनुष्य ने अन्तर कर दिया।

शास्त्र जिसको ज्ञान कहता है, वह आत्मज्ञान-ब्रह्मज्ञान-तत्त्वज्ञान है और उस प्रकार ज्ञान न होना अज्ञान है। ये दोनों प्रकार के ज्ञान और अज्ञान ईश्वर कृत हैं जो ऐसा कहे तो सुनः—ऐसा ज्ञान देकर ईश्वर ने किसी को उत्पन्न नहीं किया है। ऐसे ज्ञान वाले का जन्म ही नहीं हो सकता इसलिये तेरे कहे अनुसार कोई ज्ञानी और अज्ञानी नहीं जन्मता है जितने जन्मते हैं सब अज्ञानी होते हैं और पुरुषार्थ करके ज्ञानी

हो जाते हैं। ऐसा ज्ञान और अज्ञान भी
बुद्धि से हो है प्रपंच के भाव महित बुद्धि
अज्ञान है और आत्म भाव महित निर्मल
बुद्धि ज्ञान कहा जाता है अनादि अविद्या
में पड़े हुए होने से सब जीव अज्ञानी हैं।
ऐसे अज्ञानी जीवों को ईश्वर बनावे ही क्यों
वे तो अज्ञान का ही स्वरूप हैं। जो पूर्ण
भक्त हुए हैं और जो ईष्ट की कृपा से हमें
ज्ञान प्राप्त हुआ है ऐसा कहते हैं, ज्ञान
प्राप्त होना भी उनका पूर्ण भाव रूप पुरु-
षार्थ ही है। ज्ञान और अज्ञान माया में हैं
ईश्वर स्वरूप से ब्रह्म है।

पक्षपात उसमें होता है जो दोनों पक्षों
को देखकर एक को अपना और दूसरे को
पराया मानता हो। अपनी हानि न होने

पावे इसलिये अपने से भिन्न भाव वाले पर द्वेष होता है पृथक्ता बिना राग द्वेष नहीं होता और राग द्वेष बिना पक्षपात नहीं होता दूसरे को पक्ष-भाव-सिद्धान्त को तोड़ देना पक्षपात है, जिसको सब अपना आप है उसे राग द्वेष नहीं होता, ईश्वर एक और राग द्वेष रहित है इसलिये उसमें पक्षपात नहीं है। जैसे एक मनुष्य को अपने शरीर के अवयवों में राग द्वेष नहीं होता एक अंग मलीन हो और दूसरा अङ्ग शुद्ध हो तो कोई मलीन अङ्ग को काट नहीं डालता अथवा एक को दूसरे अङ्ग से नीचा समझ कर उसमें पक्षपात नहीं करता, इस प्रकार ईश्वर को समझ।

अन्तिम सारांश:—जीवों के समझने

के लिये जीवों का समष्टि भाव ईश्वर है। वस्तुतः ईश्वर ब्रह्म है। ईश्वर की दृष्टि में व्यष्टि और समष्टि नहीं है। वह आप अपने में स्थित है। जीवों के कर्म उसके द्वारा उदय और अस्त को प्राप्त होते हैं ईश्वर में द्वैत भाव नहीं है वह अपने भाव से किसी को सुखी, दुःखी, ज्ञानी अज्ञानी नहीं बनाता अपुरुषार्थ—अज्ञान दुःख का हेतु है, पुरुषार्थ ज्ञान सुख का हेतु है जिसमें अपना पराया भेद नहीं है उसमें पक्षपात नहीं हो सकता ईश्वर न तो पक्षपाती है और न किसी को ज्ञान अज्ञान का देने वाला है

प्रश्न-२४ ज्ञानी जन्म रहित कैसे !

प्रश्नः—बिना कर्म कोई शरीर धारी नहीं रह सक्ता, कर्म फल दिये बिना नहीं रहता ज्ञानी

भी कर्म करता है तो कर्म का फल भोगने के लिये उसको जन्म धारण करना पड़ेगा जन्म धारण करके कर्म करेगा तो ज्ञानी जन्म रहित कैसे हो सक्ता है ?

उत्तरः—बिना कर्म कोई शरीर धारी नहीं रह सक्ता, यह तेरा कहना सत्य हैं परन्तु कर्म किस को कहते हैं, सामान्य कर्म क्या है विशेष कर्म क्या है, और कौनसे कर्म किस प्रकार से फल का हेतु हैं इत्यादिक समझना चाहिये। कर्म क्रिया को कहते हैं, क्रिया में फल देने की शक्ति नहीं है फिर उससे शरीर की उत्पत्ति किस प्रकार हो सकती है अज्ञान संयुक्त होने वाले कर्मों में जो अज्ञान का भाव है वह ही कर्मों के फल का देने वाला है, अज्ञान में जो चिदाभास की शक्ति

होती हैं उससे अज्ञान फल का हेतु होता है इस लिये सामान्यता से ऐसा कहा जाता है कि कर्म फल का देने वाला है । यदि कर्म करने में अज्ञान न हो तो अज्ञान रहित कर्म फल नहीं देते ।

अब यह शंका होती है कि क्या कोई कर्म अज्ञान रहित भी हो सकता है । इस शंका का समाधान सुनः—अज्ञान रहित कर्म हो सकते हैं । ज्ञान होने के पश्चात ज्ञानी जितने कर्म करते हैं वे सब अज्ञान रहित होते हैं । ज्ञानी में अज्ञान होना असंभव है फिर ऐसा कैसे कहा जाय कि उससे अज्ञान से कर्म होते हैं ?

श्रीमद्भगवद् गीता में जिन कर्मों को अकर्म कहा है वे इसी प्रकार के कर्म हैं ।

अकर्म शब्द का अर्थ कुकर्म नहीं है किंतु जिस कर्म का पुण्य या पाप भौतिक फल नहीं होता उस प्रकार के कर्म को अकर्म शब्द से कहा है। योग शास्त्र में इसी प्रकार के कर्मों को अशुक्ला कृष्ण (पुण्य पाप रहित) कर्म योगियों का बताया है। उसका अर्थ भी गीता के अकर्म के समान है। जो कर्म अभ्यास में आजाते हैं, जो विशेष लक्ष्य बिना होते हैं, जो अत्यन्त सामान्यता से होते हैं ऐसे कर्मों में किसी प्रकार का विशेष भाव नहीं होता। राग द्वेष आसक्ति रहित कर्म अन्तःकरण में संस्कार उत्पन्न नहीं करते. ऐसे अनेक तुच्छ कर्मों का विशेष फल नहीं होता। भाव रहित कर्मों का फल नहीं होना, ज्ञानियों

के सभी कर्मों में ज्ञान के प्रभाव से भाव रहितता होती है या यों कहो कि ज्ञानी के कर्म सामान्य भाव से होते हैं और अन्तः-करण में संस्कार उत्पन्न नहीं करते। जिन कर्मों के संस्कार नहीं पड़ते, उन कर्मों का फल भी नहीं होता। फल वाले कर्म इस प्रकार हैं:—जो कार्य अहंभाव और ममत्व से होता है, उसमें राग द्वेष होता है, वह कामना—आसक्ति सहित सामान्य स्थिती को उल्लंघन करके विशेष भाव वाला होता है, उस विशेष भाव से अन्तः करण में धक्का लगता है और संस्कार रूप आकृतियों को खेंच लेता है जिस प्रकार ग्रामोफोन शब्द की आकृति को अपने में भर लेता है इसी प्रकार अन्तःकरण अज्ञान के कारण बाहर

किये हुए कर्मों के भाव को अपने में भर लेता है उसी अज्ञान से फिर कर्म फल का भोग होता है। इनके सिवाय अन्य प्रकार के कर्म फल नहीं दे सकते। ज्ञानी का अन्तः करण कर्म के भाव को नहीं पकड़ता इस लिये उसको कर्मों का फल भोग उत्पन्न नहीं होता। अज्ञान भाव सहित किये हुए पूर्व के कर्म जब फल देने के योग्य हो जाते हैं और बाहर निकल आते है उनको प्रारब्ध कहते हैं। प्रारब्ध पूर्व कर्मों के भोग भोगने के निमित्त होता है। उसका शरीर से संबंध है अर्थात स्थूल शरीर की उत्पत्ति पूर्व किये हुए कर्मों के भाव से है। सब के शरीरों की उत्पत्ती इसी प्रकार होती हैं। शरीर से दो कार्य होते हैं। एक तो जिस भोग

निमित्त वह उत्पन्न हुआ है उसकी प्राप्ति होती है और अज्ञान से उस भोग में असक्ति होती है और असक्ति से नये संस्कार उत्पन्न होकर फिर अंतःकरण में जा चिपटते हैं।

अंतिम सारांशः—जब कर्म फल भोग में प्रवृत होते हैं तब शरीर होता है इस शरीर से भोग रूप कर्म अवश्य होते हैं परन्तु भोग रूप फल अन्य फल को नहीं दे सकते। ज्ञानियों का कर्म जो संसारियों के देखने में आता है वह भोग कर्म होता है भोग का भोग फिर नहीं होता। मात्र भोग कर्म से फिर शरीर धारण करना नहीं पड़ता। ज्ञानी जन्म धारण करके कर्म नहीं करता, मात्र भोगता है इस लिये वह जन्म रहित ही हो

जाता है। जो अज्ञानी है वह भोग कर्म के साथ आसक्ति से नये आगामी कर्म उत्पन्न करता है और ज्ञान न होने से पूर्व संचित भी बना रहता है इस लिये उनको जन्म धारण करना पड़ता है। चक्र की निवृत्ति ज्ञान बिना कभी नहीं होती। ज्ञान बिना भोग कर्म के साथ आगामी कर्म का न बनना भी नहीं बन सक्ता जैसा कि ऊपर के दृष्टांत से समझाया गया है।

॥ हरि ॐ तत्सत २ ॥

॥ ओश्म् सच्चिदानन्दाय नमो नमः ॥

॥ ॐ ॥

संग्रह-कर्ता का परिचय--
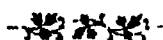
दोहा-जींद शहर पश्चिम दिशा, समझ बड़ौदा गाम ॥
जन्म लिया हरफूल ने, था जाति का अभिमान ॥ १ ॥
लोक लाज परिवार का, था कुछ सिर पर भार ॥
भावानन्द कृपा करी, मम दुःख दीन्हे टार ॥ २ ॥
संसारी हरफूल थे, उपकारी ओंकार ॥
नन्द मात्रा जहां लगी, कहन सुनन से बाहर ॥ ३ ॥
व्यष्टि बुद्धि भोग में, समष्टिलखे स्वरूप ॥
लय वृत्ति जहां होत है, ओंकारानन्द चुप्प ॥ ४ ॥
जो भोगों की वासना, यही चिन्ह अज्ञान ॥
निर्वाह मात्र राखते, साधन सम्यग्ज्ञ जान ॥ ५ ॥

पं० रामरिखपाल वैद्य शास्त्री के प्रबन्ध से-
कमला-कान्त प्रेस, भिवानी में छपी।

श्री भागवत सारबिन्दु

सारार्थ दीपिका भाषा टीका
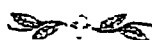
रचयिता
पूज्यपाद स्वामी श्री ज्ञानप्रकाशजी महाराज
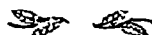
पुस्तक प्रकाशक—
सेठ सेवारामजी रामरूपजी
पाली (मारवाड़)
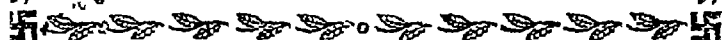
प्रस्तावना

सम्पूर्ण आस्तिक जगत् में यह तो प्रसिद्ध ही है कि महर्षि वेद व्यास द्वारा प्रणीत श्रीमद्भागवत पुराण अष्टादश पुराणों का मूर्धन्य तिलक एवं भूतल पर मानव को अजर अमर ब्रह्मी भूत बनादेने वाला अमृत है। जो इहलोक परलोक के चतुर्विध पुरुषार्थों का एक श्रेष्ठ साधन है। जिसके पठन, श्रवण, अर्चन से शीताचल मध्यवर्ती भवसिन्धु को भक्तजन तर जाते हैं। तथा जो त्रिविध तापों का हर्ता सफलेप्सित कामनाओं का कर्ता है। एवं जिसकी सत्ता से धर्म धैर्यपूर्वक धरित्री को धारण कर रहा है।

वही श्रीमद्भागवत पुराण हिन्दी भाषाटीका में नाना आकार प्रकारों में उपलब्ध हैं, किन्तु त्रिविध सिद्धान्तयुक्त इस ग्रन्थ का सारभूत अंश अल्प कलेवर पुस्तकाकार में ऐसी अद्भुत सरसता युक्त अनुपलब्ध है वही अप्रत्याशित लाभ मानवसमाजने श्रीभगवत् चरणारविन्दामन्दमकरन्दामलिन्दायमान परमपुरुषार्थ साधनसम्पन्न श्रीमत्परमहंस परिव्राजकाचार्य श्री ज्ञानप्रकाशजी स्वामीजी महाराज की महापुरुषोचित कृपा कणिकाद्वारा प्राप्त किया है। एतदर्थ अस्तिक वर्ग उनका महान् ऋणी है।

स्वामीजी महाराज का व्यक्तित्व निस्पृहता एवं सरलता से परिपूर्ण है। आपके अलौकिक ज्ञान एवं पाण्डित्य के द्वारा ही

प्रस्तुत पुस्तक श्री भागवत सारबिन्दु सारार्थदीपिका भाषाटीका का हमको पुनीत दर्शन हुवा है। जिसमें भागवत के उपक्रमोपसंहार भूत ब्रह्मात्म तत्व अद्वैतसिद्धान्त का पूर्ण रूपेण प्रतिपादन दर्शाया है।

वस्तुत. विविध तापोपतापित इस संसार में अध्यात्म चिन्तन के बिना अन्यत्र शान्ति की अभिलाषा से भटकना मृगमरिचिका के पीछे भागना है। अतएव आत्मिक शान्ति के प्राप्ति हेतु, यह ग्रन्थरत्न अत्यन्त उपयोगि है। प्रसिद्ध स्थलों की कथाओं के अतिरिक्त, अद्वैत तत्व की ग्रन्थियों को यहां अतीव सरलतापूर्वक सुलझाया गया है।

पूर्ण विश्वास है कि वह सिद्धान्त रसिक भक्त जनों के मनमन्दिर को ज्ञान के पवित्र प्रकाश से आलोकित करें। पुस्तक में दृष्टिदोष से जो त्रुटीयां रह गई हों उन्हें पाठकगण क्षमा करें।

शुकमुख से निगादित यह निगमागम अमृत रूपी फल रसिकजनों द्वारा पुनः पुनः आस्वादनीय है।

पिबत भागवतं रसमालयं
मुहुरहो रसिका भुवि भावुका।

विनीत:—
जयदेव त्रिपाठी वेदान्ताचार्य
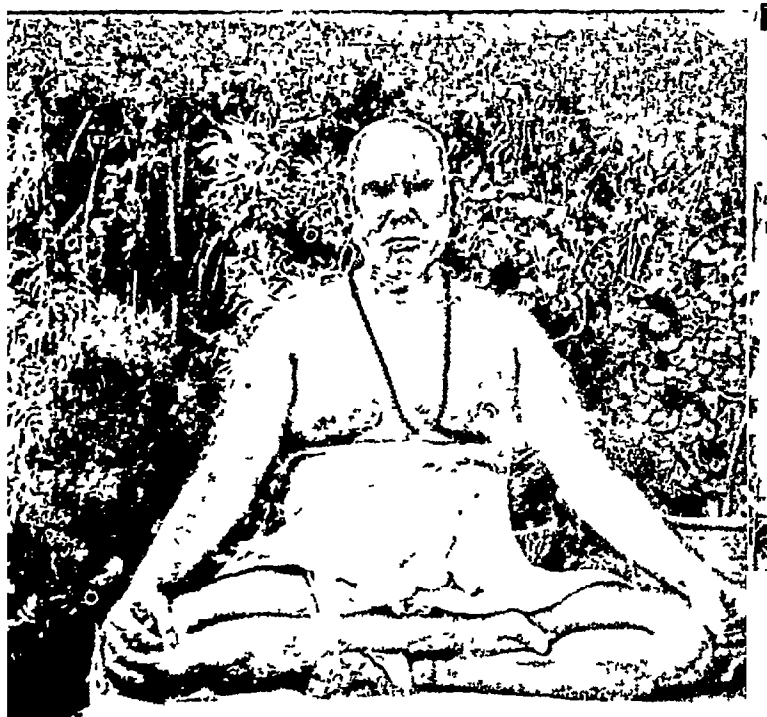
देवस्वरूप पूज्यपाद स्वामी श्री ज्ञानप्रकाशजी महार

॥ ॐ श्रीगणेशायनमः ॥

अथ श्रीभागवत महात्म्य संक्षेपसारार्थदीपिका भाषाटीका सहितः॥

(पद्मपु० उत्तरखण्ड० अ० २ । श्लो० ७०।७१)

इक्षूणामपि मध्यान्तं शर्करा व्याप्यतिष्ठति ।
पृथग्भूता च सा मिष्टा तथा भागवती कथा ॥१॥
इदं भागवतं नाम पुराणं ब्रह्म संमितम् ।
भक्ति ज्ञान विरागाणां स्थापनाय प्रकाशितम् ॥२॥

वेदोपनिषदों का सार फल रूप श्री भागवत है। यह कथा पद्मपुराण के श्रीभागवत महात्म्य में सनत्कुमारादियों ने नारदजीसे कही हैं। जैसे आमके वृक्षों में मूलसे लेकर शिखर पर्यन्त रस व्याप्त है। परन्तु फल रूप से भिन्न हुए विना स्वाद जनक नहीं होता है तैसे ही दुग्ध में घृत व्याप्त है। दुग्ध से पृथक् किये विना घृतका स्वाद नहीं आता है और इक्षुदन्ड के आदि मध्य, अन्तमें शक्कर व्याप्त है। परन्तु साधनों से पृथक् की हुई अतिस्वाद लगती है। तैसेही वेदोपनिषदों से पृथक् की हुई श्रीभागवत कथा अतिआनन्दजनक

सर्व विद्वानों को प्रसिद्ध हैं ॥१॥ यह श्रीभागवत पुराण वेदानुसार भक्ति, ज्ञान, विराग, तीनोकेस्थापन करने के लिये श्रीकृष्णचन्द्रने प्रकाशित किया है ॥२॥

(स्कन्दपु० वै. खण्ड. २ भ'. मा. अ. ३ श्लो० १४)

भारते मानवं जन्म प्राप्य भागवतं न यैः ।
श्रुतं पापपराधीनैरात्मघातस्तुतैः कृतः ॥ ३ ॥

स्कन्द पुराण के भागवतमहात्म्य मे कहाहैं कि भारत वर्ष में मानुष्यजन्म पाकर जिनोने श्रीभागवत अमृत कथा नहीं सुनी है। तिन पुरुषों ने जानो पापके वश होकर निज का ही घात किया हैं ॥३॥ कौशिक संहिता के भागवत-महात्म्य अ. ५ में श्रीनारायण ने नारद से कहा हैं कि जिस भागवतामर कथा को शिवजीने पार्वती के प्रति काश्मीर देश में कथन करा है। सो कथा हम आपसे कहतेहैं। जिसको सुनकर मराहुआ शुक का अण्डा जीवित होकर भागवतामर कथा का प्रचार कर्ता शुक नामसे प्रसिद्ध हैं। और भागवत यह चार अक्षर धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष, इनचार पुरुषार्थोंका कथन करते हैं। चार पुरुषार्थों का निर्णय पुरूषार्थ चतुष्टय ज्ञानप्रकाश नाम ग्रन्थ में किया है।

(पद्मपु० उत्तरखण्ड० भा० मा अ. ४ श्लो० ७४।७५)

असार खलु संसारो दुःखरूपी विमोहकः ।
सुतःकस्य धनं कस्य स्नेहवाञ्ज्वलतेऽनिशम् ॥४॥
न चेन्द्रस्य सुखं किञ्चिन्न सुखं चक्रवर्तिनः ।
सुखमस्ति विरक्तस्य मुनेरेकान्तजीविनः ॥ ५ ॥

पद्मपुराण के भागवत महात्म्य में यह कथा है कि आत्मदेव ब्राह्मण कुपुत्र मूर्ख धुन्धकारी के दुःखसे अति दुःखी होकर प्राणघात की इच्छा करते हुए को सुपुत्र ज्ञानी गोकर्ण दुःखनाशक सुखकारी ज्ञानवैराग्य जनक उपदेश करते हैं। कि भो तात यह संसार निश्चित निःसार दुःखरूप महा मोहकारी है। इसमें कौन किसका पुत्र है। और किसका धन है वृथाही अज्ञानी पुरुष धन, पुत्र, स्त्री आदि में रागवाला दिन रात चिन्ता से जलता रहता है ॥४॥

दुःख रूप इस संसार में विषयों की इच्छावाले चक्रवर्ती राजा को भी सुख नहीं है। और स्वर्ग के भोगों में रागवाले देवराज इन्द्रको भी सर्वदा पतन के भय से किश्चित भी सुख नहीं है। सुख केवल विद्वान् विरक्त मुनिको आत्मरत एकान्त सेवी को ही होता है। एसा गोकर्ण सुपुत्र का अति सुख-कारी उपदेश सुनकर आत्मदेव सर्व से विरक्त होकर साठ वर्ष

की अवस्था में दशमें स्कन्ध के पाठ अर्थ के अभ्यास से आनन्द कन्द श्रीकृष्णचन्द्र परमानन्द को प्राप्त होगये ॥५॥

(स्कन्दपु० वैष्णवखण्ड. २ भा. मा. अ. ४ श्लो. २८)

वर्षमासदिनानां तु विमुच्य नियमाग्रहम्।
सर्वदा प्रेम भक्त्यैव सेवनं निर्गुणं मतम् ॥६॥

स्कन्द पुराण के भागवत महात्म्य में कहा है कि सप्त दिनों में श्रीभागवत कथा श्रवण को राजसी कहा है। क्यों कि सात दिनों में अच्छा विद्वान् केवल पाठ मात्र करसकता है। अर्थ सम्पूर्ण कथन करना अशक्य है। अर्थ सहित भागवत के शुद्ध पाठको सात दिनों में कथन करने की शक्ति वाले महान पुरुष शुकदेव आदि ही थे जैसे महाभारत को व्यास के कथनानुसार गणेशजीने एक रात्री में लिखाथा और सप्त दिनों का आख्यान परिक्षित् की आयु के दिनों की संख्या को लेकर हैं। और एक मास वा एक ऋतु में भागवत कथा श्रवण को सात्विकी कहा है और एक वर्ष में कथा श्रवण को तामसी कहाहै और वर्ष मास, दिनों के नियम हठको छोड़कर सर्वदा जो पुरुष भागवत का पठन श्रवण रूप सेवन करता है वो निर्गुण रूपसे श्रेष्ठ कहा है। इस कथन से श्रीभागवत परमहंस संहिता का विरक्त वैष्णवों को सर्वदा अभ्यास करना योग्य है ॥६॥

पाद्मे• प्रथमेह्नि वराहान्तं द्वितीये भरतान्तकम् ।
तृतीये श्री नृसिंहान्तं चतुर्थे वंश वर्णनम् ॥ ७ ॥
पञ्चमे गुरुलीलान्तं षष्टे लीला समापनम् ।
सप्तमे शुक पूजान्तं सप्ताह क्रम ईरितः ॥ ८ ॥

पद्मपुराण में श्री भागवत सप्ताह के नियम कहे हैं कि प्रथम दिनमें वराह भगवान् की कथा पर्यन्त स्कन्ध. ३ अ. १९ तक पाठ करना १॥ द्वितीय दिनमें भरत आख्यान पर्यन्त स्कन्ध. ५। अ. १४ तक पाठ करना २॥ तृतीय दिन में नृसिंह भगवानकी कथा पर्यन्त स्कन्ध ७। समाप्त करना ३॥ चतुर्थदिनमें सूर्य सोमवंश कथन स्कन्धनवम समाप्तकरना ४॥ पञ्चमें दिनमें सान्दीपनि गुरू लीला पर्यन्त स्कन्ध १०।अ. ४५ तक पाठ करना ५॥ षष्ठे दिनमें स्कन्ध १०। अ. ९० श्रीकृष्ण लीला समाप्त करना ६॥ सप्तमें दिनमें शुकदेव पूजा पर्यन्त भागवत समाप्त करना ॥७॥ यह सप्ताह का अनुक्रम कहाहै ॥७।८॥ पौष, चैत्र, यहदो मास छोड़ कर कथा के लिये और सर्वमास श्रेष्ठ हैं।

कौशिक संहिता के भागवत महात्म्य अ. ६ में कहा है कि एक मासमें श्री भागवत कथा करने में प्रतिदिन अध्याय ११। का पाठ करना । अन्त के दिन अध्याय १६

का पाठ करके श्रीभागवत समाप्त करना ॥ और इक्कीस दिनमें श्री भागवत की कथा समाप्त करने में प्रतिदिन अध्याय १६ का पाठ करना। अन्त के दिन अध्याय १५ का पाठ करके श्रीभागवत समाप्त करना। और अष्टादश दिनमें श्रीभागवत कथा समाप्त करने में श्लोक १००० का पाठ प्रतिदिन करना। अथवा षोडश दिन अ. १६। सत्तरह में दिन अ. १७। आठारहमें दिन अ. १३। भागवतसमाप्त करना। और एक पक्ष में भागवत की कथा समाप्त करने में प्रतिदिन २२ अध्याय का पाठ करना। सप्तमे दिन अध्याय २७ का पाठ करना ॥ और श्री भागवत के स्कन्ध आदि की संख्या का अनुक्रम यह हैं। स्कन्ध १२।अध्याय ३३५। श्लोक १८०००। वर्ण. ५७६०००। यह संख्या का अनुक्रम है।

इति श्रीभागवत माहात्म्य संक्षेप सारार्थ दीपिका भाषा टीका सहित समाप्तः ॥

अथ रामायण के नवान्हिक पारायण की विधि

स्कन्द पु. ३ ख॑ रामा. म. अ० १ श्लो. ३७।

चैत्रे माघे कार्तिके च सिते पक्षे च वाचयेत्।

नवम्यहनि तस्मात्तु श्रोतव्यं च प्रयत्नतः ॥ ॥१॥

स्कन्दपु. ख॑. ३. रामा. म. अ. ५ श्लो. २५।२६।

नवाहनि फलं वक्तुं शृणु धर्मविदां वर!

पंचम्यहनि चारभ्य रामायण कथामृतम्।

कथा श्रवण मात्रेण सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥२।३।

इति रामायण पारायण विधि।

हरि ॐ तत्सत्

॥ ॐ श्री गणेशाय नमः ॥

॥ अथ श्री भागवत सारबिन्दु सारार्थ दीपिका ॥

भाषा टीका सहित स्कन्ध १ अ. १ श्लो. १

जन्माद्यस्य यतोऽन्वयादितरतश्चार्थेष्वभिज्ञः स्वराट्
तेने ब्रह्म हृदाय आदिकवये मुह्यन्ति यत्सूरयः ।
तेजोवारिमृदां यथा विनिमयो यत्र त्रिसर्गोऽमृषा
धाम्ना स्वेन सदा निरस्तकुहकं सत्यं परं धीमहि ॥१॥

गणेशश्च शिवं विष्णुं सूर्यं देवीं तथैव च ।
पञ्चेश्वरान् सनातनान् नमाम्यहं पुनः पुनः ॥१॥

यतो जातमिदं जगत् स्थितं यत्र च लीयते ।
श्रीचन्द्रं सच्चिदानन्दं कृष्णंवन्दे जगद्गुरुम् ॥२॥

श्रीकृष्णानन्दनामकं ब्रह्मशिवमयं गुरुम् ।
विद्याप्रदान् गुरून् सर्वान् वन्दे वेदार्थ बोधकान् ॥३॥

श्रीभागवत सागरात् सारबिन्दु गृहितो यः ।
तन्नामकं निबन्धं च भाषार्थ सहितं रभे ॥४॥

पण्डिता मत्सरग्रस्ता धनाढ्या मद दूषिता ।
इतरेऽज्ञा न पश्यन्ति स्वमोदार्थं समारभे ॥५॥

अथ नाना पुराण, शास्त्रों की रचना से शान्त चित्त न होकर असन्तुष्ट चित्त शोकातुर वद्रिकाश्रम में सरस्वती के तट पर वेदव्यासजी निवास करते थे तव वहांपर किसी काल में स्वतन्त्र सर्वलोक संचारी महा विरक्त देव ऋषि नारदजी आये और वेदव्यासजी को खिन्न चित्त देखकर नारद ने कहा कि भो महाभाग व्यास आपने वेदाध्ययन के अनाधिकारी स्त्रीशूद्रद्विजवन्धुओं के श्रेयार्थ वेदार्थका प्रकाशक महाभारत रचा है, ऐसा शुभ कार्य करके भी अकृतार्थ से हुए खिन्न चित्तवाले प्रतीत होते हैं ।'व्यासजी ने कहा कि भोब्रह्मपुत्र आपने जो कहा सो यथार्थ ही है। क्या मैंने भगवत् प्राप्ति के साधन विवेक विराग श्रवणादि जो वीतराग परमहंसों को प्रिय हैं तिनका कथन नहीं किया ? इस कारण से मेरा चित्त प्रसन्न नहीं हुआ है। आप मेरे असंतोष न्यूनता का कारण कहें। तव नारदजी ने कहा कि भो महाभाग आपने भक्ति युक्त विवेक विराग श्रवणादि साधनों से प्राप्त होने के योग्य जो परमहंसों को प्रिय भगवत् का सच्चिदानन्द शुद्ध स्वरूप है तिसका कथन नहीं किया है। वर्णाश्रम रूप धर्मों का ही कथन किया है। सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म स्वरूप भगवत् महिमा का कथन नहीं किया। भक्ति हीन नैष्कर्म्य शुष्क ज्ञान विद्वानों में

प्रशंसनीय नहीं माना है। जहां भगवत् सच्चिदानन्द के स्वरूप का अनुवाद न हो, अन्यधर्मों का ही कथन हो, सो काक निवास के समान कहा है। यह आपके चित्त असन्तुष्ट का कारण प्रतीत होता है। अब आप भगवत् तोषकारी परब्रह्म का यथार्थ स्वरूप कथन करें। पूर्व जन्म में मैंने महात्मा की ब्रह्मविद्या की शिक्षा से ब्रह्मरूप मेरे में यावत् मात्र स्थूल सूक्ष्म स्वाविद्या से कल्पित हैं ऐसा यथार्थ ब्रह्म का स्वरूप निश्चय किया है इस प्रकार के नारदजी के शान्तिप्रद उपदेश सुनकर श्रीभगवद् गुण वर्णन प्रधान सर्वोत्तम भागवत शास्त्र के प्रारम्भ की इच्छा वाले वेदव्यासजी ग्रन्थ की निर्विघ्न समाप्ति के लिये तत् शब्द से प्रतिपाद्य पर परमात्मा का स्मरण रूप मंगल करते हैं कि पर परमेश्वर का शिष्यों सहित हम व्यास (धीमही) हम ध्यान करते हैं। इस मंगलरूप वेदमन्त्र गायत्री के शब्द से स्मरण किया। पुनः तिसी स्मरणीय परमेश्वर का स्वरूपलक्षण और तटस्थ लक्षणरूप से कथन करते हैं। प्रथम स्वरूपलक्षण सत्य उपलक्षित ज्ञान, आनन्द स्वरूप ब्रह्म है। जिस ब्रह्म में माया के तमोरजः सत्व तीन गुणों की सृष्टि, पञ्चभूत इन्द्रिय देवतारूप मिथ्या भी जिसकी सत्ता से सत्य के समान प्रतीत होती है। तिस पर सत्य ज्ञानानन्द ब्रह्म का ग्रहण

है। इसमें दृष्टान्त है कि जैसे जल, अग्नि, भूमि त्रिवृत रूप तीनों में एक दूसरे रूप से सत्य जैसा प्रतीत होता है। सूर्य किरण मरीचिका में जल बुद्धि, भूमिरूप काचादि में जल बुद्धि जल में काचादि बुद्धि यथा मति जान लेना। तिस सच्चिदानन्द ब्रह्म में तीन प्रकार की सृष्टि मिथ्या ही प्रतीत होती है। सत्य नहीं, यह कहते हैं, स्वतेज़से निरस्त है माया रूपी कपट जिसमें, वो ब्रह्म का स्वरूपलक्षण हैं। अब परब्रह्म का तटस्थलक्षण, ब्रह्मसूत्र, अ०१। पा०१। सूत्र २ दूसरे से कहते हैं। जन्माद्यस्य यतः। इस जगत् की उत्पत्ति, स्थिति, लय, होते हैं जिस परब्रह्म से सो ही ध्येय रूप है। क्यों कि समुद्र के तरङ्गों के समान सावयव इस जगत के अन्वय व्यतिरेक से परब्रह्म ही से जन्मादि होते हैं। श्रुतिप्रमाणः- "यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते" इत्यादि। स्मृतिप्रमाणः— "यतः सर्वाणि भूतानि भवन्त्यादियुगागमे" इत्यादि। वो ही ब्रह्म आकाशादि अर्थरूप कार्य में सर्वज्ञ है। अन्य प्रधान जीवादि का निवारण कर स्वप्रकाश सच्चिदानन्द आदिकवि ब्रह्माके लिये, जिस वेदके अर्थ में सूरि मन्त्रद्रष्टा ऋषि विद्वान् भी मोहित हो जाते हैं तिस वेद को अध्यापन से विनाही मनसे प्रकाशित करता है सो ब्रह्म सर्व का ध्येय है। इस कथन

से बुद्धि वृत्ति का प्रवर्तक होने से गायन्त्री मन्त्र का अर्थ दर्शा दिया है। और वेद मन्त्र गायत्री को लेकर आरम्भ करने से भी भागवत पुराण को ब्रह्मविद्या रूप दर्शा दिया है। तथा ही मत्स्यपुराण में कहा है:-

यत्राधिकृत्य गायत्रीं वर्ण्यते धर्मविस्तरः।
वृत्रासुरवधोपेतं तद्भागवतमिष्यते ॥ १ ॥

पुराणान्तरे—हयग्रीवब्रह्मविद्या, यत्र वृत्रवधस्तथा।
गायत्र्या च समारंभस्तद्वै भागवतं विदुः॥१॥

पाद्म गोतमोक्तिः,अंबरीषशुकप्रोक्तं नित्यं भागवतं शृणु,
पठस्व स्वमुखेनापि यदिच्छसि भवक्षयम् ॥१॥

कौशिक संहिता के भागवत माहात्म्य अ. १। श्लो०१७।१८ में भागवत को गायत्री मन्त्र का भाष्य रूप कहा है। और ये ही श्री भागवत वेदार्थ का विस्तार रूप है। ब्रह्म सूत्रों का अर्थ रूप है। और संक्षेप से महाभारत के अर्थ का भी प्रकाशक है। स्कन्ध १।२।३। समन्वयाध्यायका अर्थ रूप है। स्कन्ध ४।५।६ अविरोधाध्याय का अर्थ रूप है। स्कन्ध ७।८।६ साधनाध्यायका अर्थ रूप है। स्कन्ध १०।११।१२ फलाध्याय का अर्थ रूप है ॥ और वैदिक अर्थों का तात्पर्य

षड् लिङ्गों से निश्चित होता है। वे ये हैं—

श्लो. उपक्रमोपसंहारावभ्यासोऽपूर्वताफलम् ।
अर्थवादोपपत्ती च लिङ्गं तात्पर्यनिर्णये ॥१॥

अब प्रकरण में प्रतिपाद्य अद्वितीय वस्तु का जो आदि अन्त में कथन है वे उपक्रम १, उपसंहार २ कहे जाते हैं। जैसे श्री भागवत के आरम्भ रूप उपक्रम में "जन्माद्यस्य यतः" इससे अद्वितीय ब्रह्म का कथन है।
और स्कन्ध, १२×अ०५×श्लो० ११×१२ में "अहं ब्रह्म परं धाम ब्रह्माहं परमं पदम्" इत्यादि समाप्ति रूप उपसंहार का कथन है इसीसे स्कन्ध १।१२, उपक्रम उपसंहार रूप है तिसी अद्वितीय ब्रह्म के पुनः पुनः कथन का नाम अभ्यास है सो स्कन्ध, २। अ. १ श्लो. ५। 'तस्माद्भारत सर्वात्मा भगवान् हरिरीश्वरः'। इत्यादि, और स्कन्ध ३। कपिल देवहूति संवाद से स्कन्ध २।३। यह अभ्यास रूप लिंग का बोधक है। और तिसी अद्वितीय ब्रह्म को वेदान्त से भिन्न प्रमाणों की अविषयता रूप अपूर्वता है। सो पुरञ्जनोपाख्यानादि ऋषभदेव आख्यानों से स्कन्ध, ४।५। अपूर्वता रूप लिंग का बोधक हैं। और तिसही परब्रह्म की स्तुति रूप प्रशंसा का नाम अर्थवाद है सो नारद हर्यश्वादि

आख्यानों से, अवधूत प्रह्लादादि आख्यानों से स्कन्ध ६।७ अर्थवाद रूप लिङ्ग का बोधक है। और तिसी ब्रह्मात्मरूप के दृष्टान्तों से कथन का नाम उपपत्ति है। सो स्वायम्भु-वादि आख्यानों से, श्रीरामचन्द्र आदि आख्यानों से स्कन्ध ८।९ उपपत्ति रूप लिंग का बोधक है, और तिसही ब्रह्मात्मस्वरूप का महावाक्यों के श्रवणपूर्वक ज्ञान होने से जो परमानन्द की प्राप्ति, अनर्थ की निवृत्ति रूप फल है। सो आनन्दकन्द श्रीकृष्णचन्द्र, उद्धवादि नाना संवादों से प्रसिद्ध स्कन्ध १०।११। फल रूप लिंग का बोधक है। छान्दोग्योपनिषद् के षड् लिंगों के समान, श्रीभागवत के षड्लिंग हैं। वेदोपनिषदों के साररूप कल्पतरु श्री भागवत से किस किस इष्टार्थ की प्राप्ति नहीं होती अर्थात् सर्वइष्टार्थ प्राप्त होते हैं। और व्यासजीने सर्वपुराणों में देवी देवताओं के नमस्कारादि मंगल किये हैं। इस भागवत में अद्वितीय ब्रह्मवस्तु का चिन्तन रूप ही मंगल किया है। यह ऐसा गंभीर है कि जैसे शंकराचार्य के भाष्य के विना ब्रह्मसूत्रों का अर्थ ज्ञान होना विद्वानों को दुर्घट है। तैसेही श्रीधर स्वामी की टीका के विना श्रीभागवत के श्लोकों का अर्थ ज्ञान होना विद्वानों को दुर्घट है यह विद्वानों को प्रसिद्ध है ॥१॥

(अ. १ श्लो० २)

धर्मः प्रोज्झितकैतवोऽत्र परमो निर्मत्सराणां सतां।
वेद्यं वास्तवमत्र वस्तु शिवदं तापत्रयोन्मूलनम् ॥
श्रीमद्भागवते महामुनिकृते किं वा परैरीश्वरः।
सद्योहृद्यवरुध्यतेऽत्र कृतिभिः शुश्रूषुभिस्तत्क्षणात्॥२॥

अब श्रोता के प्रवर्तन के लिये श्रीभागवत को त्रिकाण्ड विषय रूप होने से सर्वशास्त्रों से श्रेष्ठ देखाते है। इस श्रेष्ठ चार पुरुपार्थ के हेतु त्रिकाण्ड लक्ष्मी के निधिरूप भागवत में कल्याणकारी परमधर्म कहा जाता है जैसा जो धर्म है फल की इच्छारूप कपट से रहित केवल ईश्वर आराधन रूप निष्काम धर्म है। और पर उत्कर्षका असहन रूप मत्सरादि दोषों से रहित सर्व भूत हितकारी श्रेष्ठ पुरुषोंको अधिकारी होने से भी धर्म की परम श्रेष्ठता प्रसिद्ध है। यह कर्म काण्ड के विषयरूप से भी श्रेष्ठता कही। और ज्ञानकाण्ड के विषयरूप से भी श्रेष्ठता कहते हैं। जीव ब्रह्म की एकता रूप वास्तव सच्चिदानन्द वस्तु वेद्य है। सुखसे जानने योग्य है। परमानन्दप्रद है। और आध्यात्मिकादि तीन ताप रूप अनर्थ की निवृत्ति रूप है। यह ज्ञान काण्ड के विषय रूपसे श्रेष्ठता कही। और महामुनि इश्वरावतार व्यासकर्त्ता

से भी भागवत में श्रेष्ठता है। और देवताकाण्ड के विषय रूप से श्रेष्ठता कहते हैं। भागवत से अन्य शास्त्रोक्त साधनों से ईश्वर क्या हृदय में शीघ्र स्थिर हो सकता है।' अर्थात् वा शब्द के कटाक्ष से शीघ्र स्थिर नहीं होता। इस भागवत के विचार करने में जिज्ञासु श्रोताजनों द्वारा ईश्वर हृदय में किया जाता है। प्रश्नः-तो सर्व पुरुष इस भागवत ही को क्यों नहीं सुनते हैं? उत्तरः- इसके श्रवण की इच्छा बिना पुण्यों से उदय नहीं होती है। काण्ड तीन का अर्थ यथावत् कथन के कारण से श्री भागवत अतिश्रेष्ठ है इसीसे नित्य प्रति श्रोतव्य है। तथापि अनुबन्ध चतुष्टय के बिना विद्वानों की ग्रन्थ में प्रवृत्ति नहीं होती है। सो विद्वानों की प्रवृत्ति का हेतु भागवत में अनुबन्ध चतुष्टय यह है। मत्सरादि दोषों से रहित शुद्धचित्त सन्त विरक्त अधिकारी हैं और जीव ब्रह्म की एकता रूप वास्तव वेद्य विषय हैं। सच्चिदानन्द की प्राप्ति और आध्यात्मिक ज्वरादि जन्य शोकादिजन्य. आधिभौतिक व्याघ्र चौरादि जन्य, आधिदैविक अग्नि, जल, वायु, यक्ष-भूतादिजन्य तीन ताप रूप दुःख अनर्थ की निवृत्तिरूप प्रयोजन हैं। और विषय ग्रन्थ का प्रतिपाद्य प्रतिपादक भाव सम्बन्ध है। अधिकारी प्रयोजन का प्राप्यप्रापक भाव सम्बन्ध है। यह श्रीभागवतके अनुबन्ध चतुष्टय प्रसिद्ध हैं ॥२॥

अ. ३ श्लो. ४१।४२

निःश्रेसाय लोकस्य धन्यं स्वस्त्ययनं महत् ।
तदिदं ग्राहयामास सुतमात्मवतां वरम् ॥३॥

सर्ववेदेतिहासानां सारं सारं समुद्धृतम् ।
स तु संश्रावयामास महाराजं परीक्षितम्॥४॥

अब भागवत का परम्परा सम्प्रदाय रूप से प्रवर्तन कहते हैं। वेदव्यासजी ने सर्व लोकों के मोक्ष सुख के लिये प्रशंसनीय कल्याणकारी ईश्वरलीला प्रधान इस भागवत को जन्म से ही विरक्त आत्मज्ञानियों में श्रेष्ठ निजपुत्र शुकदेव को सुनाया ॥ ३ ॥

इसी ही सर्व वेद इतिहासों के सार सार निकाले हुए अमृत रूप भागवत को शुकदेवजी ने गङ्गा तट पर मृत्यु पर्यन्त अनशन व्रत से स्थित वेदविद् ऋषियों से परिवारित परम वैराग्य युक्त महाराज परीक्षित् को सुनाया यह परमानन्द-कारी भागवत प्रवाह आज सर्व लोक प्रसिद्ध है ॥ ४ ॥

अ. ८ श्लो. २५-२६

विपदः सन्तु नः शश्वत्तत्र तत्र जगद्गुरो ।
भवतो दर्शनं यत्स्यादपुनर्भवदर्शनम् ॥५॥

जन्मैश्वर्यश्रुतश्रीभिरेधमानमदः पुमान् ।
नैवार्हत्यभिधातुं वै त्वामकिञ्चन गोचरम् ॥६॥

श्रीकृष्णचन्द्र तटस्थ रूप से पापकारियों का नाश कराकर, साधु पुण्यकारी सपरिवार धर्मपुत्र युधिष्ठिर को रक्षा पूर्वक स्वराज्य पद प्राप्त कराकर सर्व को मिलते हुए पृथाको नमस्कार कर द्वारका जाने को तयार हुए। तब कुन्ती संसारी सुख स्वाराज्य पद को तृण के सम और दुःखकारी जानकर भविष्य में आत्मस्वाराज्य सुख उत्पादक दुःख को मांगती है। भो! मोक्षकारी दर्शन, और उपदेशदाता जगद्गुरो जिस तिस देशकाल योनियों में सदा हमारे को दुःखही प्राप्त हो क्योंकि तिन दुःखों में ईश्वर स्मरण से आप ईश्वर का दर्शन होता है। आपके मोक्षकारी दर्शन से फिर दुःखकारी संसार का दर्शन नहीं होता है॥ ५॥

सर्व संसारी सम्पत्ति मोक्षघाती है, श्रेष्ठ कुल में जन्म से ऐश्वर्य, विद्या, धनादि की समृद्धि से युक्त अति मद वाला पुरुष आप परमानन्द धनहीन विरक्तों के दृष्टिगोचर के श्रीराम कृष्णगोविन्द इत्यादि नाम उच्चारण के योग्य नहीं होता है। ऐसे आप परमानन्द विरक्त पुरुषों के धनरूप के लिये मेरा नमस्कार है। हे कृष्ण पितृकुल वृष्णियों में, पति कुल

पाण्डवों में मेरे राग बन्धन का नाश करें। क्योंकि रागही अज्ञान का लिंग है। कुन्ती का ऐसा वैराग्य युक्त कथन सुनकर हर्ष युक्त कृष्ण कहते हैं कि हे अम्ब आपका कथन अतिश्रेष्ठ है। उत्तम स्त्रीयों के ऐसे ही उच्च विचार होते हैं ऐसे श्रेष्ठ विचारों से सर्व बन्धन नष्ट होजाते हैं ॥६॥

अ. ६ श्लो० १५-१७

यत्र धर्मसुतो राजा गदापाणिर्वृकोदरः।
कृष्णोऽस्त्री गांडिवं चापं सुहृत्कृष्णस्ततो विपत् ॥७॥

तस्मादिदं दैवतन्त्रं व्यवस्य भरतर्षभ।
तस्यानुविहितोऽनाथा नाथ ! पाहि प्रजाः प्रभो ॥८॥

युधिष्ठिर प्रजाद्रोह रूप कलंक के निरास अर्थ, और सर्व धर्मों के ज्ञान अर्थ श्रीकृष्ण, भीमार्जुन आदिके साथ कुरुक्षेत्र में गये। जहां स्वर्ग से गिरे हुए मानो देवता ही पड़े हैं। ऐसे स्वच्छन्दमृत्यु वाणशय्याशायी भीष्म पितामह को सकृष्ण पाण्डवों ने नमस्कार किया। श्रीकृष्णचन्द्र को देखकर हर्षयुक्त गद्गद वाणी से भीष्मजीने सर्व का यथा-योग्य सत्कार किया। धर्मपुत्र श्रद्धाभक्ति पूर्ण हृदयकुण्ड से नेत्रों द्वारा झरती हुई जल धारों से मानो नमस्कार करते

हुए भीष्म पितामह के चरणों को प्रक्षालन करते हैं तब कृष्णचन्द्र रूप पूर्णिमा तिथिकी उपस्थिति में द्रौपदी रूप प्रभा युक्त, भीमार्जुनादि कलाओं से पूर्ण चन्द्रमा रूप युधिष्ठिर को देखकर जड़ समुद्र के समान अर्जुनके बाणों से जड़ी भाव बाण शय्या शायी हुए भी देशकाल विभाग वेत्ता भीष्मपितामह आनन्दित होकर, धर्म अर्थ काम मोक्ष उपदेश रूप तरङ्गों से उछलने लगे। कि अहो खेद है कृष्ण-चन्द्र से पूज्य देवों के समान शूरवीर धर्मात्मा पांचपुत्रों के होने पर भी कुन्ती असीम कष्टों को भोगती है। आश्चर्य है। प्रारब्ध दैवगति के नाटक का फाटक कहां तक जा लगा है। तिसमें भी धर्म पुत्र युधिष्ठिर के चक्रवर्ती राजा होने पर कष्ट। और जहां अर्जुन धनुर्धारी, किरात रूप शिवको युद्ध में तोषकारी, देवप्राप्त गाण्डीव चाप युक्त हैं तो भी दुःख। और जहां पर भुजबल से हस्तियों को वायु-लोक में फेंकनेवाले गदाधारी भीम हैं तो भी कष्ट। और जहां सृष्टिकर्ता भर्ता हर्ता, कृष्णमुरारी, गोवर्धनधारी कंस संहारी भक्त सुखकारी, बहुलीलाधारी, देवकीनन्दन, भक्त दुख भंजन ईश्वर हितकारी हैं तो भी विपत्ति। अहो दैवगति के स्वाराज्य की डिम डिमी की घोषणा कहां तक जाती है। पुण्य शरीरबल, अस्त्रशस्त्र निपुणता सर्व देव

संपत्ति प्राप्त होनेपर भी असीम विपत्ति। दैवगति द्वारा यह ईश्वर कृष्ण क्या क्या करना चाहता है यह नहीं जाना जाता ॥७॥

तिस कारण से इन सुख दुःखादि को कर्म द्वारा ईश्वराधीन जानकर, तिस ईश्वर विहित अनुवर्ती हुआ। हे नाथ प्रभो धर्मनन्दन, कुलपरम्परा प्राप्त स्वामीपने से इस अनाथ प्रजा का पालन करो। क्यों कि आप लोकों के तो मोक्षरूप श्रीकृष्ण साथ साथ विचरते हैं। परन्तु मुझ पर भी कृपा करते हुए कृष्ण को देखो जो प्राणान्त काल में दर्शन देने को आगये हैं। उन पुरुषों की सांसारिक दुःखों से क्या हानि हो सकती है जिनके कृष्णचन्द्र परमानन्द सदा हृदय में वास करते हैं ऐसा कहते हुए उत्तरायण काल आनेपर स्वच्छन्द मृत्यु भीष्म पितामह ने जीर्ण वस्त्र के समान देह त्याग किया ॥८॥

अ. १३ श्लो. २०-२१-२२

येन चैवाभिपन्नोऽयं प्राणैः प्रियतमैरपि।
जनःसद्यो वियुज्येत किमुतान्यैर्धनादिभिः॥९॥
पितृभ्रातृसुहृत्पुत्रा हतास्ते विगतं वयः।
आत्मा च जरया ग्रस्तः परगेहमुपासते॥१०॥

अहो महीयसी जन्तोर्जीविताशा यया भवान् ।
भीमापवर्जितं पिण्डमादत्ते गृहपालवत् ॥११॥

तीर्थाटन कर हस्तिनापुर में आए हुए विदुर युधिष्ठिर से पूजित सेवित हुए कुछ दिन रहे । ज्येष्ठ भ्राता धृतराष्ट्र का ज्ञान वैराग्य के उपदेश से कल्याण चाहते हुए गृह में रागयुक्त गत आयु धृतराष्ट्र को कहते हैं । हे राजन् ! अब महान्‌भय आने वाला है । ऐसे काल गति को जानकर इस दुःखकारी गृहको शीघ्र ही त्यागिये । क्यों कि जिस कालसे ग्रस्त हुवा यह प्राणी अति प्रिय प्राणों से भी शीघ्र ही वियुक्त हो जाता है । और पुत्र स्त्री धनादिसे वियुक्त होने में तो कहना ही क्या है ॥ ९ ॥

और आपके पिता भ्राता, मित्र, पुत्र, यौवन, सर्व नष्ट हो चुके, देह ज़रासे अतिग्रस्त है । तो भी सौ पुत्रों के मारने-वालों के गृहवास को जीवन के अर्थ सेवन करते हो ॥१०॥

अहो आश्चर्य है ऐसी नीच दशामें भी जन्तुको जीने की आशा महान् लगी ही रहती है । जिस जीने की आशा से आप सौ पुत्र हन्ता भीम द्वारा घृणासे दिया हुवा जैसा

कैसा अन्न ग्रास कुत्ते के समान स्वीकार कर खाते हो। और जिन भीमादि के दाह अर्थ लाक्षागृह में अग्नि लगवाई और मृत्युप्रद विषयुक्त मोदक दिये। द्रौपदी को केश ग्रहणादि पाप कर्मों से दूषित किया। और जिन्हों का धन भूमि राज्य आपने हरण करलिया रहा। तिन भीमादि के दिये अन्नादि से रक्षित प्राणों से जीकर क्या फल होगा, कुछ नहीं होगा। उत्तम धीर पुरुपका लक्षण यह है कि यश, धर्मादि गत स्वार्थ मनुष्य देह को निर्मान मोहजित संग दोष हुआ गृह स्व पर सर्व से विरक्त अज्ञात गति हो पापहारी हरिपरायण हुवा त्याग करता है सो उत्तम पुरुष है। ऐसे विदुर के ज्ञान वैराग्यकारी उपदेश सुनकर राजा धृतराष्ट्र अज्ञातगति सर्व से विरक्त होकर रात्रि में निकल गए। सप्तसरोवर जाकर अनशन व्रत से शरीर त्याग करदिया साध्वी पतिव्रता गान्धारी भी पति अनुगामिनी हुई उसने भी देह परित्याग कर दिया ॥११॥

अ. १५ श्लो. २१-४०

तद्वै धनुस्त इषवः स रथो हयास्ते,
सोऽहं रथी नृपतयो यत आनमन्ति।
सर्वं क्षणेन तदभूदसदीशरिक्तं,
भस्मन्हुतं कुहकराद्धमिवोप्तमूष्याम् ॥१२॥

विसृज्य तत्र तत्सर्वं दुकूलवलयादिकम् ॥
निर्ममो निरहंकारः संछिन्नाशेषबन्धनः ॥१३।

श्रीकृष्णचन्द्र परमानंदके दर्शनार्थ द्वारका गये हुए अर्जुन के बहुमास व्यतीत होने पर युधिष्ठिर दुःख सूचक विपरीत बहु शकुनों को देखकर भीम से कहते हैं। हे भ्रात आपके अनुज को कृष्ण दर्शनार्थ गये को बहुमास व्यतीत हो गये अभी आये नहीं हैं। मुझको सर्व भूमि हतभाग सी देखने में आती है न जाने क्या होगा। तब उसी काल में द्वारकासे आये महान् दुःखी दीन रोते हुए अर्जुन को स्वचरणों में नमस्कार करते को पूछते हैं। हे भ्रात! द्वारका पुरी में श्रीरामकृष्ण की भुजछाया निवासी सर्व सुख से वास करते हैं। हे तात तुम भ्रष्ट तेज से प्रतीत होते हो क्या द्वारका में बन्धुओं ने तुम्हारा मान न कर अपमान किया है। अथवा याचकों को दान देना कहकर न देने से दुःखी हो, क्या शरणागत की न रक्षा से दुःखी हो क्या प्रिय श्रीरामकृष्ण के दर्शन न होने से दुखी हो इत्यादि नाना शंकाओं से युधिष्ठिर ने पूछा। तब श्रीकृष्ण वियोग से हतमुखपद्म शोभा अर्जुन बोलने में अशक्त हुए भी जैसे कैसे शोक को रोक कर गद्गदवाणी से बोले। हे महाराज! बन्धुरूप परमानन्द

हरि से मैं हतभाग्य वंचित हो गया हूँ। श्रीकृष्ण से विना प्राणहीन मृतक समान ही मुझको जानो। जिस हरि के वल तेजसे आपके अनुज भीम ने महावली जरासन्ध को प्राणगत कर राजाओं को कारागृह से मुक्त करा दिया और जिस हरि के वल तेज से मेरी वाण वर्षा से युद्धमें चकित हुए शिवने प्रसन्न होकर मुझको पाशुपत अस्त्र दिया था, और जिसके वलसे इन्द्रादि देवता भी अर्ध आसन देते हुए हमारा मान करते थे। जिसके वलतेज से मैंने अकेले ने सर्व दिग्विजय कर राजाओं को भेट पूर्वक आपके चरण सेवन योग्य कर दिया था। दिव्य शक्तिशाली भीष्म, द्रोणादि को युद्ध में चकित कर विजय प्राप्त की। अहो जिस परमानन्द के चरण कमलों को भव्य पुरुष मोक्षके अर्थ सेवन करते हैं। मैंने कुमति से उस ईश्वर को नीच सौत्यकर्म में याचना कर नियुक्त किया शुभ रुचिर कर्ण सुखकारी हास्य युक्त मुख से हे पार्थ! हे अर्जुन! हे सखे हे कुरुनन्दनादि शब्द माधवके आज मेरे हृदय में क्षोभ करते हैं। उस कृष्णचन्द्र के विना आज मेरी यह दशा है। वैकुण्ठगामी हरि ने मुझ से कहा कि द्वारका समुद्रमें सप्तमें दिन डूब जावेगी इससे पहिले स्त्री वाल वच्चे सर्व को हस्तिनापुर ले जाओ। तव हे नृपेन्द्र हरि के सर्व परिवार सोलह हजार स्त्री को मार्ग

में लाते हुए मुझको तुच्छ गोपों ने स्त्री के समान जीत लिय जिन धनुषादि के भयसे राजा लोग मेरे चरणों में नमते थे वही गाण्डीव धनुप मेरे पास हैं और वो ही बाण है, सोही अग्नि से प्राप्त हुआ रथ है वोही घोड़े हैं और वोही मैं रथी हूँ परन्तु तो भी श्रीकृष्णचन्द्र ईश्वर के विना जैसे अग्नि में मन्त्र विधि से दी हुई हविः भस्म होजाती है। और जैसे अति प्रसन्न मायावी से प्राप्त वस्तु मिथ्या ही होती हैं। जैसे ऊपर भूमि में बीज बोया हुआ निष्फल होता है। तैसे ही मेरे हतभाग्य के कृष्ण ईश्वर वियोग से सब ही नष्ट होगये। हे राजेन्द्र जो आपने बन्धुओं की कुशल पूछी तिनमें दुर्वासा के शापरूप अग्नि से चार पांच व्यक्ति शेष बचे हैं। इससे अधिक बोलने में मैं अशक्त हूं। यह जीवन मात्र भी श्रीकृष्ण के शान्तिप्रद गीतामृत उपदेश स्मरण से होरहा है। जो कौरव कुल नाश निमित्तक शोक मोह द्वैत संशय-च्छेदक ब्रह्मात्मस्वरूप ज्ञानोपदेश गोविन्द ने कराया था सो आज यादवकुल नाश निमित्त से स्मरण हुआ है। अब कहना सुनना कुछ शेप नहीं रहा यह सर्व वृत्तान्त सुनकर युधिष्ठिर ने श्रीकृष्ण रहित भूमि में लोभ झूंठ दगा हिंसादि का प्रवर्तन देखकर परीक्षित् को हस्तिनापुर का राजा कर दिया। और वज्र को मथुरा का राजा कर दिया। पुनः प्राजापत्य याग करके

उस यज्ञ स्थान में ही देह के शृंगार रूप रेशमी वस्त्र कंकण मुकुटादि सर्व को दूर पटककर ममता अहंता से रहित हो निर्मान मोह जित संगदोष छिन्नाशेष बन्धन ब्रह्मनिष्ठ चीर-वासा जड़ उन्मत्त के समान अपने को दर्शाते हुए विरक्त होकर उत्तराखण्ड को चले गये। भीमादि भ्राता भी ऐसे ही चले गये ऐसे प्रातःस्मरणीय युधिष्ठिरादि महाराजाओं के मोक्षकारी आख्यानों को ब्रह्मविद्या भूषित भारतीय विद्वानों के मुखसे न सुनकर भारतीय राजालोक पर शासक वश होकर दुःख पीड़ित हुए पाश्चात्य देश में जहां प्रातः स्मरणीय पुण्यकारी युधिष्ठिरादि राजाओं के शुभ चरित्र सुनने में न आवें वहां जाकर शान्ति प्राप्त करते हैं। हा कष्ट है जिस कलियुग को भारतीय राजा परीक्षित् ने दमन किया था आज वो ही कलियुग भारतीय राजाओं का दमन कर रहा है ॥ १२-१३ ॥

अ. १७ श्लो. १०-११-३८-३९

यस्य राष्ट्रे प्रजाः सर्वास्त्रस्यन्ते साध्व्यसाधुभिः।
तस्य मत्तस्य नश्यन्ति कीर्तिरायुर्भगो गतिः १४॥
एष राज्ञां परो धर्मो ह्यार्तानामार्तिनिग्रहः।
अत एनं वधिष्यामि भूतद्रुहमसत्तमम् ॥१५॥

अभ्यार्थितस्तदा तस्मै स्थानानि कलये ददौ ।
द्यूतं पानं स्त्रियः सूना यत्राधर्मश्चतुर्विधः ॥ १६ ॥
पुनश्च याचमानाय जातरूपमदात्प्रभुः ।
ततोऽनृतं मदं कामं रजो वैरं च पञ्चमम् ॥१७॥

दानवीर शूरवीर परीक्षित जब सर्व दिग्विजय करते हुए कुरुक्षेत्र में पूर्ववाहिनी सरस्वती के तट पर आकर कलि की अधर्मचेष्टा को देखा। कैसी है वो बैल रूप धारी धर्म को, गौरूपधारी भूमिको राजवेषखड्गधारी कलि से ताडित हुवे को देखकर दुष्टों के शासक महाधनुर्धारी परीक्षित बोले हे दुष्ट राजवेशधारी अधर्मकारी मेरी शरणागत बलहीनों को तुम बल से कैसे मारते हो क्या तुमने गाण्डीव धनुर्धारी अर्जुन के सहित श्रीकृष्ण को दूर गये समझ लिया है। कौरवेन्द्रों की भुज छाया रक्षित प्राणियों के शोक से आंसू भूमि पर पडे हा कष्ट है। धर्म और भूमि को सर्व चिन्हों से जानकर कहते हैं। हे भूमिरूप गौमात, भो धर्मरूप बैल! दुष्ट से भय मत करो क्यों कि खलों का शासक पाण्डवों की अंश में विद्यमान हूँ। मैं स्वहितार्थ ही इस पापकारी कलि को मारता हूं, आपके उपकार के लिये नहीं। हे साध्वी गौमात! जिस राजा के राज्य में पापकारी दुष्टों से सर्व निर्दोष प्रजाकष्ट

पाती है तिस स्वकर्तव्य धर्महीन प्रमादी राजा के यश, आयु, पुण्यभाग्य, परलोक प्राप्ति सर्व ही नष्ट हो जाते हैं॥ १३ ॥

इस हेतु से यह राजाओं का परम कल्याणकारी धर्म है कि दुष्टों का दमन कर आर्तजनों का दुःख दूर करना। इसी से पापकारी सर्व प्राणीद्रोही इस नीच कलि का मैं नाश करता हूँ॥ १४ ॥

ऐसे खड्गपाणि परीक्षित् को देखकर भयभीत हुआ कलि राजा के चरणों में पड़कर याचना करता है कि मैं सर्वदा आपकी शासना में रहूंगा, आप दयाकर मुझको निवास स्थान दें। तब दयानिधि राजा परीक्षित् ने कलिके प्रार्थना करने से उसके निवास के लिये धर्म के पाद सत्य, दया, तप, दान, इन चारों से विरुद्ध द्यूत, सुरापान, स्त्रीसंग, प्राणि-हिंसा यह चार स्थान दिये। क्योंकि जहां पर अधर्म के झूंठ हिंसा, असंतोष, स्त्रीसंग यह चार पाद हैं। क्यों कि द्यूत में सत्यनाशक झूंठ है। सुरापान में तप नाशक असंतोष रूप मद है। हिंसा दया नाशक है। स्त्री संग दान व शौच का नाशक है। सत्यादि धर्म के पादों को झूंठादि अधर्म के पाद त्रेतादि युगों में क्रम से नाश करते हैं॥१५॥

अधर्म के झूठादि चारों पादों का जहां एकत्रवास हो वो स्थान मुझको दें। ऐसे पुनः याचना करते हुए कलि के लिये दानवीर परिक्षित ने न शब्द न कहते हुए सुवर्ण स्थान वास अर्थ दिया तिस सुवर्णदान से झूठ, मद, स्त्रीसंग रूप काम, रजो मूलहिंसा, पांचमा वैर यह स्थान भी कलि को प्राप्त हो गये। इन अधर्म जनक स्थानों का धर्मशील राजा सेवन न करे। परन्तु कलिने जिन स्थानों को शूरवीर धर्मशील राजा परिक्षित् से याचना कर प्राप्त किया था, आज वो स्थान भारतीय राजाओं को प्रबल शासकों से बलात्कार दिये जाते हैं और भारतीय राजा अहो भाग्य मानकर स्वीकार करते हैं। तो भी कुछ राजा भारतीय धर्म-भूषण राजा परीक्षित् के चरित्रों का भी विचार रखते हैं। और जो राजा देववाणी से भूषित शास्त्र विचार सम्पन्न हैं वो राज धर्मों का पालन करना अवश्य ही कल्याणकारी कर्तव्य है ऐसा जानते हैं ऐसा धनुर्धारी धर्मकारी राजोपकारी प्रातः स्मरणीय महाराज परिक्षित का आख्यान है ॥ १६ ॥

वैदिक सनातन मत में श्री पुण्यकारी चौबीस अवतारों के नामलेख से बिना वेद, स्मृति, पुराण शास्त्र इतिहासादि

कोई भी ग्रन्थ न होगा। इन चौवीस अवतारों के नामों को बहुत से समाजी लोग तो विसूचिका रोग मानते हैं। परन्तु श्रीभागवतादि पुराणों से जीविका करने वाले पौराणिक लोग भी ऐसा जानते हैं, कि किसीने पूछा पांच पाण्डवों के नाम क्या हैं? ग्राम के मुखियाने कहा कि एक का नाम अर्जुन एक का भीम एक और था एक और था एक का नाम मैं भूल गया यह पाण्डवों के पांच नाम हैं तैसे ही किसी ने पौराणिकजी से चौबीस अवतारों के नाम पूछे पौराणिकजी ने कहा राम, कृष्ण, नरसिंह, वामनादि यह चौवीस अवतारों के नाम हैं। अहो कष्ट है यह दशा सनातन धर्मियों की। बहुत से मतान्तरों में तीर्थंकरों के नाम सायं प्रातः लिये जाते हैं। वैदिक सनातन मतमें तो तीर्थंकर ऋषियों की संख्या नाना है तिनका तो नाम लेना ही क्या था संख्या तो अवतारों की भी नाना है। परन्तु ईश्वर के चौवीस अवतार नाम मात्र से पुण्यकारी मुख्य यह हैं। जिनको कुलीन सनातन धर्मी सायं प्रातः नित्य जपते हैं।

श्लो.—मत्स्यं कूर्मं च वाराहं नारसिंहं च वामनम्।
रामं रामं च कृष्णं च बुद्धं कल्किं नमामि तान् ॥१॥
नारायणं नारदं च कौमारं नौमि कापिलम्।
ऋषभं यज्ञपूरुषं दत्तात्रेयं पृथुं तथा ॥ २ ॥

धन्वन्तरिं च हसं च मोहिनीं व्यासमेव च ।
हयग्रीवं हरिं चैव नमाम्यहं पुनः पुनः ॥ ३ ॥

* दोहा *

४ ३ २२ ५ १८
नारायण नारद हरि कपिलदेव श्रीराम,
२० २१ १३ ६
हंस हयग्रीव मोहिनी दत्तात्रेय सुखधाम ॥ १ ॥
१४ १५ १७ ८ १
नरसिंह वामन व्यासजी ऋषभदेव कौमार ।
७ १२ २३ २४
यज्ञपुरुष धनवन्तरि बुद्ध कल्कि अवतार ॥ २ ॥
८ २ १६
पृथुराजा वाराह पुनि श्रीकृष्णचन्द्र भगवान ।
१६ १० ११
परशुराम मत्स्य कमठ श्री भागवत प्रमाण ॥ ३ ॥
नाम चौबीस अवतार के सायं प्रात जप सार ।
पाप नशें बहुजन्म के " ज्ञान " होवे भवपार ॥ ४ ॥

इति श्रीभागवतसारबिन्दौ सारार्थदीपिका-
भाषाटीकायां प्रथमः स्कन्धः

卐 हरिः ॐ तत्सत् 卐

॥ अथ द्वितीयः स्कन्धः २ ॥

शमीक ऋषि धर्मात्मा परिचित् के प्रति स्वपुत्र से सप्त दिन में मृत्युकारी दारुण शाप सुनकर, शृङ्गी नाम पुत्र को डाटते हुए पश्चात्ताप रूप प्रायश्चित करते हैं कि हे अपक्वबुद्धि वाल तुमने क्षुधा प्यासा श्रम युक्त दीन, भागवत राजऋषि को आश्रम में आये हुए का आसन, जल भूमि, प्रिय वाक्यों से सत्कार न कर मृत्युप्रद पापकारी शाप दिया। हे भगवन् ! सर्वात्मा, अपक्वबुद्धि बालकृत पापको क्षमा करें। राजा यदि प्रतिशाप दे तो इस पापकी निष्कृति हो जाए। परन्तु भगवद्भक्त तिरस्कृत, वंचित, विक्षिप्त, ताड़ित हुए भी समर्थ होते हुए भी किसी को शाप से कष्ट में नहीं जोड़ते हैं। राजा परिचित् भी समाहित मन होकर ऋषि अपमान निन्दित कर्म को जानकर महादुखी हुए। अहो मैंने नीच ने कैसा नीच कर्म किया है निरापराध ऋषि के गलेमें मरा सर्प डाल दिया। इस पाप कर्म का फल पाप निवृत्ति अर्थ मुझको आज ही हो। जो राज्य, सेना, कोश है सो सर्व आजही ऋषि के शाप से दग्ध हो जाए। जिस कष्ट को याद कर फिर मेरी बुद्धि पापकारी न हो। इतने में ही मुनिपुत्र का शाप सप्त दिन में मृत्युकारी, विषयों से वैराग्यजनक सुनकर

राजा महान् प्रसन्न हुआ। तब इस लोक के चक्रवर्ती राज्य को त्यागकर और पुत्र, दारा, परलोकादि से विगत ईष्णा महाविरक्त होकर राजा मृत्यु पर्यन्त अनशनव्रत प्रतिज्ञ निर्मान मोह सर्व संग मुक्त होकर विष्णुपाद प्रसूता गङ्गा के दक्षिणतट पर जाकर स्थित हुए। तिस चक्रवर्ती पुण्यात्मा राजा को विरक्त हुआ सुनकर सर्व ऋषिलोग दर्शन करने आये। राजाने सर्व ऋषियों का यथायोग्य स्वागत सत्कार कर पूछा कि भो पूज्यपादा करूणानिधयो मस्तक स्थायी प्राप्त मृत्युजनों को मोक्षकारी क्या श्रोतव्य है क्या कर्तव्य है। तब ऋषियों ने कहा धन्य पुण्यात्मा पाण्डव वंश जो परमानन्द कृष्ण आश्रिकापा. राजाओं के किरीटों से सेवित राजासन को त्यागकर " निर्मान मोहजित संगदोष अध्यात्मनिरत विनिवृत्तकाम होकर वनों में चले जाते हैं। राज प्रश्न के उत्तर में कोई याग, कोई योग, तप, दानादि में ऋषियों के विवाद करने पर, व्यास पुत्र निजलाभ संन्तुष्ट सुन्दररूप दिगम्बर गङ्गातट पर रटते हुए आगए। वर्णाश्रम चिन्ह रहित गूढ वर्चस् की नाना स्वागत सत्कारों से ऋषियों ने पूजा करी, राजा परीक्षित् दण्डवत् करता हुआ शिर पाद पद्मों में रखकर आत्म निवेदन करता हुवा। राजा नाना प्रशंसाकर पूछते हैं कि सन्मुख प्राप्त मृत्यु मुमुक्षु जनों को

मोक्षकारी क्या श्रोतव्य है क्या कर्तव्य है इसमें सर्व प्रश्न आगये, क्यों कि आप जैसे जीवन्मुक्त महान् विरक्त पंच हिंसा युक्त गृहस्थों के गृह में गोदोहन मात्र काल भी स्थिर नहीं देखे जाते हैं। इस हेतुसे पूज्यपाद विरक्त परमहंस जीवन्मुक्त मोक्षपथ प्रदर्शकों की प्राप्ति अर्थ गृह पुत्र दारादि सर्व का संग त्यागकर गङ्गातट पर वास करता हूँ। आप संसाराज्ञान पारतारी के प्राप्त होने पर अब मेरे मोक्ष होने में संशय नहीं है। ऐसे मोक्ष-विषयक प्रश्नों को सुनकर श्री शुकदेव राजा परिक्षित् को विवेक वैराग्यादि साधन युक्त ब्रह्मज्ञान का अधिकारी जानकर प्रसन्न हुए कहते हैं। हे राजन्! ऐसे विरक्त मुमुक्षु शरणागत जनके श्रेष्ठ प्रश्न का मोक्षकारी उत्तर महान पुरुष अवश्यही देते हैं।

अ. १. श्लो. २।३।४।५-१२

श्रोतव्यादीनि राजेन्द्र नृणां सन्ति सहस्रशः।
अपश्यतामात्मतत्त्वं गृहेषु गृहमेधिनाम् ॥१॥
निद्रया ह्रियते नक्तं व्यवायेन च वा वयः।
दिवा चार्थेहया राजन् कुटुम्बभरणेन वा ॥२॥
देहापत्यकलत्रादिष्वात्मसैन्येष्वसत्स्वपि।
तेषां प्रमत्तो निधनं पश्यन्नपि न पश्यति ॥३॥

तस्माद्भारत सर्वात्मा भगवान्हरिरीश्वरः ।
श्रोतव्यः कीर्तितव्यश्च स्मर्तव्यश्चेच्छताऽभयम् ॥४॥
खट्वाङ्गो नाम राजर्षिर्ज्ञात्वेयत्तामिहायुषः ।
मुहूर्तात्सर्वमुत्सृज्य गतवानभयं हरिम् ॥५॥

श्री शुकदेवजी बोले हे राजेन्द्र ! ब्रह्मात्मतत्व अद्वैत-स्वरूप को न जाननेवाले पुरुषों को गृह सम्बन्धी पुत्र-दारादि में आसक्तों को, गृहगतपञ्चहिंसायुक्तों को स्वाभाविक संसारी कार्य अनर्थ के हेतु ग्रहस्थों को गार्हस्थ्य-निर्वाहार्थ हजारों ही श्रोतव्यादि कर्तव्य हैं ॥ १ ॥

हे राजन् ! तिन नाना कर्तव्यादि से अज्ञानियों की वृथा ही आयु गत होती है । पुरुष की आयु रात्रि में निद्रा से नष्ट हो जाती है और कुछ आयु स्त्री मैथुन से नष्ट हो जाती है । और दिन में धनार्थ नाना उद्यमों से अर्थ सिद्ध होने पर भी कुटम्ब के पालन करके कुछ आयु नष्ट हो जाती है । संसारी व्यसनों में लगा हुआ प्राणि समस्त आयु नष्ट कर देता है । निज कल्याण के लिये आंख खोल कर न देखता है ॥ २ ॥ अहो कष्ट है, देह पुत्र कलत्रादि तथा सेना हस्ती घोड़े धन गृहादि मिथ्या परिवारों मे रागी प्रमत्तजन पिता पितामहादि सम्बन्धियों को मरते हुवों को

देखकर भी मस्तक स्थायी निज मृत्यु को नहीं देखता है। अर्थात् शास्त्र विचार पूर्वक ब्रह्मात्म स्वरूप का विचार नहीं करता है ॥ ३ ॥ ऐसे विपरीत प्रश्नों का उत्तर कहकर अब श्रोतव्यादि प्रश्नों का उत्तर देते हैं। कि हे भारतश्रेष्ठ, तिसी कारण से सर्वका आत्मा ब्रह्मस्वरूप भगवान् पाप बन्धन हारी हरि सर्वका नियन्ता ईश्वर ही सर्वदा निर्भय मोक्षस्वरूप की इच्छा वाले जिज्ञासुजन को मृत्युके सन्मुख हुए को सर्वदा ब्रह्मात्मस्वरूप की प्राप्ति के साधन रूप श्रवण कीर्तनरूप मनने, स्मरणरूप निदिध्यासन करने योग्य हैं। तिसी ब्रह्मात्मस्वरूप के तत् त्वं पदका संशोधन करना योग्य है। तिसी आत्मानात्म के विवेक को सांख्य योग वाले भी कहते हैं यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान समाधि। यह योग के अष्टांग श्रुतियों कर पूर्ण रीति से पुरूषार्थ चतुष्टय नाम के ग्रन्थ में कथन करे हैं यहां नहीं लिखे हैं। यदि राजा परिक्षित् कहे कि सप्त दिन के अल्प जीवन में मोक्ष के लिये मैं क्या यत्न करूं इसके उत्तर में श्री शुकदेव ने कहा कि हे राजन् विशेष कर मुनिजन शास्त्र के इतने विधि निषेध से रहित हुए निर्गुण ब्रह्म में ही दृढ़ बुद्धि से स्थिर है तो भी हरि के शुभ गुण ग्रहण करने में ही रमण करते हैं। इसी कारण से हरि गुण गान प्रधान इस भागवत नाम पुराण को, गायत्री मन्त्र रूप वेद मूलक श्रेष्ठ

को, द्वापर के आदि में मैंने पिता वेदव्यासजी से अध्ययन किया था। परिक्षित ने कहा कि आप सर्वदा निर्गुण सच्चिदानन्द ब्रह्म में स्थिर हुओं की श्री भागवत अध्ययन में कैसे प्रवृति हुई। शुकदेव ने कहा कि मैं निर्गुण परब्रह्म में स्थिर हुआ भी, हे राजर्षि उत्तम यशशील पापबन्धन हारी हरि लीला से गृहीतचित्त मैंने श्री भागवतामृत आख्यान को अध्ययन किया। तिस भागवतामृत कथा को हे राजन् मैं तुमारे लिये कहता हूँ। क्यों कि आप महा-पुरूपार्थ शील भगवत् परायण हो। जिस आप श्रद्धालु की मोक्षरूप मुकुन्द में शीघ्रही स्थिर मति है ये ही श्री भागवतामृत कथा संसार से विरक्त योगि महात्माओं को मोक्षरूप निर्भय की इच्छा वालों को हे राजन् श्रेयकारी हैं। सर्वदा एक भगवत् पारायण होना ही संसार से मुक्ति का प्रसिद्ध मुख्य साधन है। तच्चिन्तनं तत्कथनं तदन्योऽन्यप्रबोधनं॥ एतदेक परत्वं च ब्रह्माभ्यास विदुर्बुधाः। ऐसे ब्रह्माभ्यास करने वाले श्रेष्ठ पुरुष की मुक्ति होने मे कोइ संशय नहीं है। न्यायदर्शन मे गोतमजी ने कहा है; कि वीतरागस्यं जन्मादर्शनात्। रागो लिङ्गमबोधस्य चित्तव्यायाम भूमिषु। विषयों से उपराम हुए बिना परमात्मा मे चित्त स्थिर हो नहीं सकता है। सांख्य दर्शन मे भी कहा है कि वीत राग का ही मोक्ष होता है। विरक्तस्य तत्सिद्धेः। इस सूत्र मे कहा है ॥४॥

शुकदेवजी कहते हैं हे राजन् सोच न करे गृह पुत्रदारादि में आसक्त मोक्षमें प्रमादीजनों के वहुत वर्ष जीने से क्या फल है। ब्रह्मात्म विचार से एक मुहूर्त जीना भी श्रेष्ठ है। क्यों कि श्रेष्ठ पुरुष एक मुहूर्त जीने में ही मोक्ष को प्राप्त करलेते हैं। जैसे खट्वाङ्ग नाम राजर्षि ने देवताओं के पक्ष में होकर दैत्यों को जीत लिया था। तब प्रसन्न होकर देवोंने कहा हे राजन्! वर मांगो। राजाने कहा कि मेरी जीने की शेषायु कितनी है यह आप कहें। देवतोंने कहा कि आपके जीनेकी शेषायु एक मुहूर्त मात्र है। तब शीघ्र ही विमानद्वारा रजोगुण अधिक स्वर्ग भूमि से कर्म भूमि मर्त्यलोक में आए इस हेतु से मर्त्यलोक सर्व कल्याण का कारण होनेसे श्रेष्ठ कहा है। आकर खट्वाङ्ग नाम राजर्षि अपनी जीनेकी आयुको एक मुहूर्त मात्र प्रमित जानकर शीघ्रही यावत् राज्य कुटुम्बादि को त्याग दिया। निर्मान मोह जित-संग दोष अध्यात्म निरत होकर एक मुहूर्त मात्र काल में ही भयहारी हरि- परमानन्द ब्रह्मात्मस्वरूप को प्राप्त हो गए। हे राजन्! आपकी तो सप्त दिन पर्यन्त जीने की आयु है। इतने काल में सर्व पुत्र कलत्रादि में मोह छोड़कर ब्रह्मात्म स्वरूप की प्राप्ति के साधनों का संपादन भली प्रकार से कर सकते हो। मस्तक स्थायी मृत्यु जानकर विरक्त जितेन्द्रिय

हुआ गृह से निकल कर (क्यों कि गृहमें रहकर राग की निवृत्ति नहीं होती) पुण्य तीर्थ देव नदी में स्नान कर एकान्त में स्थिर आसन हुआ अर्थ सहित ब्रह्माक्षर प्रणव का अभ्यास करे ॥ ५ ॥

अ. ६ श्लो. ३९

विशुद्धं केवलं ज्ञानं प्रत्यक्सम्यगवस्थितम् ।
सत्यं पूर्णमनाद्यन्तं निर्गुणं नित्यमद्वयम् ॥६॥

इस षष्ठे अध्याय में पुरुषसूक्तोक्त भूत भविष्यत् वर्तमान यावत् प्रपंच को पुरुष पूर्ण परमात्मारूप कहा और आपही पूर्ण पुरुष कर्ता, अधिकरण, साधन कर्म रूपसे सृष्ट्यादि रचता है। तिस पूर्ण पुरुष के तत्व को विवेक-वैराग्यादि साधन हीन विषयासक्त अज्ञानी नहीं जान सकते। सो वास्तव तत्व पूर्ण ब्रह्म यह है:— असत्यजड़ दुखों से रहित सत्य ज्ञानानन्द रूप वास्तव तत्त्व है। सर्व अनात्म अनर्थ की निवृत्ति अर्थ विशुद्धादि विशेषण है। विषयाकार से रहित शुद्ध है। केवल निरवयव है। ज्ञान, (घटाकार वृत्ति ज्ञान रहित है। प्रत्यक् सर्वान्तर है) सम्यक् संदेहादि से रहित है। अवस्थित, निश्चल है। गुण रहित निर्गुण है। त्रिविध परिच्छेद से रहित पूर्ण है।

अनाद्यन्त, जन्मनाशादि न होने से षड् विकारों से रहित है। अज्ञान काल में द्वैत प्रतीति होने पर भी परमार्थ से सर्वदा द्वैत रहित अद्वय ब्रह्म है। तिस अद्वय ब्रह्मतत्व को प्रशान्त चित्त जितेन्द्रिय वीतराग मननशील मुनि जान सकते हैं। यह ब्रह्मा नारद से, श्रीशुकदेव परीक्षित् से कहते हैं ॥ ६ ॥

अथ चतुःश्लोकी भागवत। श्रीभगवानुवाच।

अ० ६ श्लो० ३२-३३-३४-३५

अहमेवासमेवाग्रे नान्यद्यत्सदसत्परम् ।
पश्चादहं यदेतच्च योऽवशिष्येत सोऽस्म्यहम् ॥७॥
ऋतेऽर्थं यत्प्रतीयेत न प्रतीयेत चात्मनि ।
तद्विद्यादात्मनो मायां यथा भासो यथा तमः ॥८॥
यथा महान्ति भूतानि भूतेषूच्चावचेष्वनु ।
प्रविष्टान्यप्रविष्टानि तथा तेषु न तेष्वहम् ॥ ६ ॥
एतावदेव जिज्ञास्यं तत्त्वजिज्ञासुनात्मनः ।
अन्वयव्यतिरेकाभ्यां यत्स्यात्सर्वत्र सर्वदा ॥१०॥

ब्रह्मा ने पूछा भो भगवन्! आपके वास्तव तत्त्व का ज्ञान मुझको कैसे हो सकता है। श्री भगवानने कहा कि

हे ब्रह्मन् मेरे वास्तव अद्वयतत्व का ज्ञान मेरी कृपा से ही हो जाएगा। क्योंकि मैं ही एक अद्वय सृष्टि से पूर्व स्थित था। अन्य सत् स्थूल, असत् सूक्ष्म पर तिन दोनों का कारण प्रधान ये नहीं थे। सर्व मेरे में लीन होने से पूर्व मैं एक ही अद्वय था। पश्चात् सृष्टि के हो जाने से यावत् विश्व है सो भी मैं ही हूँ। और सृष्टि के लय हो जाने पर जो शेष वस्तु स्थिर रहती है सो भी मैं ही हूँ। इस कथन से अनादि, अनन्त, अद्वय परिपूर्ण ब्रह्म मैं हूं यह कहा गया ॥ ७ ॥

जैसे रज्जु शुक्ति में सर्प रज्जूवत् हुआ। दिखता है और शुक्ति सत् हुई भी नहीं दिखती है।

वास्तव अर्थ सत वस्तु से विना, जो असत् प्रपञ्च अधिष्ठान आत्मा में प्रतीत होता है और जिससे सच्चिदानन्दादि वास्तव रूप नहीं प्रतीत होता है जिससे तिसको मेरी आत्मस्वरूप ब्रह्म की माया जान। जैसे वास्तवमें दो चन्द्रमा न हुए भी दृष्टिदोष से दो चन्द्रमा दिखते हैं। और सत् वस्तु की न प्रतीति में दृष्टान्त जैसे ग्रहमण्डल में स्थित हुआ भी तमरूप राहुकी रूप रहित मिथ्या छाया सूर्य चन्द्रमा के ग्रहण में प्रतीत होती है, तमरूप राहु प्रतीत नहीं होता है। ऐसी अघटित घटना पटीयसी मुझ ईश्वर की माया है ॥ ८ ॥

जैसे आकाशादि पंञ्च महाभूत स्वकार्य में सूक्ष्म स्थूल रूप देव मनुष्य तिर्यगादि भौतिक में सृष्टि से अनन्तर प्रविष्ट हुए हैं तिनमें प्रतीत होने से प्रविष्ट हुए जाने जाते हैं। और कार्य वर्ग में प्रविष्ट भी नहीं है, क्योंकि पूर्व ही कारण रूप से विद्यमान होनेसे। तिस कार्य वर्ग में उपलब्ध होने से। तैसे ही मैं भी पञ्चभूत भौतिक प्रपञ्च में प्रविष्ट नहीं भी हूँ क्यों अधिक व्यापक हूँ एसी मेरी अद्भुत सत्ता है ॥६॥

भो ब्रह्मन् ब्रह्मात्मतत्व के जिज्ञासु करके इतना ही वास्तव तत्व विचारणीय और ज्ञातव्य है। कार्यों में कारण रूप से अनुवृत्त होना ही अन्वय है। और कारण अवस्था में तिन कार्यों से पृथक् होना ही व्यतिरेक है। तैसे ही जाग्रदादि अवस्थाओं में तिन जाग्रत्स्वप्नादि अवस्थाओं का साक्षीरूप से स्थित होना ही आत्मा का अन्वय है। और समाधि आदिमें जाग्रदादि का न प्रतीत होना ही व्यतिरेक है। ऐसे अन्वयव्यतिरेकों से जो ब्रह्मात्मस्वरूप सर्व देश में सर्व कालमें व्यापक रूप से स्थित हो। सो ही सच्चिदानन्दात्मा है। इस मेरे कहे हुए मत में चित्तैकाग्र रूप परम समाधि से स्थिर हो। तो आप ब्रह्मा सृष्टि के नाना संकल्प

विकल्पों में मोह को प्राप्त न होंगे। ऐसे चतुःश्लोकी भागवत ब्रह्मा को कहकर भगवान् अन्तर्ध्यान हो गये। पण्डित वंशीधर शर्मा ने चतुःश्लोकी भागवत का अर्थ बहुत विस्तार से लिखा है। परन्तु श्रीधर स्वामी कृत संक्षेपार्थ श्रेष्ठ है द्वितीय स्कन्ध में समस्त श्री भागवत का संक्षेप से वर्णन है।

इति श्रीभागवतसाराबिन्दौ सारार्थदीपिका-

भाषाटीकायां द्वितीयः स्कन्धः

卐 हरिः ॐ तत्सत् 卐

॥ अथ तृतीयः स्कन्धः ३ ॥

अ० ७ श्लो० १७

यश्च मूढतमो लोके यश्च बुद्धेः परंगतः ।
तावुभौ सुखमेधेते क्लिश्यत्यन्तरितो जनः ॥१॥

श्री भागवत सम्प्रदाय की प्रवृत्ति दो प्रकार से कही है। एक संक्षेप से दूसरी विस्तार से। संक्षेप से तो द्वितीय स्कन्ध में श्री नारायण ब्रह्मा के सम्वाद से चतुःश्लोकी श्री भागवत निरूपण की गई है। अब शेषोक्त विस्तार को कहने के लिये तृतीयादि स्कन्धों का प्रारम्भ है। प्रथम विदुर मैत्रेयका सम्वाद है। विदुर पूछते हैं भो मैत्रेय मुने! आपने कहा कि इस प्रपञ्च का मूल निजात्म स्वरूप के अज्ञान से विना दूसरा कोई कारण नहीं है। इसमें अल्पज्ञ होने से मुझको संशय होता है। कि संसार में जो अतिमूढ़ अनात्मदेह पुत्रादि में आसक्त हैं। और दूसरा जो त्रिगुण आत्मिक माया से परे सच्चिदानन्द ब्रह्म को प्राप्त हो गया है। यह दोनों ही सुख से जीते हैं क्योंकि संशय क्लेश न होने से। और जो पुरुष दोनों के बीच का है, सो दुःखरूप प्रपञ्च को विचार से त्यागने की इच्छा करता है परन्तु

निजानन्द ब्रह्मात्मज्ञान से बिना त्यागने को समर्थ नहीं है, वो दुःख पाता है। मैं आपकी कृपा से कृतार्थ हूँ क्यों कि मेरे को अनात्म प्रपञ्च की वास्तव सत्य प्रतीति नहीं है। बाधितानुवृत्ति की प्रतीति भी आपके संशय छेदी वाक्यों के विचार करने से निवृत्त हो जाएगी ॥ १ ॥

अ० १४ श्लो० २७

हसन्ति यस्याचरितं हि दुर्भगाः ।
स्वात्मन् रतस्याविदुषः समीहितम् ॥
यैर्वस्त्रमाल्याभरणानुलेपनै ।
श्वभोजनं स्वात्मतयोपलालितम् ॥ २ ॥

काम बाण से पीड़ित हुई वीर्य दान की याचना करती हुई दिती को कश्यप ऋषि संध्या काल में अनुचित जान कर कहते हैं, कि हे दिति इस संध्या काल में महादेव अपने गणों के सहित विचरते हैं। जिसके विषयासक्ति रहित शुद्ध चरित्रों को पुण्यात्मा बुद्धिमान् अविद्या पटल के नाशकी इच्छा वाले गाते हैं, नहीं है विद्वान् दूसरा बढ़कर जिससे तिस सर्वज्ञ आत्मरत शिव के लोक शिक्षारूप निर्दोष वैराग्य चरित्र अभिप्राय को न जानकर दुर्भाग्य नरकगामी जीव

हास करते हैं। कैसे दुर्भाग्य हैं जिन्होंने कुत्तों के भोजन देह को वस्त्र माला भूषण सुगन्ध लेपनादि से स्वात्म बुद्धि करके लालन पालन किया है दुर्भाग्य है। ब्रह्मादि देव भी जिस शिवकी विधान की मर्यादा को पालन करते हैं। तिस शिव के निरीक्षण संध्या काल में सर्व निन्दित कार्यों को त्यागकर ईश्वर चिन्तन ही कर्तव्य है॥ २॥

अ. २२ श्लो. १३

य उद्यतमनादृत्य कीनाशमभियाचते ।
क्षीयते तद्यशः स्फीतं मानश्चावज्ञया हतः ॥३॥

बिन्दुसरतीर्थ में जाकर मनुजी कर्दम ऋषि से प्रार्थना करते हैं। भो भगवन् नारदोक्त आपके शुभ गुणगण सुन कर मेरी पुत्री देवहूति आपमें ही प्रेम रखती है आप इस कन्या को स्वीकार करें क्यों कि स्वतःप्राप्त योग्य वस्तु का निष्काम पुरुषको भी निषेध करना उचित नहीं सकाम की तो वार्ता ही क्या है। जो पुरुष स्वतःप्राप्त हुई योग्य वस्तु का निरादर करता है फेर उसी वस्तु की कृपणजनों से याचना करता है। तिस याचक का प्रकाशमान यश नष्ट हो जाता है। और कृपणजनो से याचना करने पर तिनके तिरस्कार से मान भी नष्ट हो जाता है। जिसका सार्वधिक ब्रह्मचर्य

हो सो उपकुर्वाण होता है। सो आपका समाप्त हो चुका है। ऐसी मनुकी प्रार्थना से देवहूति को स्वीकार कर श्री कपिलदेव भगवान् को कर्दम ने पुत्र रूप से प्राप्त किया ॥ ३ ॥

अ० २३ श्लो० ५५-५६

सङ्गो यः संसृतेर्हेतुरसत्सु विहितो धिया ।
स एव साधुषु कृतो निःसङ्गत्वाय कल्पते ॥४॥
नेह यत्कर्म धर्माय न विरागाय कल्पते ।
न तीर्थ पद सेवायै जीवन्नपि मृतोहि सः ॥५॥

कर्दम ऋषि ने अपने योग बल से देवहूति को दिव्य भोग सुख दिखलाकर नौ कन्या के होने पर संन्यास की इच्छा प्रकट की। तब देवहूति आत्मवित् पति के असह्य वियोग दुखः को धैर्य विचार से दूर करती हुई शुद्ध चित्त से पश्चाताप करती है। कि विषय सुख के लिये मैंने आप का संग किया, तोभी असज्जन अज्ञानियों में जो संग होता है सो संसार का हेतु विधान किया है। सो ही संग सज्जन ज्ञानियों विषे यदि किया जाये सो मोक्षकारी ही होता है। तो आपका संग मेरे को कल्याण कारी ही है ॥ ४ ॥

इस मनुष्य देह में स्वभाव से भी किया हुआ जिसका कर्म, धर्म संपादन के लिये नहीं है। तिसमें भी निष्काम धर्म द्वारा विषयों से वैराग्य के लिये समर्थ नहीं है। और जो वैराग्य द्वारा पापहारी हरि पदतीर्थ सेवा के लिये समर्थ नहीं है सो प्राणी जीता हुआ भी मरे के समान है। यदि आत्मवित् मुक्ति दाता आपको प्राप्त होकर भी संसार बन्धन से मुक्त न हुई तो मैं निश्चित ही ईश्वर माया से वंचित (ठगी गई) ही हूँ। ऐसे वैराग्य युक्त शब्दों को सुनकर कर्दम ऋषि बोले हे मनु पुत्रि ! चिन्ता न करो हरि शीघ्र ही तुम्हारे औदर्य पुत्र होकर आत्म शिक्षा से तेरे अज्ञान बंधन को हरेंगे तिस ईश्वर को शुद्ध चित्तसे भजो ॥ ५ ॥

अ० २५ श्लो० ७-८-१३-१५-२०

निर्विण्णा नितरां भूमन्नसदिन्द्रिय तर्षणात्।
येन सम्भाव्यमानेन प्रपन्नान्धं तमः प्रभो ॥६॥
तस्य त्वं तमसोऽन्धस्य दुष्पारस्याद्यपारगम्।
सच्चक्षुर्जन्मनामन्ते लब्धं मे त्वदनुग्रहात् ॥७॥
योग आध्यात्मिकः पुंसां मतो निःश्रेयसाय मे।
अत्यन्तोपरतिर्यत्र दुःखस्य च सुखस्य च ॥ ८ ॥

चेतःखल्वस्य बन्धाय मुक्तये चात्मनोमतम् ।
गुणेषु सक्तं बन्धाय रतं वा पुंसि मुक्तये ॥ ९ ॥
प्रसङ्गमजरं पाशमात्मनः कवयो विदुः ।
स एव साधुषु कृतो मोक्ष द्वारमपावृतम् ॥ १० ॥

तत्व पारदर्शी कपिल भगवान् को देवहूति कहती है भो विभो ? दुष्ट इन्द्रियों की विषय अभिलाषा से विरक्त हुई मैं अति थकित हूँ । हे प्रभो ? जिन विषयों की अति वृद्धि पूर्वक प्राप्ति से अज्ञान रूप अन्ध तम को प्राप्त हुई हूँ ॥ ६ ॥

तिस दुष्पार अज्ञान अन्धतम के पारदर्शक पारकर्ता आज मेरे को श्रेष्ठ ज्ञान चक्षु आप लब्ध हुए हैं। आपकी कृपा से सर्व जन्मों के अन्तिम इस जन्म में यह आपका अलभ्य लाभ हुआ है ॥ ७ ॥

सब लोकों के अज्ञान अन्धतम के नाशक आप सूर्य उदय हुए हो। मैं आपकी शरण हूँ मुझको भवसागर पार करें। माता के ऐसे शब्दों को सुनकर भगवान् कपिल बोले हे मातः ! पुरुषों के मोक्ष के लिये ब्रह्मज्ञानरूप आत्मनिष्ट

योग ही मैंने माना है। जिस आत्मनिष्ठ योग के प्राप्त हुए संसारी दुःख मिश्रित सुखकी और जन्म मरणादि दुःख की अत्यन्त निवृत्ति हो जाती है ॥ ८ ॥

तिस आत्मज्ञान योग को मैं कहता हूँ, सो योग चित्त संयम के अधीन है। क्यों कि इस जीव प्राणी का चित्त ही निश्चित बन्ध के लिये तथा मोक्ष के लिये माना गया है। विषयों में सक्त चित्त बन्ध के लिये, और पूर्ण पुरुष सच्चिदानन्द में सक्त चित्त मोक्ष के लिये माना है। अहं-ममाभिमानादि कार्यों से मन मलिन होता है। अहं ममा-भिमानादि से रहित मन शुद्ध होता है ॥ ९ ॥

इस सब का मूल सत्संग है क्यों कि विषयों में अति राग ही जीव प्राणी को अजर पाश बन्धकारी है ऐसा वेद-वेत्ता ऋषि कहते हैं। जैसे विषयों में अति राग से संग किया जाता है, सो ही संग अति राग से यदि आत्म-स्थितसाधु महात्मा विषये किया जाय वो ऋषियों ने मोक्ष का खुला द्वार कहा है। सब पदार्थों में राग संग से रहित शान्त साधु कहे जाते हैं ॥ १० ॥

अ० २५ श्लो० २१-२२-४२-४३

तितिक्षवः कारुणिकाः सुहृदः सर्वदेहिनाम् ।
अजातशत्रवः शान्ताः साधवः साधु भूषणाः ॥ १ ॥

मय्यनन्येन भावेन भक्तिं कुर्वन्ति ये दृढाम् ।
मत्कृतेत्यक्तकर्माणस्त्यक्त स्वजनबान्धवाः ॥१२॥
मद्भयाद्वाति वातेऽयं सूर्यस्तपति मद्भयात् ।
वर्षतीन्द्रो दहत्यग्निर्मृत्युश्चरति मद्भयात् ॥ १३ ॥
ज्ञानवैराग्य युक्तेन भक्ति योगेन योगिनः ।
क्षेमाय पादमूलं मे प्रविशन्त्यकुतोभयम् ॥ १४ ।

शीतादि तितिक्षु दयालु सर्व प्राणियों के सुहृद शत्रु रहित सुशील स्वभाव भूषण युक्त, शास्त्रानुसार वर्तने वाले साधु होते हैं ॥ ११ ॥

मुझ ईश्वर में जो अनन्य चित्तसे दृढ़ भक्ति करने वाले। और मुझ सच्चिदानन्द की प्राप्ति के लिये त्याग दिये हैं सब कर्म जिन्होंने ऐसे प्रतिबन्धनकारी धनपुत्रदारादि त्यागशीलों को ही साधु कहा जाता है ॥ १२ ॥

भो मातः ! श्रुति उक्त मेरा ऐश्वर्य सुनो, मेरे भय से वह वायु बहती है । सूर्य तपता है, इन्द्र वर्षा करता है मृत्यु मेरे भय से प्राणियों के प्राण हरण के लिये भागता है ॥ १३ ॥

इस विचार से ब्रह्मात्म ऐक्य ज्ञान वैराग्य युक्त भक्ति योग से महात्मा मोक्ष के लिये कारण रूप मुझ सच्चिदानन्द

के पाद मूल में निर्भय होकर प्रवेश करते हैं। पुरुषों को इस लोक में इतना हीं कर्त्तव्य है कि मनको मुझ परमानन्द में तीव्र भक्ति योग से स्थिर कर देना ॥ १४ ॥

अ. २८ श्लो. २-३

स्वधर्माचरणं शक्त्या विधर्माच्च निवर्तनम् ।
दैवाल्लब्धेन संतोष आत्मविच्चरणार्चनम् ॥१५॥
ग्राम्यधर्म निवृत्तिश्च मोक्ष धर्मे रतिस्तथा ।
मितमेध्यादनं शश्वद्विविक्तक्षेमसेवनम् ॥ १६ ॥

धर्म अर्थ काम तथा भोगों से निवृति, मोक्ष धर्म विवेकवैराग्यादि में प्रीति, मित शुद्ध भोजन करना सदा निर्जन निर्बाधा स्थान में वास करना तथा अहिंसा, सत्य, अस्तेय, शरीरयात्रा निर्वाह से अधिक न लेना अपरिग्रह, ब्रह्मचर्यादि यम नियमों का भी सेवन करना ॥ १५ ॥

नित्य निज मोक्ष धर्मोंका यथा शक्ति आचरण करना, मोक्ष विरोधी धर्मों से निवृत होना, प्रारब्ध प्राप्त वस्तु से ही संतोष करना अद्वय ब्रह्मात्मवित् का चरणार्चन सत्संग सेवन करना सदा सत्शास्त्र विचारना, ॥ १६ ॥

अ० २८ श्लो० ४१-४२

भूतेन्द्रियान्तः करणात्प्रधानाज्जीवसंज्ञितात् ।
आत्मा तथा पृथग्द्रष्टा भगवान् ब्रह्म संज्ञितः ॥१७॥

सर्वं भूतेषु चात्मानं सर्वभूतानि चात्मनि ।
ईक्षेतानन्यभावेन भूतेष्विव तदात्मताम् ॥ १८ ॥

जैसे अग्नि स्वकार्य चिन्गारी धूमादि से न भिन्न हुई भी भिन्न है । तैसे ही भगवान् ब्रह्मनामक आत्मा अभिन्न हुआ भी पञ्चभूत, इन्द्रिय, अन्तः करण जीव से पृथग्दृष्टा है । प्रधान रूप मायादियों का प्रवर्तक पृथक् साक्षी रूप से दृष्टा है ॥ १७ ॥

हे मातः; अण्डजादि चतुर्विध भूत प्राणियों में सर्वं खल्विदं ब्रह्म इस श्रुति उक्त एक अद्वय आत्मा को अनन्य भाव से देखे । और आत्मा में सर्व भूत प्राणियों को देखे। जैसे स्थूल पंचभूतो में सूक्ष्म पञ्च महाभूत एक रूप से स्थित है । जैसे अग्नि एक हुआ भी स्वः कारण काष्ठ में नाना रंगों के कारण से नाना रंगोंवाला प्रतीत होता है। तैसे ही एकाद्वय ब्रह्मात्मा नाना रूपों से प्रतीत होता है । ऐसा निश्चयकारी विष्णु की माया शक्ति को विष्णु कृपा से जीतकर स्वात्म ब्रह्मस्वरूप से स्थिर होता है ॥ १८ ॥

अ० २९ श्लो० १७-१८-२२

महतां बहुमानेन दीनानामनुकम्पया ।
मैत्र्या चैवात्मतुल्येषु यमेन नियमेन च ॥ १९ ॥

आध्यात्मिकानुश्रवणान्नाम सङ्कीर्तनाच्च मे ।
आर्जवेनार्यसंगेन निरहङ्क्रियता तथा ॥ २० ॥
यो मां सर्वेषु भूतेषु सन्तमात्मानमीश्वरम् ।
हित्वार्चां भजेतमौढ्याद्भस्मन्येव जुहोति सः ॥२१॥

मनु पुत्री के भक्तिमार्ग पूछने पर कपिलदेवजी बोले कि हे मानवि ! मुझ सगुण ब्रह्म की तामसी राजसी सात्वकी भेदों से अपरा भेद भक्ति नाना प्रकार की है। और मुझ निर्गुण ब्रह्म की भेद रहित परा भक्ति अद्वैत ज्ञान स्वरूपा एक ही है। निर्गुण ज्ञान रूप पराभक्ति के साधन यह हैं, कि ब्रह्म निष्ठ महात्मा का बहुमान करने से, दीन दुःखियों पर दया करने से, अपने समान सुखीजनों में मैत्री करने से, अहिंसा, सत्यभाषणादि यम नियम योग के साधनों से ॥ १९ ॥

और अध्यात्म ब्रह्मविद्या रूप वेदान्त शास्त्र के श्रवण से, रामकृष्णादि मेरे नाम कीर्तन से, कपट रहित शुद्ध मन से श्रेष्ठ विद्वान् पुरुषों के संग से, अहंममादि अहंकार से रहित जैसे चित्त एकाग्र हो, तैसे साधन संपादन करे ॥२०॥

सो चित्त शुद्धि सब प्राणियों में एक आत्मदृष्टि से होती है। हे मातः ! जो पुरुष मुझ सर्व के आत्मा

परमेश्वर को सर्व भूत प्राणियों में व्यापक रूप से स्थित हुए को मूर्खता से त्याग रूप उपेक्षा कर मूर्ति सेवन करता है, सो जानो अग्नि को त्यागकर भस्म में आहूति देकर हवन करता है क्यों कि भेद दर्शी प्राणियों में वैर बद्ध जनका मन शान्ति को प्राप्त नहीं होता है ॥ २१ ॥

अ. २६ श्लो. २६-२७-३२

आत्मनश्च परस्यापि यःकरोत्यन्तरोदरम् ।
तस्य भिन्नदृशो मृत्युर्विदधे भयमुल्वणम् । २२ ॥
अथ मां सर्व भूतेषु भूतात्मानं कृतालयम् ।
अर्हयेदानमानाभ्यां मैत्र्या भिन्नेन चक्षुषा ॥२३॥
अर्थज्ञात्संशयच्छेत्ता ततः श्रेयान् स्वकर्मकृत् ।
मुक्तसङ्गस्ततो भूयानदोग्धा धर्ममात्मनः ॥२४॥

जो पुरुष जीवात्मा और पर ब्रह्म का अल्प भी अन्तर नाम भेद देखता है अर्थात् जीव ब्रह्म में भेद बुद्धि करता है। हे मातः ! तिस भिन्न दर्शी को मैं ईश्वर मृत्यु यम रूप होकर महा दारूण नरक यातना रूप भय को देता हूँ ॥२२॥

इस हेतु से सर्व भूतों में कृतालयको सर्व प्राणियों के स्वरूपभूत मुझ अन्तर्यामिको स्वागतादि दान मान सत्कारों

से तथा मैत्री आदि अभेद दृष्टि से सत्कार पूजा करे। अर्थात् सबको ईश्वर जानकर सत्कार करे॥ २३ ॥

क्यों कि दो पादवाले प्राणियों में मनुष्य श्रेष्ठ हैं। तिसमें चारवर्ण श्रेष्ठ है, तिनमें ब्राह्मण, तिन में वेद ज्ञाता तिनमें वेदार्थ ज्ञाता, तिससे विचार कर्ता संशय छेदक श्रेष्ठ है। तिससे स्वधर्म कर्म कर्ता, तिससे सर्व संग रहित निष्काम वीतराग मुझमें अभेद रूप से अर्पित कर दिये हैं अशेष क्रिया, फल, देह जिसने, तिस कर्ता पने के अभिमान हीन सब कर्म त्यागी ब्रह्मात्म एक समदर्शी से बढ़कर श्रेष्ठ हेमातः मैं किसी को नहीं देखता हूँ॥ २४ ॥

अ. ३० श्लो. १३-३३

एवं स्वभरणाकल्प तत्कलत्रादयस्तथा।
नाद्रियन्ते यथा पूर्वं कीनाशा इव गोजरम्॥२५॥
केवलेनह्यधर्मेण कुटुम्ब भरणोत्सुकः।
यातिजीवोऽन्धतामिस्त्रं चरमं तमसःपदम्॥२६॥

सांसारिक सुत दारादि में रागबद्ध पुरुषकी नीच से नीच गति को कपिल देवजी कहते हैं। कि हे मातः! जन्म से धनोपार्जन करके भी पूर्ति न कर वृद्धावस्था में ऐसी दशा वाला होता है। अपने निजके भी पालन में अशक्त नर

को तिसके पुत्र दारादि तब पूर्व के समान उसका आदर सत्कार नहीं करते हैं। जैसे कृषी करने वाले हल में जुतने वाले बैल के समान वृद्ध बैल का आदर नहीं करते हैं। तो भी वैराग्य न होने पर सुत दारादि से तिरस्कार पूर्वक दिये हुए अन्न को कुत्ते जैसे खाता है ॥२५॥ तब वृद्धावस्था में अतिकष्ट से मरकर कष्ट गती को को प्राप्त होता है क्यों कि केवल अधर्म अन्याय मार्ग से धनोपार्जन करके कुटुम्ब पालन में उद्यत हुआ जीव प्राणी अन्धतामिश्र नाम नरक के घोर तम दुःख रूप अन्तिम स्थान को प्राप्त होता है ॥२६॥

अ. ३१ श्लो. २०-२७-२८-२९-३०-४७

आरभ्य सप्तमान्मासाल्लब्धबोधोपि वेपतः ।
नैकत्रास्ते सूति वातैर्विष्ठा भूरिव सोदरः ॥२७॥
तुदन्त्यामत्वचं दंशा मशका मत्कुणादयः ।
रूदन्तं विगतज्ञानं कृमयः कृमिकं यथा ॥ २८ ॥
इत्येवं शैशवं भुक्त्वा दुःखं पौगण्डमेव च ।
अलब्धाभीप्सितोऽज्ञानादिद्धमन्युः शुचार्पितः ॥२९॥
सह देहेन मानेन वर्धमानेन मन्युना ।
करोति विग्रहं कामी कामिष्वन्ताय चात्मनः ॥३०॥

भूतैः पञ्चभिरारब्धे देहे देह्यबुधोऽसकृत् ।
अहं ममेत्यसद्ग्राहः करोति कुमतिर्मतिम् ॥ ३१ ॥
तस्मान्न कार्यः सन्त्रासो न कार्पण्यं न सम्भ्रमः ।
बुद्ध्वाजीवगतिं धीरो मुक्त सङ्गश्चरेदिह ॥ ३२ ॥

नाना पाप कर्मों के फल नाना नरक दुःखोंको भोगकर शुद्ध हुआ पुण्यलेश से मनुष्ययोनि पाता हैं। तहां भी गर्भवास के समान दुःख न भूतो न भावी असह्य दुःख भोगता है। जीव प्रवेश सात मास से लेकर पूर्व कर्म वश से सौ जन्म के ज्ञान वाला हुआ निज पापकर्म स्मरण कर कांपता है। प्रसूति-वायुओं से कम्पित हुआ गर्भाशय में गन्दे स्थान के सवा-सि विष्ठा कृमि के समान एक जगह स्थिर न हुआ भ्रमता है॥ २७ ॥ घोर गर्भ दुःख से निकलने के लिये प्रकृति पुरुष के नियंता पर ब्रह्म का स्मरण करता है। और बाहिर आने में वैष्णवी माया से डरता है। त्रिकालदर्शी होने से गर्भ में जीवका नाम ऋषि हैं कपिल देवजी बोले हे मातः ऐसे स्तुति करता हुआ प्रसूति वायु से प्रचलित किया विष्ठा कृमि के समान योनि से पीड़ित हुआ गिरता है। मूर्ख जनों से पालित हुए की गंदी खटिया में शयन करते की कोमल त्वचा को डांस, मच्छर, मत्कुणादि ऐसे काटते हैं

कि जैसे निश्चेष्टित कृमि को कृमि काटते हैं। तैसे ही गर्भ के नष्ठ त्रिकाल ज्ञान शिशु को रोते हुए को दंशादि काटते हैं ॥ २८ ॥ ऐसे दुःख में पञ्च वर्ष की शिशु अवस्था को भोगकर तिससे बाद यौवन से पूर्व पौगण्ड अवस्था के पर बस अध्ययनादि दुःखों को भोगता है। युवा अवस्था में इच्छा पूरी न होने से शोक युक्त अज्ञान से दीप्त क्रोध हुआ दुःख से दिन बिताता है ॥ २९ ॥ देह के साथ ही बढ़ते हुए अभिमान और क्रोध करके बलवान कामी लोगों के विषे अपने नाश के लिये विरोध करता है ॥ ३० ॥ अज्ञानान्ध प्राणि मिथ्या हठ वाला कुमति पञ्चभूत रचित देह में अहं बुद्धि और पुत्रदारादि में पुनः मम बुद्धि करता है ॥ ३१ ॥

सत्य शौच, दया, मौन, ब्रह्मविचार बुद्धि धन, लज्जा, कीर्ति, क्षमा, शम दम, उन्नति आदि सत्संग से प्राप्त शुभ गुणों को दुष्टों के संग से नाश करता है। आत्मा का अज्ञान से जन्म मरणादि मानकर सदा भय भीत रहता है। और विद्वान श्रेष्ठ महात्मा द्वारा सत्शास्त्र के विचार से अज्ञान भ्रम दूर होता है। क्यों कि स्थूल देह का लिङ्ग देहादि सम्बन्धी दर्शन होना ही जन्म है। स्थूल देहका लिङ्ग देहादि सम्बन्धी दर्शन न होना मरण है। जिस हेतु

से जीवात्मा में जन्म मरणादि वास्तव से नहीं हैं। तिस हेतु से जीवात्मा के जन्ममरणादि से भयत्रास करना विवेकी को योग्य नहीं है। और जीवन में दीनता भी करनी योग्य नहीं जीवन के प्रयत्न में भ्रान्त भी न होना चाहिये क्यों कि जीवकी अद्वय ब्रह्म प्राप्ति सच्चिदानन्द गति को ज्ञान से जानकर सर्व धन सुत दारादि का संग राग छोड़कर विवेकी जन असंङ्ग हुआ संसार में विचरे॥ ३२॥

अ. ३२ श्लो० ३३

ज्ञान योगश्च मन्निष्ठो नैर्गुण्यो भक्ति लक्षणः।
द्वयोरप्येक एवार्थो भगवच्छब्द लक्षणः॥ ३३॥

ज्ञान से और परा भक्ति से एक ही भगवान् ब्रह्म प्राप्त होता है। निर्गुण ज्ञानयोग और मन्निष्ठ परा अभेद भक्ति योग, तिन दोनों का एक ही अर्थ रूप ब्रह्म प्राप्ति फल है। क्यों कि भगवत् शब्दोपलक्षित ब्रह्म है। जैसे नाना रूप रसादि गुणों का आश्रय गुड़ क्षीरादि एक ही पदार्थ इन्द्रियों के नाना मार्ग भेद से नाना रूप प्रतीत होता है नेत्र से शुक्ल रूप रसना से मधुर रस, त्वचा से शीत स्पर्श इत्यादि रूप से एक ही दुग्ध पदार्थ प्रतीत होता है तैसे ही

ब्रह्मात्म स्वरूप भगवान् नाना शास्त्रों के मार्गों से एक ही प्राप्त होता है। भगवान् कपिल देवकी ऐसी ब्राह्मी शिक्षा से देवहूति ब्रह्मनिष्ठा हुई गेह देहादि का भान न होने पर परम पद को प्राप्त हो गई तिसका शरीर पवित्र कपिला नदी रूप को प्राप्त हो गया ॥ ३३ ॥

इति श्रीभागवतसाराबिन्दौ सारार्थदीपिका-
भाषाटीकायां तृतीयः स्कन्धः

卐 हरिः ॐ तत्सत् 卐

॥ अथ चतुर्थ स्कन्धः ४ ॥

अ० ४ श्लो० १३-२०

नाश्चर्यमेतद्यदसत्सु सर्वदा महद्विनिन्दाकुणपात्मवादिषु।
सेर्ष्यंमहापूरुषपादपांसुभिर्निरस्ततेजस्सु तदेवशोभनम्
॥ १ ॥

कर्मप्रवृत्तंचनिवृत्तमप्यृतंवेदेविविच्योभयलिङ्गमाश्रितम्
विरोधीतद्यौगपदैककर्त्तरि द्वयं तथाब्रह्मणिकर्मनच्छति
॥ २ ॥

सति, यज्ञ में रुद्र भाग को न देखकर दक्ष से तिरस्कृत हुई बोली कि हे द्विज! संसार में चार भांत के लोग होते हैं १ एक पर के गुणों में दोप देखते हैं, वे असाधु अधम होते हैं। एक गुणों को गुण और दोषों को दोष देखते हैं। वे महान् श्रेष्ठ पुरुष कहाते हैं। और जो केवल गुणों को ग्रहण करते हैं वे साधु श्रेष्ठ तर कहे जाते हैं और दोष ग्राही न हुए दोषों को भी गुण रूप देखने वाले साधु श्रेष्ठ तम कहे जाते हैं। तिन वशिष्ठों में आप दोप ग्राही हैं। दुर्जनों में शवसम जड़ देह को आत्मा कहने वालों में जो सर्वदा साधु महान् पुरुषों की निन्दा है सो आश्चर्य की बात

नहीं। किन्तु ईर्ष्यायुक्त दुर्जनों में महापुरुष पाद रज सेवी जनों से निरस्त तेज निन्दको में सो निन्दा भूषण रूप है। अशक्त जनों में महान जनों की निन्दा करना उचित ही है सज्जनों की निन्दा करना ही दुर्जनों का भूषण है ॥ १ ॥ ईश्वर निन्दक पिता से जन्य देहका मैं अब त्याग करती हूँ क्यों कि प्रवृत्ति रूप कर्म अग्निहोत्रादि, निवृत्ति शमदमादि सत्य हैं। वेद मेंविधान करे है। विवेचन से राग वैराग्य रूप दोनों चिन्ह अधिकारी भेद की व्यवस्थासे भिन्न स्थापित है। सो कर्म, वैराग्य, दोनों एक कर्त्ता में एक काल में करने में विरोध है। जैसे सरक्त को विरक्त के धर्म न करना दोष नहीं। और विरक्त को सरक्त के धर्म न करना दोष नहीं। तैसे शिवको दोनो कर्म न करना दोष नहीं तिस ब्रह्म रूप शिवमें किंचित भी प्रवृत्ति निवृत्ति रूप कर्म प्राप्त नहीं है। ईश्वर में तथा ब्रह्मनिष्ठ विरक्त पुरुषों में अपराधकारी शीघ्र ही कष्ट गति को प्राप्त होता है। तिस से जन्य पाप देहका त्याग ही उचित है शिव निन्दक दक्ष के यज्ञ में ब्रह्मा विष्णु न आए, शिव निन्दा का फल ब्रह्मा विष्णु का कोप और सयज्ञ दक्षका नाश हुआ। फिर ब्रह्मा महादेव के पास जाकर स्तुति करने लगे कि हे शिव। आप विश्वकी उत्पत्ति स्थिति लय कर्ता को मैं जानता हूं, आप कर्म बुद्धि भेद

बुद्धि से हत दक्षादि को न मारें ऐसी सदेव ब्रह्मा की स्तुति से सन्तुष्ट हुए शिवने दक्षादि सब को जीवित कर यज्ञ का आरम्भ कराने पर प्रगट हुए विष्णु सदेव दक्षादि के स्तवनों से सन्तुष्ट होकर कहते हैं ॥ २ ॥

अ. ७ श्लो० ५०-५२-५४

अहं ब्रह्मा च शर्वश्च जगतः कारणं परम् ।
आत्मेश्वर उपद्रष्टा स्वयंदृगविशेषणः ॥ ३ ॥
तस्मिन् ब्रह्मण्यद्वितीये केवले परमात्मने ।
ब्रह्म रुद्रो च भूतानि भेदेनाज्ञोऽनुपश्यति ॥ ४ ॥
त्रयाणामेक भावानां यो न पश्यति वै भिदाम् ।
सर्व भूतात्मनां ब्रह्मन् स शान्तिमधिगच्छति ॥ ५ ॥

हे दक्ष ! जो जगत् का कारण मैं विष्णु सर्वात्मा ईश्वर सर्व साक्षी स्वप्रकाश निरूपाधिक स्व रूप हूँ । सोही स्वरूप ब्रह्मा और शिव है किंचित भी भेद नहीं है । क्यों कि मैं पर ब्रह्म ही माया को आश्रय कर जगत् की उत्पत्ति स्थिति लय कर्ता हुआ ब्रह्मा विष्णु शिव नामों को धारण करता हूँ ॥ ३ ॥ तिस केवल परमात्मा अद्वितीय मुझ परब्रह्म में ब्रह्मा शिवको और भूत प्राणियों को देव हतबुद्धि अज्ञानी

जीव भेद बुद्धि से देखता है ॥ ४ ॥ और विवेकी जन अभेददर्शी होता है। जैसे पुरुष स्वाङ्ग शिर हाथ पादादि में ये दूसरे के हैं ऐसी भेद बुद्धि नहीं करता है। तैसे ही मुझ परायण जन सर्व भूतों में भेद नहीं करता है। ब्रह्मा-विष्णु शिव सर्व भूतों के आत्म स्वरूपों का तीनो एक स्वरूप वालों का जो विवेकी भेद नही देखता है। सो अभेद दर्शी शान्तिरूप कैवल्य मोक्ष को प्राप्त होता है। भेद द्रष्टा नहीं, ब्रह्मा विष्णु शिव इन तीनों में भेद बुद्धि न कर तीनों देवों को एक अद्वैत रूप से देखने का जो उपदेश है यह विष्णु की दक्षादि मुमुक्षुओं पर महान् कृपा है। क्यों कि शिवादि एक की निन्दा कर तीनों देवों में भेद बुद्धि से दक्षादि मुमुक्षु फिर संसार कष्ट गति को प्राप्त न हो जाए। इससे " द्वितीयाद्वै भयं भवति " इस श्रुति का अर्थ कह दिया। विष्णु शिवादि की एक अद्वैत रूपता श्रुतिस्मृति पुराणों के प्रमाणों से " पुरुषार्थ चतुष्टय ज्ञान प्रकाश " ग्रन्थ में कही है ॥ ५ ॥

अ० ८ श्लो० ८-६-१३-१५

जाये उत्तानपादस्य सुनीतिः सुरुचिस्तयोः ।
सुरुचिः प्रेयसी पत्युर्नेतरायत्सुतोध्रुवः ॥ ६ ॥

एकदा सुरूचेः पुत्रमङ्कमारोप्य लालयन् ।
उत्तमं नारुरुक्षन्तं ध्रुवं राजाभ्यनन्दत ॥ ७ ॥
तपसाऽऽराध्य पुरुषं तस्यैवानुग्रहेण मे ।
गर्भे त्वं साधयात्मानं यदीच्छसि नृपासनम् ॥ ८ ॥
तं निश्वसन्तं स्फुरिताधरोष्ठं सुनीतिरुत्सङ्ग उदूह्य बालम् ।
निशम्य तत्पौरमुखान्नितान्तं सा विव्यथे यद्गदितं सपत्न्या
॥ ९ ॥

राजा उत्तानपाद के सुनीति, सुरुचि दो रानी थी तिन दोनों में सुरूचि राजा को अति प्रिय थी। और ध्रुव की माता सुनीति राजा को प्रिय न थी ॥ ६ ॥ किसी काल में राजा सुरुचि के पुत्र उत्तम को गोद में लेकर लालन करते थे। तब राजा की गोद में बैठने की इच्छा वाले ध्रुव को देखकर राजा आनन्दित न हुआ अर्थात सुरुचि के भय से ध्रुव को गोद में न लिया ॥ ७ ॥ ऐसी दशा में ध्रुव को सुरुचि ने गर्व से कहा, हे बाल तप से ईश्वर को प्रसन्न कर तिस ईश्वर की कृपा से मेरे गर्भ में प्राप्त होने का यत्न कर यदि तुम्हें राजपुत्र के समान राजासन पर बैठने की इच्छा है। तुम यह नहीं जानते कि मैं राजस्त्री से अन्य स्त्री के गर्भ से जन्मा हूँ। ॥ ८ ॥ ऐसे सौतेली माता की कटु

दुरुक्ति से विद्ध हृदय ध्रुव देखते हुए मौन पिता को त्याग कर क्रोध से रोता हुआ सुनीति माता के पास गया। क्रुद्ध सर्प के समान श्वास लेते हुए कम्पित होठ युक्त ध्रुव बाल को सुनीति गोद में लेकर सुरुचि की जो मर्मवेधक दुरुक्ति तिसको पुरवासी के मुख से सुनकर सुनीति अति नितान्त दुःखी हुई। धैर्य को छोड़कर रोती हुई दीर्घ दुःखसागर का पार न देखती हुई ध्रुवको बोली ॥ ९ ॥

अ. ८ श्लो० २३-३०-३४-३५-३६

नान्यं ततः पद्मपलाशलोचनाद्दुःखच्छिदं ते मृगयामि कंचन। यो मृग्यते हस्तगृहीतपद्मया श्रियेतरैरङ्ग विमृग्यमाणया ॥१०॥

अथ मात्रोपदिष्टेन योगेनावरुरुत्ससि ।
यत्प्रसादं स वै पुंसां दुराराध्यो मतो मम ॥११॥

गुणाधिकान्मुदं लिप्सेदनुक्रोशं गुणाधमात् ।
मैत्रीं समानादन्विच्छेन्न तापैरभिभूयते ॥ १२ ॥

सोऽयं शमो भगवता सुखदुःखहतात्मनाम् ।
दर्शितः कृपया पुंसां दुर्दर्शोऽस्मद्विधैस्तु यः ॥१३॥

अथापि मेऽविनीतस्य चात्रं घोरमुपेयुषः ।
सुरुच्या दुर्वचोबाणैर्न भिन्ने श्रयते हृदि ॥ १४॥

हे पुत्र दूसरों में पापका अपराध लगाना योग्य नहीं परको दुःख देकर तिस दुःख को कालान्तर में स्वयं भोगता है। जो तुम्हारी सुरूचि माता ने कहा है कि यदि तुमको राजासन पर बैठने की इच्छा है तो तप से ईश्वर को प्रसन्न कर मेरे गर्भ से जन्म लें यह सत्य ही कहा है। क्यों कि जिस पूर्ण पुरुष का भेद रहित एक बुद्धि से आराधन कर तुम्हारे पितामह मनु भगवान् दूसरों को अप्राप्य जो सार्व भौमसुख उसको भोगकर मोक्ष को प्राप्त हो गये। हे पुत्र तिस कमल लोचन से भिन्न किसी को तेरे इस दुखःका का नाशक मैं खोजकर भी नहीं देखती हूँ। क्यों कि हाथ में गृहीत कमल वाली लक्ष्मी से भिन्न ब्रह्मादि से प्रार्थना पूर्वक खोजने योग्य लक्ष्मी तिस लक्ष्मी से खोजे जाते है जो विष्णु तिस परिपूर्ण को तुम खोजो, ऐसे चार पुरुषार्थों के प्राप्तिकारी माता के वचोंनं को सुनकर ध्रुव मन को वश कर पिता के पुर से निकल वन को चल दिये। मार्ग में जाते को देखकर नारदने कहा अहो क्षात्रतेज, माता कृत मान भङ्ग को भी नहीं सहसकते। हे वाल अभी तुमको

मानापमान मानना योग्य नहीं है और माने भी तो ईश्वरानुकूल बिना उधम सफल नहीं होते हैं। यदि माता के उपदिष्ट योग से तुम जिस विष्णु की प्रसन्नता प्राप्त करना चाहते हो। सो विष्णु वज्र हृदय दुराराध्य निश्चित ही पुरुषों को प्राप्त होना दुर्घट है। मुनि भी योग समाधियों कर के शीघ्र नहीं जान सकते ऐसा कठोर विष्णुमैंने माना है ॥ ११ ॥ हे बाल जीव प्रारब्ध के फल दुःखों को भोग कर अनुक्रम से शुभ साधनों करके मोक्षको प्राप्त होता है। शुभ गुण ग्राह्यता यह है कि गुणाधिक श्रेष्ठ जन से प्रीति कर सुखकारी गुण प्राप्त करना चाहे। गुणाधम के सम्बन्ध से कृपा करना ही चाहे तिरस्कार नहीं। स्वसमान जन से मैत्री करना चाहे स्पर्धा नहीं। ऐसा जन क्लेश तापों से युक्त नहीं हो सकता है ॥ १२ ॥ ध्रुव ने कहा भो भगवन्। जो आप पूज्यपाद ने कृपा करके संसारी सुख दुःखों से नष्ट चित्त वाले पुरुषों को मनका निरोध रूपशम दर्शाया है। सो यह शम हमारे जैसे विवेक हीनों करके दुर्दर्श है जानना अशक्य है ॥ १३ ॥ और हेतु से मुझे घोर क्षात्र स्वभाव प्राप्त अशिक्षित के सुरुचि के दुर्वचन बाणों से विदीर्ण हृदय में आपके अमृत रूप वचन स्थिर नहीं होवे हैं ॥ १४ ॥

अ० ८ श्लो० ३७-३८-४०-४१-५४

पदं त्रिभुवनोत्कृष्टं जिगीषोः साधु वर्त्म मे ।
ब्रूह्यस्मत्पितृभिर्ब्रह्मन्नन्यैरप्यनधिष्ठितम् ॥ १५ ॥
नूनं भवान्भगवतो योऽङ्गजः परमेष्ठिनः ।
वितुदन्नटते वीणां हितार्थं जगतोऽर्कवत् ॥ १६ ॥
जनन्याभिहितः पन्थाः स वै निःश्रेयसस्य ते ।
भगवान्वासुदेवस्तं भज तत्प्रवणात्मना ॥ १७ ॥
धर्मार्थकाममोक्षाख्यं य इच्छेच्छ्रेय आत्मनः ।
एकमेव हरेस्तत्र कारणं पाद सेवनम् ॥ १८ ॥
ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॥१९॥

तीन लोक में जो उच्च पद है जिसको आज तक अन्य किसी हमारे पूर्वजों ने प्राप्त नहीं किया है। तिस उच्च पद की प्राप्ति की इच्छा वाले मुझको आप ब्रह्म ऋषि तिस पदकी प्राप्ति का साधन कहो ॥ १५ ॥ क्यों कि आप निश्चित कल्याण कारी साक्षात् भगवत् ब्रह्मा के अङ्ग से उत्पन्न हुए हो। इस हेतु से आप सर्व जगत् के कल्याणार्थ वीणा को बजाते हुए सूर्य के समान सब के हितार्थ का प्रकाश करते हुए विचरते हो ॥ १६ ॥ ऐसे ध्रुव के सत्य

बचनों से प्रसन्न हुए नारदजी बोले जो मार्ग आपकी माता ने श्रेयकारी कहा है सो ही मार्ग आपके अभिलषित अर्थ का देने वाला है। वो मार्ग है, वो यह है। जो भगवान् सर्व का अधिष्ठान प्रकाशक वासुदेव है। तिसको एकरस प्रवाहित चित्त से भज ॥ १७ ॥ जो निजश्रेय का अभिलाषी है तिसको धर्मार्थ काम मोक्ष रूप चार पुरुषार्थों की प्राप्ति में कारण, एक पाप हारी हरि के पादपद्मों का सेवन ही कर्तव्य है ॥ १८ ॥ हे तातः ! यमुना तट पर पुण्य मधुवन में जहां नित्य ही हरि का वास है। तहां जाकर बिधी पूर्वक ॐ नमो भगवते वासुदेवाय " इस परम गोप्य मंत्र का जप करना इस मंत्र से हरि शीघ्र ही प्रसन्न होते हैं। तब देव ऋषि को परिक्रमा नमस्कारादि कर मथुरा में जाकर नारदोक्त विधि पूर्वक विष्णु का आराधन किया। छे मास से पूर्व ही वरदाता विष्णुने प्रसन्न होकर दर्शन दिया। तब ध्रुव ने विभो विष्णु का स्तवन किया कि भो विश्वकर्ता एक अद्वय अनादि अनन्त सच्चिदानन्द निर्विकार मैं आपकी शरणागत हूँ। विष्णुने कहा हे ध्रुव तुमारे न संकल्प करने पर भी मेरे भक्त के साथ द्रोह कारी सुरुचि उत्तम पुत्र के नष्ट होने पर दावाग्नि में प्रवेशकर दग्ध हो जाएगी ॥ १९ ॥

अ० ६ श्लो० २५-२६-३१-३४-३५

ततो गन्तासि मत्स्थानं सर्वलोक नमस्कृतम् ।
उपरिष्टादृषिभ्यस्त्वं यतो नावर्तते गतः ॥ २० ॥
मातुः सपत्न्या वाग्बाणैर्हृदिविद्धस्तु तान् स्मरन् ।
नैच्छन्मुक्तिपतेर्मुक्ति तस्मात्तापमुपेयिवान् ॥ २१ ॥
अहोबत ममानात्म्यं मन्दभाग्यस्य पश्यत ।
भवच्छिदः पादमूलं गत्वा याचे यदन्तवत् ॥ २२ ॥
मयैतत्प्रार्थितं व्यर्थं चिकित्सेव गतायुषि ।
प्रसाद्य जगदात्मानं तपसा दुष्प्रसादनम् ॥
भवच्छिदमयाचेऽहं भवं भाग्यविवर्जितः ॥ २३ ॥
स्वाराज्य यच्छतो मौढ्यान्मानो मे भिक्षितो बत ।
ईश्वरात्क्षीणपुण्येन फलीकारानिवाधनः ॥ २४ ॥

हे वत्स पितृदत्त राजपद को छत्तीस हजार वर्ष भोग कर तिसके बाद सर्व लोकों से नमस्कार करने योग्य ऋषियों के पद से उच्च मेरे ध्रुव स्थान को तुम प्राप्त होवोगे। जिस स्थान को प्राप्त हुआ फिर बहुत कल्पों तक संसार में नहीं आता है। ऐसा कहकर विष्णु सहधाम को चले गये। ध्रुव भी विष्णु से वर प्राप्तकर प्रसन्न न हुआ निजपुर को

चल दिया। विदुर ने मैत्रेय से पूछा कि ध्रुव दुर्लभ पद को हरि से प्राप्त कर पुरुषार्थ वेत्ता हुआ भी कैसे आपको अप्राप्त मनोरथ मानता था ॥ २० ॥ मैत्रेय ने कहा कि ध्रुव सुरुचि नाम सपत्नी माता के कटु वाक्य बाणों से विद्ध हृदयातिकटु वाक्यों का स्मरण करते हुए ने तिस मुक्ति दाता विष्णु से मोक्ष की इच्छा न करी तिस मोक्ष अप्राप्ति के कारण से ताप युक्त हुआ ध्रुव यह पश्चाताप करता है कि जिस पद को बहु जन्मों से समाधि करके सनत्कुमारादि न पासके तिस पद को छे मास करके ही मैं प्राप्त हो गया हूँ। परन्तु विष्णु में भेद बुद्धि वाला हुआ परमानन्द मोक्ष से वंचित ही रहा ॥ २१ ॥ हा कष्ट है अहो ! मुझ मन्द भाग्य की आत्मज्ञान हीनता देखो। जो मुक्ति दाता भव छेदक विष्णु के पाद मूलको प्राप्त होकर भी नाशवान्- नाम मात्र का ध्रुव ऐसे स्थान की मैंने याचना करी। अहो पतनकारी देवों ने मेरी बुद्धि दूषित करदी। जो द्वैत न होने पर भी अज्ञान शोक से हत बुद्धि मुझ ने मिथ्या भ्राता मातादि ही शत्रु मान लिया ॥ २२ ॥ तप करके चराचर जगत् के आत्मा विष्णु दुष्प्रसाद्य भव नाशक को प्रसन्न कर फिर दुःखकारी ध्रुव लोक संसार को ही मैं भाग्य हीन ने मांगा॥ मैंने यह याचना ऐसे व्यर्थ की है कि जैसे कोई नष्ट आयु

होने पर चिकित्सा कराने की याचना करता है ॥ २३ ॥

अहो खेद है निज परमानन्द के साथ अभेद रूप तादात्म्य स्वाराज्य को देने वाले विष्णु से मैंने मूर्खता से दुर्गति-कारी मानहंकार की भिक्षा मांगी। जैसे किसी पुण्य हीन निर्धन भठियारे ने प्रसन्न हुए चक्रवर्तिराजा से भाड़ के लिये धानों का भुस्सा मांगा अथवा तुष सहित तंडुल कण मागें। अर्थात मोक्ष की अपेक्षा से ध्रुवलोक भुस्से के समान है। इस कारण से ध्रुव ने अपने को अलब्ध मनोरथ माना है ऐसा मैत्रेय ने विदुर से कहा है ॥ २४ ॥

अ० १२ श्लो० १५

मन्यमानमिदं विश्वं मायारचितमात्मनि ।
अविद्यारचित स्वप्न गन्धर्वनगरोपमम् ॥ २५ ॥

ध्रुव छत्तीसहजार वर्ष चक्रवर्ती राज्य सुख भोग कर धर्म अर्थ काम के साधक राज्य को पुत्र के ताईं देकर संसार को ऐसे मान लिया कि जैसे मेरी अविद्या रचित स्वप्न के पदार्थ गन्धर्वनगरादि मिथ्या कल्पित है। तैसे ही यह देहादि सब प्रपञ्च विष्णु की माया से रचित मेरे स्वात्मा में मिथ्या ही कल्पित है। ऐसे मानता हुआ स्त्री पुत्र धनादि चक्रवर्ती

राज्य को तुच्छ विनश्वर जानकर विरक्त निर्मान मोह होकर बदरिकाश्रम को चला गया ॥ २५ ॥

॥ इति ध्रुवाख्यान समाप्त ॥

अ० १३ श्लो० ४६

कदपत्यं वरं मन्ये सदपत्याच्छुचां पदात् ।
निर्विद्येत गृहान्मर्त्यो यत्क्लेशनिवहा गृहाः ॥२६॥

राजा अंग, दुष्ट पुत्र वेन के दुःख से दुःखी हुआ वैराग्य के वचन कहता है कि श्रेष्ठाचारी आज्ञाकारी पुत्र से न आज्ञाकारी दुष्ट पुत्र को मैं श्रेष्ठ मानता हूं। क्यों कि श्रेष्ठ पुत्र के वियोगादि में पिता को अतिकष्ट होता है। आज्ञाकारी श्रेष्ठ पुत्र श्रीरामचन्द्रजी के वियोग से दशरथका मरण ही हुआ इस हेतु से श्रेष्ठ पुत्र शोक दुःखों का घर ही है। और क्लेश कारी दुष्ट पुत्र के कारण से पिता को सब धन गृहादि दुःखों का घर ही दिखते हैं। तब क्लेश कारी गृह से पुरुष मुक्तिकारी वैराग्य को प्राप्त होता है। ऐसे विचार से अज्ञन्ध निद्रा पुत्रदारादि से अज्ञात अर्ध रात्रि में राजा अंग विरक्त होकर गृह से चल दिया। आज कल के पुत्रों को पिता स्वयं विचार कर देखें,वेन सम हैं या

नहीं परन्तु पुण्य वैराग्य हीन पिता भी क्या राजा अंग की गति के भागी हो सकते हैं ॥ २६ ॥

अ० १५ श्लो० २६

वयंत्वविदिता लोके सूनाद्यापि वरीमभिः ।
कर्मभिः कथमात्मानं गापयिष्याम बालवत् ॥२७॥

अंग राजा के विरक्त हो चले जाने पर ऋषियों ने राजाहीन प्रजामें अधर्म बुद्धि के भय से अंग के पुत्र वेन को राजा कर दिया । तब वेन को प्रजा पीड़ा कारी दुष्ट जानकर ईश्वर निन्दक को ऋषियों ने "हूँ" शब्द से नष्ट कर दिया । फिर चोर दस्युओं से पीड़ित हुई राजा हीन प्रजाको देख कर ऋषियों ने मरे हुए हुए वेन के देह से पृथुराजा को प्रकट किया । तब तिस राजा पृथु का सूत वन्दी जन स्तवन करने लगे । राजा ने कहा कि हे सूत वन्दी जनों :यदि श्रेष्ठ उदार गुणवान् पुरुष भी अपनी स्तुति को निन्दा रूप जानते हैं । हम तो श्रेष्ठ कर्मो करके आज वर्तमान काल के लोकों में ज्ञात रूप से प्रसिद्ध नहीं हैं । हम अपने अप्रसिद्ध गुणों को कैसे सूतवन्दी जनो से गायन करवा कर बालकों के समान सुने । श्रेष्ठ जन अपनी स्तुति दूसरे की निन्दा सुनना नहीं चाहते ॥ २७ ॥

अ० १६ श्लो० १३

नादण्ड्यं दण्डयत्येष सुतमात्मद्विषामपि ।
दण्डयत्यात्मजमपि दण्ड्यं धर्मं पथे स्थितः ॥२८॥

पृथु राजा धर्म पथ में स्थित हुए अपने शत्रुओं के पुत्र को भी दण्ड अयोग्य को दण्ड नहीं देते हैं। और दण्ड योग्य अपने पुत्र को भी दण्ड देते हैं। ऐसे राजा स्वयं मोक्ष के भागी हुए प्रजाको भी शुभ शिक्षा से मोक्ष का भागी कर देते हैं॥ २८ ॥

अ० २१ श्लो० २४

य उद्धरेत्करं राजा प्रजा धर्मेष्वशिक्षयन् ।
प्रजानां शमलं भुङ्क्ते भगं च स्वं जहाति स ॥२९॥

राजा पृथु वेद विहित कर्म कारी सभा में ऋषि महात्माओं से कहते हैं कि धर्म ज्ञान की जिज्ञासा वालों को महात्माओं की सभा में स्वचित्ताभिलाषो ज्ञातव्य वार्ता कहनी चाहिये। जिससे सबका उपकार हो सो मैं कहना चाहता हूँ। आज मुझको धर्म कर्म तथा प्रजा रक्षण में ऋषि महात्माओं ने नियुक्त किया है आप वेदवादी महात्मा जिस-कर्तव्य से मुझको सर्व कामना पूर्णकारी लोक प्राप्त हो, और ईश्वर की तुष्टी हो सो कर्तव्य मुझको कहो। अन्यथा

शास्त्रानुसार प्रजा पालन न करने से राजा को घोर नरक प्राप्त होता है। जो राजा प्रजा को स्व स्व धर्म विषे शिक्षा न करता हुआ केवल कर ही लेता है। सो राजा केवल प्रजा के पाप को लेकर कष्ट भोगता है। प्रजा का पालन त्यागकर जानो राजा स्व पुण्य प्राप्त ऐश्वर्य का ही नाश करता है। इससे हे प्रजा मेरे परलोक हित आप सब स्व स्व धर्म पालन करे और ऋषि महात्मा इसका अनुमोदन करें ॥ २६ ॥

अ० २२ श्लो० १३-१४-२१-२६

कच्चिद्वः कुशलं नाथा इन्द्रियार्थार्थवेदिनाम् ।
व्यसनावाप एतस्मिन्पतितानां स्वकर्मभिः ॥३०॥
भवत्सु कुशलप्रश्न आत्मारामेषु नेष्यते ।
कुशलाकुशला यत्र न सन्ति मतिवृत्तयः ॥३१॥

शास्त्रेष्वियानेव सुनिश्चितो नृणां क्षेमस्य सध्र्यग्विमृशेषु हेतुः। असङ्ग आत्मव्यतिरिक्त आत्मनि दृढा रतिर्ब्रह्मणि निर्गुणे च या ॥३२॥

यदा रतिर्ब्रह्मणि नैष्ठिकी पुमानाचार्यवाञ्ज्ञानविरागरंहसा,
दहत्यवीर्यं हृदयं जीवकोशं पञ्चात्मकं योनिमिवोत्थितोऽग्निः ॥३३॥

तब पृथु राजा के धार्मिक सुभाषण का प्रजा ऋषि महात्माओं करके अनुमोदन साधुवाद करने काल में पृथु के शुभ गुणों से वशीभूत हुए सनत्कुमारादि वीतराग ब्रह्मा के पुत्र आकाश मार्ग से राजा की सभा में आए तब राजाने यथा योग्य स्वागत पूजादि करके पूछा कि भो आत्मरामा विद्या भूषणों। स्वकर्म करके इसभव कूप में पतितों का व्यसनों को प्राप्त हुए विषयों को ही पुरुषार्थ जानने वालों का हमारा भी क्या कुशल हो सकता है ॥ ३० ॥ यदि कहे अभ्यागतों का लोक में कुशल पूछा जाता है अपना नहीं तब राजाने कहा कि आत्माराम पूर्ण कामों के विषे तो कुशलता का प्रश्न करना ही हमारे को योग्य नहीं है। क्यों कि जिन आप परमानन्द अद्वैत निष्ठ पूर्ण कामों में कुशल अकुशलादि भेद बुद्धियों का सद्भाव नहीं है। इस हेतु से आप संतप्तों के सुहृदों से सर्व के आत्मभूतों से हम पूछते हैं। कि इस संसार में हमारा किस मार्ग से कल्याण होगा सो आप कहें ॥ ३१ ॥ ऐसे राजा के प्रश्न से प्रसन्न हुए सनत्कुमारादि कहते हैं कि हे राजन् ! सम्यक विचार करने पर निश्चित सब शास्त्रों में पुरुषों को कैवल्य मोक्ष का हेतु इतना कहा है कि आत्मा से भिन्न देह पुत्रदारादि में संग रहित विरक्त होना। और निर्गुण परमानन्दाद्वयब्रह्म-

त्मास्वरूप में दृढ़ प्रीति होना ॥ ३२ ॥ जिस अवस्था में सत् असत् वस्तु विवेक आत्मिक ज्ञान वैराग्य के पूर्ण वेग से ब्रह्मात्मस्वरूप में दृढ़ प्रीति होती है। तब ब्रह्मनिष्ठ ब्रह्म श्रोत्रिय गुरु से शिक्षित पुरुष निर्वासना हुआ अन्नमय, प्राणमय, मनोमय, विज्ञानमय आनन्दमय, आत्मरूप के आवरक पञ्च कोषों को दाह कर देता है। और अविद्यास्मिता राग द्वेषाभिनिवेष इन पञ्च क्लेशों को दाह कर देता है। जैसे काष्ठ से उत्पन्न हुआ अग्नि समस्त काष्ठ को दाह कर देता है। और लोक में जैसे जलादि उपाधि के होने पर पुरुष निज बिम्ब और प्रति बिम्ब को भेद रूप से देखता है। जलादि उपाधि न होने पर निज एक आपको ही देखता है। तैसे एक निजआत्माको देखता है ॥ ३२ ॥

अ. २२ श्लो. ३३-३४-३५-४४-४५

अर्थेन्द्रियार्थाभिध्यानं सर्वार्थापह्नवो नृणाम् ।
भ्रंशितो ज्ञानविज्ञानाद्येनाविशति मुख्यताम् ॥३४॥
न कुर्यात्कर्हिचित्सङ्गं तमस्तीव्रं तितीरिषुः ।
धर्मार्थकाममोक्षाणां यदत्यन्तविघातकम् ॥३५॥
तत्रापि मोक्ष एवार्थ आत्यन्तिकतयेष्यते ।
त्रैवर्ग्योऽर्थो यतो नित्यं कृतान्तभयसंयुतः ॥३६॥

प्राणा दाराः सुतान्ब्रह्मन् गृहाश्च सपरिच्छदाः ।
राज्यं बलं मही कोश इति सर्वं निवेदितम् ॥३७॥
सैनापत्यं च राज्यं च दण्डनेतृत्वमेव च ।
सर्वलोकाधिपत्यं च वेदशास्त्रविदर्हति ॥ ३८ ॥

इन्द्रियों के विषयों का जो चिन्तन है सो पुरुषों के चार पुरुषार्थों का नाशक है । क्यों कि इन्द्रियों के विषय चिन्तन करके शास्त्र ज्ञान आत्म ज्ञान से अथवा परोक्षा परोक्ष दोनों ज्ञानों से भ्रष्ट हुआ जन्तु स्थावर योनि को प्राप्त होता है ॥३४॥ अनात्म वस्तु में रति से अनर्थ की प्राप्ति कही । अब सनत्कुमारादि पृथुराजा के प्रति अनर्थकारी सङ्ग को कहते हैं । हे राजन ! जो पुरुष घोर संसार तम से पार होने की इच्छा वाला है, वो धर्मादिचार पुरुषार्थों का अति घातक जो दुर्जनों का सङ्ग है । सो सङ्ग कभी न करे ॥३५॥ अब चार पुरुषार्थों में साम्यता की भ्रांति को दूर करते हैं । कि तिन धर्मार्थ, काम, मोक्ष रूप चार पुरुषार्थों में मोक्ष पुरूपार्थ पुरूप को अति अभिलषित है क्यों कि जिस हेतु से धर्मार्थ काम यह तीनों पुरुषार्थ अनित्य है, काल के भय युक्त हैं। इस हेतु से हे नरेन्द्र तिस स्थावर जंगम के प्रकाशक को तुम ऐसे जानों कि सो व्यापी परमानन्द मैं हूँ ॥३६॥ तब राजा

पृथु ने कहा कि आप पूज्यपाद दयालुने मुझको मोक्ष पथ में प्राप्त कर दिया हैं मेरी जो विभूति है सो सब आप साधु पुरुषों की ही उच्छिष्ट है तो मैं स्वदेह के साथ आप आत्माराम पूर्ण कामों को क्या देऊं भो ब्रह्मविद्वरिष्ठों ! मेरे प्राण दारा, पुत्र, वस्तुगृह, राज्य, सेना, भूमि, कोश सर्व ही आप पूज्य पादों के चरणों में निवेदित है ॥ ३७ ॥ क्योंकि सैनापत्य, सर्व लोकों का राज्य, दण्ड देने का अधिकार, सर्व लोकों का आधिपत्य स्वामित्व, सर्व ही वेदशास्त्र वेत्ता ब्रह्म ज्ञानियों के लिये ही योग्य है। अज्ञानी अशास्त्रियों के योग्य नहीं है। इस प्रकार राजा से पूजित हुए सनत्कुमारादि पृथु राजा की प्रशंसा करते हुए आकाश मार्ग से चले गये ॥ ३८ ॥

अ० २३ श्लो. २८

सवञ्चितोवतात्मध्रुक् कृच्छ्रेण महता भुवि ।
लब्ध्वापवर्ग्यं मानुष्यं विषयेषु विषज्जते ॥ ३९ ॥

अहो कष्ट है वो पुरुष संसार में सब पुरुषार्थों से वञ्चित है और वो ही आत्म द्रोही है जो भारत वर्ष भूमि में महान् कष्टों से मोक्षकारी मनुष्य जन्म को लेकर नाशवान् दुःखरूप विषयों में रागबद्ध है पृथु राजा का आख्यान-

श्रोता, विचार कर्ताओं को चार पुरुषार्थों का प्रापक है। नित्य विचारणीय है ॥ ३६ ॥

अ० २६ श्लो० ४८ ६६ ७२

स्वं लोकं न विदुस्ते वै यत्र देवो जनार्दनः ।
आहुर्धूम्रधियो वेदं सकर्मकमतद्विदः ॥ ४० ॥
मन एव मनुष्यस्य पूर्वरूपाणि शंसति ।
भविष्यतश्च भद्रं ते तथैव नभविष्यतः ॥ ४१ ॥
अर्थे ह्यविद्यमानेऽपि संसृतिर्न निवर्तते ।
ध्यायतो विषयानस्य स्वप्नेऽनर्थागमो यथा ॥४२॥

नारद, कर्म आसक्त प्राचीनबर्हि राजा को ब्रह्मात्मस्वरूप पोषक पुरंजनाख्यान सुनाते हुए तत् त्वं पदार्थ की एकता कहते हैं कि देह पुत्रादि में अहं मम बुद्धि से बद्ध जीव को ईश्वर ने कहा कि यह जगत माया कल्पित मिथ्या है। तत् पद का लक्ष्यार्थ जो मैं हूँ सो ही त्वं पद का लक्ष्यार्थ तुम हो. जीव ईश्वर अपने दोनों में किंचित भी भेद नहीं है। ऐसा वेदविद् ब्रह्मात्म ज्ञाता कहते हैं। अज्ञानी भेदवादि को नारदजी कहते हैं कि हे धूम्र युक्त कर्म फल में आसक्त मन्द बुद्धिवाले जो वेदों को कर्म परक कहते हैं, वे

वेद अर्थ ज्ञाता नहीं हैं। क्यों कि वे निज स्वरूप आत्मतत्व रूप लोक को वेद के तात्पर्य गोचर को नहीं जानते हैं। जिस ज्ञानावस्था में प्रकाशरूप जनार्दन स्थित है वो ही कर्म है जिस से हरि तुष्ट हो। विद्या सो ही है जिससे सच्चिदानन्द हरि ब्रह्म में बुद्धि की स्थिति हो ॥ ४० ॥ वर्तमान काल में पुरुष मन की वृत्तियों से भूत भावि पुण्यपापों के निमित्त से उत्तम नीच योनियों वाले शरीर जाने जाते हैं। क्यों कि मन ही शुभाशुभाचरणों से पुरुष के उच्च नीच भाव को सूचित कर देता है। वर्तमान के शास्त्रादि शुभविचारों से भूत भावी के पुण्य शरीर ज्ञात हो जाते हैं। शास्त्र विचार हीन पापाचरणों से भूतभावी के पाप शरीर जाने जाते हैं। वर्तमान मन की उदार कृपणतादि वृत्तियों से भूत भावी जन्मों की उदार कृपणता जानी जाती है। तुम्हारा कल्याण होगा, अथवा पापाचरणों को देखकर कल्याण न होगा ऐसा जाना जाता है। ॥ ४१ ॥ देह में अहंताभिमान के नाश से बिना, संसार के पदार्थ वास्तव सत्य न होने पर भी जन्म मरण रूप संसार की निवृत्ति नहीं होती है। विषयों के चिन्तन करने वाले पुरुष को जैसे स्वप्न में पदार्थों के सत्य न होने पर भी अनर्थागम दुःख प्राप्त होता है। तिस अज्ञान सहित प्रपञ्च की निवृत्ति के लिये जगत् की उत्पत्तिलयादि कर्ता सच्चिदानन्द हरि को भज ॥ ४२ ॥

अ० ३१ श्लो० १७— यथा नभस्यभ्रतमःप्रकाशा, भवन्ति भूपा नभवन्त्यनुक्रमात् । एवं परे ब्रह्मणि शक्तयस्त्वमू, रजस्तमःसत्त्वमिति प्रवाहः ॥४३॥

राजा प्रचेतस ने नारद से पूछा कि हे देवर्षि महादेव उपदिष्ट ब्रह्मज्ञान हम भूल गये हैं। सो आप कहें कि असंग ब्रह्म में जगत् की उत्पति स्थिति लय कैसे हो सकता है तब नारद ने कहा कि हे भूपों ! जैसे आकाश में मेघ, रज, सूर्यादि प्रकाश आगमापायि है अनुक्रम से कभी होते हैं। कभी नहीं होते। तैसे ही सच्चिदानन्द परब्रह्म में राजसी, तामसी सात्वकी ब्रह्मादि शक्तिये कभी प्रकट होती हैं कभी लय होती है। ऐसे पर ब्रह्म में रजो, तम, सत्वत्रिगुणमय जगत् का प्रवाह आगमापायी है। तिस सर्व भूतात्मा हरि को अपने आत्मा से एक अभेद रूप से ज्ञान कर भजो ऐसे ऋषि के उपदेश से प्रचेतसा विरक्त हुए अद्वय ब्रह्मात्म निष्ठ हो गये ॥ ४३ ॥

मनोव्याधे श्चिकित्सार्थमुपायं कथयामिते ।
यद्यत्स्वाभिमतं वस्तु तत्यजन्मोक्षमश्नुते ॥
स्वायत्तमेकान्तहितं स्वेप्सित त्यागवेदनम् ।
यस्य दुष्करतां यातं धिक्तं पुरुषकीटकम् ॥

इति श्रीभागवतसाराबिन्दौ सारार्थदीपिका-
भाषाटीकायां चतुर्थः स्कन्धः

॥ अथ पञ्चम स्कन्धः ५ ॥

अ० ५ श्लो० १–२-६-१५

नायं देहो देहभाजां नृलोके कष्टान्कामानर्हते-
विड्भुजां ये । तपो दिव्यं पुत्रका येन सत्त्वं शुद्ध्ये·
द्यस्माद्ब्रह्मसौख्यं त्वनन्तम् ॥ १ ॥

महत्सेवां द्वारमाहुर्विमुक्तेस्तमोद्वारं योषितां सङ्गि-
सङ्गम् । महान्तस्ते समचित्ताः प्रशान्ता विमन्यवः
सुहृदः साधवो ये ॥ २ ॥

एवं मनः कर्मवशं प्रयुङ्क्ते अविद्ययात्मन्युपधीयमाने
प्रीतिर्न यावन्मयि वासुदेवे न मुच्यते देहयोगेन-
तावत् ॥ ३ ॥

पुत्रांश्च शिष्यांश्च नृपो गुरुर्वा मल्लोककामो-
मदनुग्रहार्थः । इत्थं विमन्युरनुशिष्यादतज्ज्ञान्न·
योजयेत्कर्मसु कर्ममूढान् । कं योजयन्मनुजोऽर्थं-
लभते निपातयन्नष्टदृशं हि गर्ते ॥ ४ ॥

ऋषभदेवजी विरक्त होकर भी पुनः ब्रह्मावर्त में जाकर ब्रह्म ऋषियों की सभा में सब प्रजा के सामने मोक्ष धर्मादि शिक्षा में शिक्षित भरतादि निज पुत्रों को फिर शिक्षा देते

हैं। कि हे पुत्रों ! इस मनुष्य लोक में सब देह धारियों में जो मनुष्य देह है सो श्वान शूकरादि को भी होने वाले दुःख कारी विषय भोगों के लिये नहीं है। किन्तु जिन उत्कृष्ट तप विचारों से अन्तः करण शुद्ध होए तिससे अद्वय ब्रह्मात्म ज्ञान द्वारा अनन्त ब्रह्म सुख होता है। इस ब्रह्म सुख के लिये ही मनुष्य देह होता है॥ १ ॥ मोक्ष और बन्ध के कारण कहते हैं। ब्रह्मवेत्ता वीतराग महात्माओं की सेवा को शास्त्रों मे मोक्ष का द्वार कहा है। और स्त्रियोंके संगी पुरुष के संग को नरक का द्वार कहा है। महात्मा का लक्षण यह है कि राग द्वेष रहित सब में समचित्त शान्त स्वभाव क्रोध रहित होना सर्व के सुहृद श्रेष्ठाचारी होना सब को त्यागकर मुझ इश्वर में सुहृदता करना ही पुरुषार्थ है जिनों का, देह पोषक जीविका कारी जनो में और गृह पुत्र स्त्री धन मित्रादि यावत् लोक के पदार्थों में प्रीति रहित जो है वे देह निर्वाहाधिक स्पृहा शून्य महात्मा कहे जाते हैं॥ २ ॥ पूर्व जन्म कृत कर्म वाला मनही उत्तर जन्म में संसारी कर्मों के वशीभूत कर जीव को कर्मों में जोड़ देता है। तब अविद्या से आत्मस्वरूप का आच्छादन होने पर जबतक मुझ अधिष्ठान वासुदेव में अनन्य प्रीति न होए तब तक मनसे कर्म वश करा हुआ पुरूष देहादिबन्धों से मुक्त नहीं होता है ॥३॥ इस हेतु से

देहपात पर्यन्त देह गेह स्त्री पुत्र धनादि में अहंममादि को त्याग कर ब्रह्मात्म स्वरूप का चिन्तन करे। ऐसे पुत्रों को पिता, शिष्यों को गुरू, प्रजा को राजा शिक्षा करे जिसको मुमुक्षु ईश्वर के लोक की कामना हो। अथवा मोक्षकारी मुमुक्षु ईश्वरानुग्रह की प्रीति अर्थ ऐसे अक्रोध हो पुनः पुनः शिक्षा करे। सकाम कर्म युक्त मूढ़ पुरुषों को ब्रह्मात्मतत्त्व ज्ञान हीनो को श्रेय बुद्धि से कर्मों में न जोडे। आत्मबोधकारी शिक्षा से अन्यथोपदेश से पाप होता है। पुरुष को काम्य कर्मों में जोड़ कर संसार कूप में पतन कर किस पुरुषार्थ को प्राप्त होगा। जैसे अन्धे को गर्त में डालने वाला पाप को प्राप्त होता है। तैसे पाप का ही भागी होगा जो नर स्वयं मोक्ष मार्ग में अन्ध होता है सो कुबुद्धि जन को मोक्ष मार्ग से पतन कर कर्म रूप संसार गर्त में डालता है। तुच्छ विषय सुख के अर्थ महान् संसार दुर्गति की प्राप्ति को मूढ़ नहीं जानता है॥ ४॥ जो संसार में जन्म मरण से मुक्त होने का पथ प्रदर्शक न हो वे गुरू, स्वजन, माता, पिता, देवता, पति राजादि पूज्य माननीय नहीं होते हैं। पूजनीय ब्राह्मण वेदज्ञाता, सत्त्वगुण प्रधान, शम, दम, सत्य कृपालु, तप, तितिक्षा, आत्मज्ञानी मुमुक्षु ईश्वरसे भी जिनको किंचित प्रार्थनीय नहीं है, तो राजों से क्या होना था, इन गुणोंसे जो युक्त है सो

मुझ ईश्वर का ही रूप है। तिनका जो पूजन है सो मुझ ईश्वर का ही पूजन है। भरतादि पुत्रों को धर्म पूर्वक प्रजा पालन की शिक्षा देकर। महामुनियों के भक्ति ज्ञान वैराग्य रूप पारमहंस्य धर्म की शिक्षा देने के लिये जेष्ठपुत्र भरत को राज्य देकर सर्व से विरक्त हुए ब्रह्मावर्त से निर्मान मोह एक कौपीन मात्र युक्त हो चल दिये दक्षिण देश में अवधूत वेश गो मृगादिचर्यया से भ्रमण करते हुए ऋषभदेव अद्भुत चरित्र नग्न अत्याश्रमी जीवन्मुक्त होकर विचरते थे ॥ ५ ॥

अ० १० श्लो० १०-१२-१३

स्थौल्यं कार्श्यं व्याधय आधयश्च क्षुत्तृड् भयं कलिरिच्छा जरा च। निद्रा रतिर्मन्युरहंमदः शुचो देहेन जातस्य हि मे न सन्ति ॥ ५ ॥

विशेष बुद्धिर्विवरं मनाक् च पश्याम यन्न व्यवहारतोऽन्यत्। क ईश्वरस्तत्र किमीशितव्यं तथापि राजन्करवाम किं ते ॥ ६ ॥

उन्मत्तमत्तजडवत्स्वसंस्थां गतस्य मे वीर चिकित्सितेन। अर्थः कियान्भवता शिक्षितेन स्तब्धप्रमत्तस्य च पिष्टपेष ॥ ७ ॥

कपिल के आश्रम को जाते हुए रहूगण राजा के कर्म

चारियों ने ब्रह्मविद् विरक्त जड़ भरत को बलात्कार से पालकी उठाने में लगादिया। तब ब्रह्म निष्ठ के पग न चलनेपर वृद्ध सेवी हुए भी राजा ने राज्य मद से बहुत से हास्यापमान के शब्द कहे। तिस वक्रोक्ति पर हंसते हुए ब्रह्म वेत्ता जड़ भरत बोले कि हे वीर जो आपने कहा कि आपको अति परिश्रम हुआ क्यों कि एक ही दूर मार्ग से लारहे हैं। पुष्ट भी नहीं त्रुष्ट हो अति थकित हो. दूर चलकर आये हो, न कृष हो न बूढ़े हो तो शीघ्र क्यों नहीं चलते यह आपका कथन यथार्थ ही है क्यों कि थकना, मार्गादि आत्मस्वरूप मुझ में नहीं है यह सब कथन स्थूल देह को लक्ष्य लेकर है। आत्मा चेतन को लेकर नहीं। यदि चेतन आत्मा को लक्ष्य लेकर थकना पुष्टादि कहें तो मूख ही जाना जाएगा। इस हेतु से यह कथन पञ्चभौतिक देह विषे है। आत्मा में नहीं, स्थूलता कृशता व्याधियें शारीरिक रोग, आधियें मानसी रोग, क्षुधा प्यासा, कलह, जरा, निद्रा, क्रोध, राग अहंकार सहित मद, शोक यह सब देहके साथ उत्पन्नाभिमानवाले जन को होते हैं। मुझ निराभिमान को यह नहीं है, जो कहा जीवन्मृत हो सो एक मेरेको नहीं, सर्व को ही क्षण परिणामी रूप नाश देखा जाता है। और स्वामी स्वाम्य भाव भी निश्चित नहीं, तुम राज्य भ्रंश हुए

मुझको राज्य होने पर मैं स्वामी तुम दास हुए। यदि आपको ही स्वामित्व का अभिमान है तो कहो। हम आपका क्या करें॥ ७॥ राजा भृत्यादि भेद एक बुद्धि का ही विशेष विकार रूप विलास है व्यवहार से विना अन्य इस भेद का किंचित भी मैं अवकाश नहीं देखता हूं। हे राजन् वास्तव विचार में कहो कौन ईश्वर होता है कौन ईशितव्य होता है। तो भी कहो आपका क्या करें॥ ८॥ और जो कहा मैं तुम्हारी प्रमादि की चिकित्सा करता हूँ जिससे तुम ठीक हो जाओगे। अब हमारा उन्मत्त मस्त जड़ के समान संसार में वर्तमान का वास्तव स्व ब्रह्मात्मभाव को प्राप्त मुझको हे वीर आप करके किये चिकित्सा दण्ड रूप शिक्षण से क्या अर्थ सिद्ध होगा। क्यों कि जीवन्मुक्त को अर्थ अनर्थ दोनों का असंभव होने से यदि मैं मुक्त नहीं हूँ तो भी प्रमत्त जड़ मुझको शिक्षादि करना पिष्ट पेषण के समान व्यर्थ ही है। क्योंकि जड़ स्वभाव प्राणि शिक्षादि से चतुर नहीं हो सकते, मुनिवर ऐसा राजा का अनुवाद प्रत्युत्तरादि कहकर शेष प्रारब्ध को भोगकर क्षीण करते हुवे राजारहूगण की पालकी को भी उठाया। शुकदेवजी कहते हैं कि ऐसे हृदयग्रन्थि के नाशक अमृतमय वचनों को सुनकर रहूगण राज्य मद से रहित हुआ दण्डवत नमस्कार करता हुआ ब्रह्मविद् मुनि के

चरणों में पड़ गया, और कहने लगा हे आर्त बन्धो ! राज्य मद से मैंने जो आप श्रेष्ठ पुरुषों की अवज्ञा रूप पाप किया है तिस से जैसे मुक्त होउं ऐसी आप कृपा करो। और आप ने कहा कि मुझको भार का श्रम नहीं है सो हमारे को अनुमान से ज्ञात होता है। आप भार वाहनादि से श्रान्त हो, गमन का कर्ता होने से जो गमनागमन का कर्ता होता है सो थकता है। जैसे मैं युद्धादि का कर्ता थकताहूँ। जड़ भरतने कहा तुम अविद्वान् हुए विद्वानों जैसे बोलते हो जिससे स्वामी भृत्यादि लौकिक व्यवहार को सत्य कहते हो इस व्यवहार को विद्वान वेदान्त के तत्त्व विचार से सत्य नहीं कहते किन्तु अविचार से सत्य कहते हैं॥ ६ ॥

अ० ११ श्लो. ३

न तस्य तत्त्वग्रहणाय साक्षाद्वरीयसीरपि वाचः समासन् । स्वप्ने निरुक्त्या गृहमेधिसौख्यं न यस्य हेयानुमितं स्वयं स्यात् ॥ १० ॥

सुने हुए भी साक्षात् वेदान्त वाक्य तिस पुरुष को यथावत् तत्वज्ञान के लिये नहीं हो सकते हैं। क्योंकि जैसे स्वप्न में दृश्य पदार्थ जगे हुए पुरुष को मिथ्या रूप से हेय होते हैं तैसे गृह सम्बन्धी पुत्र स्त्री धनादि के सुख जब तक मिथ्या

जानकर नहीं त्यागता है अर्थात पुत्रादि पदार्थ ताज्य रूप से जिसको ज्ञात नहीं होते तिसको वेदान्त वाक्य ब्रह्मात्माद्व्य ज्ञान के जनक नहीं हो सकते हैं ॥ १० ॥

अ० १२ श्लो० ६-७-११

अंसेऽधिदार्वी शिबिका च यस्यां सौवीरराजेत्यपदेश आस्ते। यस्मिन्भवान्रूढनिजाभिमानो राजास्मि सिन्धुष्विति दुर्मदान्धः ॥११॥ शोच्यानिमांस्त्वमधिकष्टदीनान्विष्ट्या निगृह्णन्निरनुग्रहोसि। जनस्य गोप्तास्मि विकत्थमानो न शोभसे वृद्धसभासु धृष्टः ॥१२॥ ज्ञानं विशुद्धं परमार्थमेकमनन्तरं त्वबहिर्ब्रह्म सत्यम्। प्रत्यक् प्रशान्तं भगवच्छब्दसंज्ञं यद्वासुदेवं कवयो वदन्ति ॥१३॥

हे राजन्! जो भूमिका विकार है सो किसी हेतु से भूमि में चलता हुआ भारवाहकादि नाम से प्रसिद्ध है न चलता हुआ पाषाणादि नाम से प्रसिद्ध है यह भेद है तिसको जड़ होने से भार श्रमादि नहीं है यदि पालकी भारादी है तो भी पादादि पर क्रम से देह के अंश कंधे पर है। जिस काष्ट की पालकी में सौविर राजा नाम मात्र है

जिसका, सो भूमि का विकार स्थित है। ।भूमिविकार होने पर भी आप निज में रूढ़ अभिमान हो कि मैं सिंधु देशों का राजा हूँ यह दुर्मदान्धता का परिचय है ॥ ११ ॥ शोचनीय दुःखी दीनों को निर्बलों को बेड़ी आदि से बांधकर पालकी में जोड़ते हुए दयाहीन तुम फिर ऐसे कहते हो कि मैं प्रजा जन का रक्षक हूँ ऐसे अपनी श्लाघा करने वाले ढीठ निर्लज्ज तुम वृद्ध विद्वानों की सभा में शोभा नहीं पा सकते हो ॥ १२ ॥ जो तुम स्वामी भृत्य कृश स्थूलादि वस्तु सत्य मानते हो। यह सब मायाकृत यावत् नाम रूप द्वैत प्रपञ्च मिथ्या है। तो सत्य वस्तु क्या है। सो सत्य ज्ञान आनन्द स्वरूप विभु ब्रह्म है। व्यवहारिकादि सत्य निवारणार्थ परमार्थ कहा अविद्यक, नाना, बाह्याभ्यन्तर, परिच्छिन्न.. विषयाकार वृत्ति ज्ञानों के निवारणार्थ ये छे विशेषण हैं। विशुद्ध, एकाद्वय, बाह्याभ्यन्तरशून्य, ब्रह्मपरिपूर्ण, प्रत्यक्निर्विषयप्रशान्त, निर्विकार यह ब्रह्मात्मस्वरूप ज्ञान ही सत्य है, "उत्पत्तिं प्रलयंचैव भूतानामागतिं गतिम्। वेत्ति विद्यामविद्यांच स वाच्यो भगवानिति" ॥ जिस भगवत् नाम को ही विज्ञाता, अधिष्ठान प्रकाशरूप वासुदेव कहते हैं। हे रहूगण इस ज्ञान को तप से, वैदिक कर्म से, अन्नदान से, वेदाभ्यासादि से पुरुष प्राप्त नहीं होता है, किन्तु ब्रह्मविद् महात्माओं

की पादरज सेवन से प्राप्त होता है ॥ १३ ॥

अ० १३ श्लो० २०

रहूगण त्वमपि ह्यध्वनोऽस्य संन्यस्तदण्डः कृतभूत-मैत्रः। असज्जितात्मा हरिसेवया शितं ज्ञानासिमादाय तरातिपारम् ॥ १४ ॥

हे रहूगण तुम भी संसार मार्ग में ही प्रविष्ट हो अतः इस संसार मार्ग का पार जो मोक्ष है तिसको प्राप्त हो। पुत्र दारा धनादि में राग रहित हुआ प्राणिमात्र को भयकारी प्रवृत्ति मार्ग रूप दण्ड को त्याग कर सब प्राणियों से मैत्री करो। पापहारी हरि की सेवा से तीक्ष्णी कृत ब्रह्मात्म ज्ञान रूप खड्ग को लेकर अज्ञानरूप शत्रु का शिर काटकर संसार रण भूमि से पार हो ऐसे ब्रह्मविद् जड भरत के अमृतमय वचनों को सुनकर कृतकृत्य हुआ राजा रहूगण कहता है कि अहो मनुष्य जन्म अखिल योनियों में श्रेष्ठ है स्वर्ग में भी बहुत से जन्मों से क्या है जहां सच्चिदानन्द ऋषिकेश के यश करके शुद्धात्मा महात्माओं का समागम नहीं होता है। भो भगवन् आपके पादपद्म रज सेवी निष्पाप जन की हरि में निर्मल भक्ति होनी कोइ अद्भुतबात नहीं है क्यों कि जिस आपके एक मुहुर्त मात्र समागम से दुस्तर्क बद्धमूल-

मेरा अविवेक नष्ट हो गया है। आप ब्रह्मविद्वरिष्ठों के ताईं मेरी बारम्बार नमस्कार है। ऐसे ब्रह्मर्षि जड़ भरत रहूगण के किये अपमान को न गणते हुए कृपा से ब्रह्मात्मतत्त्व का उपदेश कर राजा से पूजित हुए ब्रह्मानन्द में सन्तुष्ट निर्मान मोह जीवन्मुक्त होकर भूमिपर विचरते हुवे जिज्ञासुओं को आनन्द दे रहे है सिंधु पति राजा रहूगण भी श्रेष्ठ जनों से ब्रह्मात्माद्वयतत्त्व के ज्ञाता हुए ने आत्मा में अविद्या आरोपित देह मे आत्म बुद्धि को त्यागदिया श्री शुकदेव परीक्षित् से बोले कि हे नृप ऐसा भगवदाश्रिताश्रितों का तत्काल देहाहंकार त्याग रूप सत्सङ्ग का प्रभाव है॥ १४॥

तमेव भुक्तिविरसं व्यापारौघं पुनः पुनः ।
दिवसे दिवसे कुर्वन् प्राज्ञः कस्मान्न लज्जते ॥

इति श्रीभागवतसारबिन्दौ साराथदीपिका भापाटीकायां पञ्चम स्कन्धः

卐 हरिः ॐ तत्सत् 卐

॥ अथ षष्ठ स्कन्धः ६ ॥

अ० १ श्लो० ११-१२-१३-१६-१८

कर्मणा कर्म निर्हारो न ह्यात्यन्तिक इष्यते ।
अविद्वदधिकारित्वात्प्रायश्चित्तं विमर्शनम् ॥ १ ॥
नाश्नतः पथ्यमेवान्नं व्याधयोऽभिभवन्ति हि ।
एवं नियमकृद्राजन् शनैः क्षेमाय कल्पते ॥ २ ॥
तपसा ब्रह्मचर्येण शमेन च दमेन च ।
त्यागेन सत्यशौचाभ्यां यमेन नियमेन च ॥ ३ ॥
न तथा ह्यघवान्राजन्पूयेत तपआदिभिः ।
यथा कृष्णार्पितप्राणस्तत्पूरुषनिषेवया ॥ ४ ॥
प्रायश्चित्तानि चीर्णानि नारायणपराङ्मुखम् ।
न निष्पुनन्ति राजेन्द्र सुराकुम्भमिवापगाः ॥ ५ ॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं कृच्छ्रादि प्रायश्चित कर्म से पाप कर्म का समूल नाश नहीं हो सकता । क्यों कि कर्म का अविद्वान् अधिकारी होनेसे अविद्या का नाश न होने से पाप कर्म फिर उत्पन्न हो जाता है । तो पाप कर्म का नाशक मुख्य प्रायश्चित कोनसा है । मुख्य प्रायश्चित ब्रह्मात्मज्ञान है । ॥ १ ॥

तिस ब्रह्मात्म ज्ञान को सदा अप्रमादी पुरुष प्राप्त कर सकता है, और नहीं। हे राजन् जैसे युक्ति से पथ्य अन्न सेवन कर्ता पुरुषों को व्याधियें बाधित नहीं कर सकती हैं। तैसे ही नियमादि कर्ता पुरुष शनै शनै तत्त्व ज्ञान के लिये समर्थ हो जाता है ॥ २ ॥ वो साधन ये हैं । मन इन्द्रियों के एकाग्र रूप तप से, अष्ट प्रकार ब्रह्मचर्य से, मन निग्रह रूप शम से, इन्द्रिय निग्रह दम से, त्याग रूपदान से, सत्य भाषण से, पवित्रता से, अहिंसादि यम से जपादि नियम से ॥ ३ ॥ हे राजन्। जैसे कृष्णाश्रित महान् पुरुषों की सेवा से कृष्ण में अर्पित मनप्राण पुरुष शीघ्र शुद्ध होता है। तैसे पापी जन तपादि से शुद्ध नहीं हो सकता ॥ ४ ॥

हे राजन् कृच्छ्रादि व्रत प्रायश्चित्त किये हुए भी नारायण विमुख जन को शुद्ध नहीं कर सकते हैं। जैसे समुद्रगा गङ्गादि नदियें सुरा घटको शुद्ध नहीं कर सकती हैं ॥ ५ ॥

अ० १ श्लो० ४०-५२

वेदप्रणिहितो धर्मो ह्यधर्मस्तद्विपर्ययः ।
वेदो नारायणः साक्षात्स्वयंभूरिति शुश्रुमः ॥६॥
देह्यज्ञोऽजितषड्वर्गो नेच्छन्कर्माणि कार्यते ।
कोशकार इवात्मानं कर्मणाच्छाद्य मुह्यति ॥७॥

काम्य कुब्ज पुर में नष्ट सदाचार चोर वृत्ति जीवी अजामिल द्विज को यमदूत लेने आये तिन पाशधारियों को देखकर भयभीत अजामिल ने नारायण नाम छोटे पुत्र को उच्च स्वर से बुलाया तब तिस नारायण शब्द को सुनकर विष्णु दूत भागकर आए। अजामिल को पीड़ा देते हुए यमदूतों को डाटदिया और पूछा तुम कौन हो यमदूतों ने कहा कि हम धर्मराज के दूत हैं इस पापी को लेने आये है। आप धर्मराज के आज्ञाकारियों को हटाने वाले कौन हो। विष्णु दूतों ने कहा कि यदि तुम धर्मराज के दूत हो तो धर्म का स्वरूप कहो,क्या है। यमदूतों ने कहा कि वेद विहित का नाम धर्म हें और वेद निषिद्ध का नाम अधर्म है। वेद नारायण के साक्षात् श्वासों से प्रगट हुए हैं इसी से नारायण रूप है। और स्वयं स्वतः प्रमाण है ऐसा हमने सुना है॥६॥

स्व मन ज्ञान इन्द्रियों को न जीतकर अज्ञानी जीव इच्छा न करता हुआ भी कर्मों को कर्ता है। कोशकार कीट के समान शुभाशुभ कर्मो करके निज आत्मस्वरूप को अच्छादित कर मोह को प्राप्त होता है। तिन पुण्य पाप मिश्रित कर्मों से स्वर्ग नरक मनुष्यादि योनियों को प्राप्त होता है। तब विष्णु दूतों ने कहा कि जिसने नारायण का नाम किसी भी प्रकार से लिया है वह नरकों के कष्ठ नहीं

भोग सकता है। हरि का नाम हास से, या ज्वर पीड़ा से या द्वेष से भी लिया हुआ सब पापों को नाश कर देता है। जैसे अग्नि भूल से या जान कर घास काष्ठादि में डाला हुआ अवश्य ही दग्ध कर देता है। हरि नाम उच्चारण से सब पापों की निष्कृति रूप प्रायश्चित्त हो जाता है। ऐसा सुन कर यम दूत अजामिल को छोड़ कर चले गए। और विष्णु दूत भी अन्तर्ध्यान हो गये। अजामिल हरिनाम पर विश्वास कर पाप कर्मों का पश्चात्ताप करते हुए एक हरि परमात्मा परायण हो गये ॥ ७ ॥

अ० २ श्लो० ३८-३९

ममाहमिति देहादौ हित्वा मिथ्यार्थधीर्मतिम् ।
धारये मनो भगवति शुद्धं तत्कीर्तनादिभिः ॥८॥
इति जातसुनिर्वेदः क्षणसङ्गेन साधुषु ।
गङ्गाद्वारमुपेयाय मुक्तसर्वानुबन्धनः ॥ ९ ॥

अजामिल देह गेह धनादि में अंहमम मति का त्याग कर परमात्मा में स्थिर बुद्धि हुआ हरि के नाम श्रवण कीर्तनादि से शुद्ध मन होकर हरि परमात्मा में मन को धारण करूंगा ऐसा विचार कर लिया ॥ ८ ॥ ऐसे श्रेष्ठ साधु महात्माओं के विषे एक क्षण मात्र के संग से उत्पन्न वैराग्य

युक्त हुआ अजामिल गंगाद्वार मायापुरी में जाकर पुत्र स्त्री धनादि सब स्नेह बन्धनों से मुक्त होकर ब्रह्मात्माद्वय स्वरूप में चित्त को जोड़ दिया। ऐसा भगवत् नामका महत्व है। यह कैमुत्तिकन्याय है यदि दुराचारी भी हरिनाम से मुक्त हो जाते हैं तो सदाचारी के मुक्त होने में तो कहना ही क्या है। ॥ ६ ॥

अ० ५ श्लो. ६-१८

कथं स्वपितुरादेशमविद्वांसो विपश्चितः ।
अनुरूपमविज्ञाय अहो सर्गं करिष्यथ ॥ १० ॥
ऐश्वरं शास्त्रमुत्सृज्य बन्धमोक्षानुदर्शनम् ।
विविक्तपदमज्ञाय किमसत्कर्मभिर्भवेत् ॥ ११ ॥

हर्यश्व नाम दक्ष के पुत्रों को सृष्टि निर्माणके लिये तप में प्रवृत्तों को मोक्षमार्गाधिकारी जानकर दया करके नारदजी ने कहा कि हे दक्ष पुत्रों ! सर्वज्ञ स्वपिता दक्ष के आदेश शिक्षण को निज हितकारी को न जानकर शास्त्रानुकूल निजानुकूल तत्त्व को न जानकर तुम कैसे सृष्टि रचना करोगे ॥ १० ॥ ऐसे नारद के वचनो को सुनकर दक्ष के पुत्रों ने मिलकर स्वबुद्धि से विचार करके कहा कि अहो कष्ट हैं। ईश्वर प्रतिपादक वेद शास्त्र को बन्ध मोक्ष के मार्ग को दिखलाने वाले को त्याग कर जड़ चेतन के विवेक से जानने

योग्य ब्रह्मात्म पद न जानकर संसार गतिप्रद, बहिर्मुख असत् कर्मों से क्या फल होगा। दुर्गति ही फल होगा। संसार निवर्तक शास्त्र और पिता के शिक्षण को जो नहीं जानता है वो लोक में किसी भी कर्म आरम्भ करने योग्य नहीं, ऐसे विचार कर दक्ष के पुत्र विरक्त हुए नारद को परिक्रमा नमस्कार करके सच्चिदानन्द ब्रह्मनिष्ठ हुए लोक में विचरते भये। ऐसे ही नारद के उपदेश से शवलाश्व दक्ष के हजार पुत्र ब्रह्मनिष्ठ विरक्त होकर लोक मे विचरते थे ॥ ११ ॥

अ० ६ श्लो० ४६-५०

न वेद कृपणः श्रेय आत्मनो गुणवस्तुदृक् ।
तस्य तानिच्छतो यच्छेद्यदि सोऽपि तथाविधः ।१२।
स्वयं निःश्रेयसं विद्वान्न वक्त्यज्ञाय कर्म हि ।
न राति रोगिणोऽपथ्यं वाञ्छतो हि भिषक्तमः ॥१३॥

इन्द्रादि देवताओंने स्वर्ग भोगों के लिये विरोधी वृत्रासुर के नाश के लिये विष्णु से प्रार्थना करी। तब प्रसन्न होकर विष्णुने कहा कि मेरे जो अनन्य भक्त तत्त्व वेत्ता हैं वो मेरे से भिन्न कोई वस्तु नहीं मांगते हैं। त्रिगुण विषयों में परमार्थ तत्त्वदर्शी मूढ कृपणजन निज श्रेय मोक्ष को नहीं

जानता है। तिस अज्ञानी विषयों की इच्छावाले को जो विषयों की शिक्षा देता है सो भी अज्ञानी जाना जाता है ॥१२॥ जैसे ज्वर पीड़ित रोगी को घृतादि अपथ्य सेवन की इच्छा करते हुवे को भी निपुण वैद्य रोगकारी अपथ्य को नहीं देता है तैसे ही ब्रह्मात्माद्वय स्वरूप मोक्ष को स्वयं जानता हुआ विद्वान् अज्ञानी को दुर्गतिकारी सकाम्य कर्म को नहीं कहता है। किन्तु मोक्षकारी ज्ञान के साधनों को ही कहता है। तो भी अनुचित याचना से प्रसन्न न हुए कृपालु विष्णु इन्द्रादि देवोंको वृत्रासुर के नाश का स्वर्ग की प्राप्ति का उपाय दध्यङ् ऋषि की तपो बल युक्त अस्थियों को वज्र के लिए याचना करो ऐसा कहा

अ. १० श्लो. ११

एवं कृतव्यवसितो दध्यङ्ङाथर्वणस्तनुम् ।
परे भगवति ब्रह्मण्यात्मानं सन्नयञ्जहौ ॥ १४ ॥

अ० १२ श्लो० १२-१३-१५

अविद्वानेवमात्मानं मन्यतेऽनीशमीश्वरम् ।
भूतैः सृजति भूतानि ग्रसते तानि तैः स्वयम् ॥१५॥
आयुःश्रीकीर्तिरैश्वर्यमाशिषः पुरुषस्य याः ।
भवन्त्येव हि तत्काले यथानिच्छोर्विपर्ययाः ॥१६॥

सत्त्वं रजस्तम इति प्रकृतेर्नात्मनो गुणाः ।
तत्र साक्षिणमात्मानं यो वेद न स बध्यते ॥१७॥

इन्द्रादि देवता दध्यङ् ऋषि से स्वार्थ वश हुए अस्थियें वज्र के लिये मांगते हुवे । श्रीशुकदेवजी कहते है कि तब परोपकारी ऋषि ने विचारा कि क्षण भङ्गुर धन, पुत्र, शरीरादियों करके जिसने परोपकार न किया सो नर शोचनीय है ऐसा निश्चय कर ऋषि जीवात्मा का भगवत् पर ब्रह्म में एक रूप अभेद करते हुए देवताओं के लिये देहका परित्याग कर दिया ॥ १४ ॥ इन्द्र विश्व कर्मा निर्मित वज्र लेकर युद्ध करते हुवे तब वृत्रासुर के प्रहार से इन्द्र के हाथ से वज्र गिरने पर इन्द्र को लज्जित हुए को वृत्रासुर ने कहा कि हे इन्द्र ! स्वयं ईश्वर पञ्चभूतों करके पञ्चभौतिक सृष्टि को रचते हैं । और तिन पाञ्च भूतों के लय निमित्त से सृष्टि का लय करते हैं । ऐसा होने पर भी अज्ञजन, अनीश्वर जीव कर्मादि को ही सृष्टि का कर्त्ता मानता है ॥ १५ ॥

और जैसे जय काल में जीना, राजश्री, यश ऐश्वर्यादि की पुरुष को जो आशायें हैं । वे आशायें सफल न होकर, अभाग्य वश से पराजयादि की इच्छा न करते हुए को विपरीत हार (पराजय) अकीर्ति मरणादि प्राप्त हो जातें हैं ॥ १६ ॥

इससे जय पराजय को सम ज्ञानकर। सत्व, रज, तम यह माया के गुण हैं। आत्मा के नहीं। आत्मा निर्लेप सर्वत्र व्यापक है ऐसा जो आत्मा साक्षी को जानता है सो पुरुष हर्ष मोहादि करके बन्धाय मान नहीं होता है। परीक्षित् ने शुकदेवजी से पूछा कि हे मुने यह ब्रह्मात्म निष्ठ वृत्रासुर किस हेतु से असुर योनि को प्राप्त हुवा है। शुकदेवजी ने कहा कि चित्रकेतु राजा पुत्र सम्बन्धी सुख के भाग्य में न होने पर भी ऋषि अङ्गिरा की कृपा से पुत्र होकर मर जाने पर राजा चित्रकेतु को महान कष्ठ युक्त देखकर अङ्गिरा नारद ने आत्मज्ञान देकर मोह दूर किया ॥ १७ ॥

अ० १५ श्लो० २-५-२६

कोऽयं स्यात्तव राजेन्द्र भवान्यमनुशोचति।
त्वं चास्य कतमः सृष्टौ पुरेदानीमतः परम् ॥१८॥
वयं च त्वं च य चेमे तुल्यकालाश्चराचराः।
जन्ममृत्योर्यथा पश्चात्प्राङ्नैवमधुनापि भोः ॥१९॥
तस्मात्स्वस्थेन मनसा विमृश्य गतिमात्मनः।
द्वैधे ध्रुवार्थविश्रम्भ त्यजोपशममाविश ॥ २० ॥

अङ्गिरा ने कहा हे राजन्! तुम इस बालक के बन्धुओं में से कौनसा बंन्धु है। यदि कहो यह मेरा पुत्र, मैं इसका

पिता हूँ। यह कहां तक सत्य माना जासकता है। जो पूर्व जन्म में पितादि थे वो मरकर वियुक्त हुए वर्तमान् जन्म में तिसके अथवा और के पुत्रादि हो जाते हैं। और दूसरे जन्म में तिसके अथवा और के स्त्री शत्रु, मित्रादि हो जाते हैं। इस हेतु से निर्णय नहीं हो सकता है कि सदा नियम से कोन किसके पिता पुत्रादि हैं ईश्वर माया वश जीव के जन्म मरण होते हैं। वास्तव से नहीं। सब सबके पिता पुत्रादि होते हैं इससे शौच करना योग्य नहीं ॥ १८ ॥ हम और तुम यह जो बान्धवादि हैं। वर्तमान् काल में जो चराचर प्रपञ्च है यह सब जन्म से पूर्व, और मरण से पश्चात् जैसे देखने में नहीं आते हैं तैसे इस काल में भी सत्य नहीं है। जैसे स्वप्न पदार्थों का स्वप्न के आदि अन्त में सत्यपन नहीं होता है। तैसे दर्शन काल में भी असत्य ही हैं। देहोऽहं ऐसे अभिमान वाले जीव को नाना क्लेश संताप होते है ॥ १९ ॥ इस हेतु से हे राजन्। समाधान चित्त होकर ब्रह्मात्माद्वयतत्त्व की गति को विचार। इस द्वैत प्रपञ्च में सत्यता के विश्वास को त्यागकर निरूद्ध मन हुआ ब्रह्मात्म विचार का आश्रयण करो ॥२०॥

अ० १६ श्लो० २-४-५

जीवात्मन्पश्य भद्रं ते मातरं पितरं च ते।

सुहृदो बान्धवास्तप्ताः शुचा त्वत्कृतया भृशम् ॥२१॥

कस्मिञ्जन्मन्यमी मह्यं पितरो मातरोऽभवन् ।
कर्मभिर्भ्राम्यमाणस्य देवतिर्यङ्नृयोनिषु ॥ २२ ॥
बन्धुज्ञात्यरिमध्यस्थमित्रोदासीनविद्विषः ।
सर्व एव हि सर्वेषां भवन्ति क्रमशो मिथः ॥२३॥

नारद चित्रकेतु के मरे हुए पुत्र को योग शक्ति से बुला कर पूछते हैं कि हे जीवात्मन् तुम्हारा कल्याण हो तुम्हारे मरने से महान शोक करके तप्त दुःखी माता पितादि सुहृदों को आकर देखो, देह में प्रवेश कर शेषायु को भोगो ॥२१॥ तब देह में प्रवेश होकर जीव बोला कि किस जन्म में यह मेरे माता पितादि थे। देव मनुष्य तिर्यगादि योनियों में पुण्य पाप कर्मो करके भ्रमते हुवे का मेरा नियम से कौन कौन माता पितादि निश्चय होसकता है अर्थात नहीं होसकता है। यदि मेरे मरने पर पुत्र जानकर शोक किया है तो शत्रु जानकर हर्ष क्यो न किया जाय क्यों कि शत्रु भी मैं कभी हुआ ही हूँ ॥२२॥ बन्धु, सजाति, शत्रु, मित्र, मध्यस्थ, द्वेषी उदासिनादि सब सब के क्रम से परस्पर होते ही है। जब तक जिसका सम्बन्ध होता। है तब तक ही अज्ञ जनों को ममत्व होता है। आगे पीछे जन्मों के सम्बन्धियों

का ममत्व नहीं होता है। और नित्य साक्षी आत्मा का किसी के साथ माता पिता पुत्रादि का सम्बन्ध नहीं है॥२३॥

अ० १६ श्लो० ११-१६-५३-५४-५५-५८

नादत्त आत्मा हि गुण न दोषं न क्रियाफलम्।
उदासीनवदासीनः परावरदृगीश्वरः ॥ २४ ॥
नमो विज्ञानमात्राय परमानन्दमूर्तये।
आत्मारामाय शान्ताय निवृत्तद्वैतदृष्टये ॥ २५ ॥
यथा सुषुप्तः पुरुषो विश्वं पश्यति चात्मनि ।
आत्मानमेकदेशस्थं मन्यते स्वप्न उत्थितः ॥२६॥
एवं जागरणादीनि जीवस्थानानि चात्मनः ।
मायामात्राणि विज्ञाय तद्द्रष्टारं परं स्मरेत् ॥२७॥
येन प्रसुप्तः पुरुषः स्वापं वेदात्मनस्तदा ।
सुखं च निर्गुणं ब्रह्म तमात्मानमवेहि माम् ॥२८॥
लब्ध्वेह मानुषीं योनिं ज्ञानविज्ञानसंभवाम् ।
आत्मानं यो न बुद्ध्येत न क्वचिच्छममाप्नुयात् ॥२९॥

सर्व वृद्धियों के साक्षी आत्मा का कोइ प्रिय अप्रिय नहीं है। जो कहा भोगों को भोगो यह भी नहीं है। क्यों कि आत्मा गुण दोष सुख दुखों को और कर्म

फल राज्यादि को न ग्रहण करने से भोक्ता नहीं है। उदासीन हुआ कारण, कार्य का साक्षी है। भोक्ता नहीं। देहादि पारतन्त्रता से रहित है। इससे ईश्वर है ऐसा कह कर जीव चला गया ॥ २४ ॥ तब नारदजी ने राजा को वास्तव परब्रह्मका स्वरूप कहा ज्ञानस्वरूप, परमानन्द मूर्ति, आत्माराम, शान्तरूप, द्वैतदृष्टि निवृत्त सच्चिदानन्द परब्रह्म अद्वैत स्वरूप के लिये नमस्कार है। तब राजा चित्रकेतु, नारद कथित ब्रह्माद्वय ज्ञान तत्त्व भागवत को सुनके सप्त दिन अभ्यास करके आदि कारण भगवान् को प्राप्त हो गये॥२५॥ राजा की अनन्य भक्ति से और नाना स्तुतियों से प्रसन्न होकर भगवान् कहते है कि हे राजन् जैसे सोया हुआ पुरुष स्वप्न में गजगिरि वनादि विश्व को देशान्तर स्थित पदार्थों को निज आत्मा में देखता है और अपने को नाना देश देशान्तरों में भ्रमण कर्ता को देखता है और स्वप्न में ही सुषुप्ति स्वप्न को भी देखता है। सोने से उठकर आप को एक शयन स्थान में ही स्थित देखता है ॥ २६ ॥

इस प्रकार जाग्रतादि अवस्था प्रसिद्ध जीवात्मा की उपाधि रूप बुद्धि की ही अवस्था है, और आत्मचेतन की माया कल्पित हैं। ऐसा जानकर तिन जाग्रतादि अवस्थाओं का द्रष्टा परब्रह्मात्म स्वरूप मेरा स्मरण करो ॥ २७ ॥

क्यों कि सोता हुआ पुरुष जिस चेतन आत्मा करके तिस सोने काल में निज सोने को और निगुर्ण अतिन्द्रिय सुख को जानता है। तिस ब्रह्मात्म स्वरूप को सच्चिदानन्द मुझको जान क्यों कि सुपुप्ति में सुख के ज्ञान विना मैं सुख से सोया ऐसा ज़ाग्रत में स्मरण नहीं हो सकता है ॥ २८ ॥

विपय भोग तो अन्य योनियों में भी संपादन हो सकते हैं परन्तु ब्रह्मात्म ज्ञान तो मनुष्य देह में ही प्राप्त हो सकता है। वेद शास्त्र ज्ञान की, और ब्रह्मात्म स्वरूप अपरोक्ष ज्ञान की उत्पत्ति का स्थान मनुष्य योनिको इस भारतवर्ष में प्राप्त करके जो ब्रह्मात्म अद्वय स्वरूप को नहीं जानता है। वे प्राणी किसी स्थान में भी सुख शान्ति को प्राप्त नहीं होते हैं। इस हेतु से प्रवृत्ति मार्ग में दुःख की और निवृत्ति मार्ग में निश्चय मोक्ष की प्राप्ति होती है। ऐसा जानकर सर्व संकल्पों का त्यागकर, ऐसा कहकर विष्णु वहीं अन्तर्ध्यान हो गये और राजा चित्रकेतु विद्याधर होकर देवाङ्गना के साथ विष्णु के दिये हुए विमान से सर्व सिद्धलोकों में विचरते हुए वामाङ्क में धारण की है उमा जिसने ऐसे महादेव को देखकर चित्रकेतु ने हास किया ॥ २९ ॥

अ० १७ श्लो. १४-१५-१६

नायमर्हति वैकुण्ठपादमूलोपसर्पणम् ।

संभावितमतिः स्तब्धः साधुभिः पर्युपासितम् ।३०।
अतः पापीयसीं योनिमासुरीं याहि दुर्मते ।
यथेह भूयो महतां न कर्ता पुत्र किल्बिषम् ॥२१॥
नैवात्मा न परश्चापि कर्ता स्यात् सुखदुःखयोः ।
कर्तारं मन्यतेऽप्राज्ञ आत्मानं परमेव च ॥ ३२ ॥

पार्वति ने क्रुद्ध होकर कहा कि यह वृत्र बन्धु विष्णु के वैकुण्ठ पद को प्राप्त होने योग्य नहीं क्यों कि वैकुण्ठ पद साधु महान् पुरुषों करके सेवन करने योग्य है। यह राजा स्वयं पण्डित मानी अभिमानी नम्र भाव रहित है ॥ ३० ॥

स्वयं योग्य दण्ड विचारकर पार्वति बोली कि हे पुत्र जैसे इस संसार में पूज्य महात्मा पुरुषों का फिर अपमान अपराध न कर सकोगे इस हेतु से हे दुर्मते ? पापिष्ठ आसुरी योनि को प्राप्त हो ऐसा शाप देदिया ॥ ३१ ॥ एसा सुनकर विद्याधर चित्रकेतु ने कहा कि हे मातः ? इस संसार चक्र में अज्ञान मोहित हुआ जन्तु नाना सुख दुःखों को भोगता है। इसी से न आपका दोष है न मेरा है। यह अज्ञानियों को संसार चक्र स्वाभाविक ही है। और सुख दुःखों का कर्त्ता न तो आत्मा है न पर ब्रह्म ही कर्ता है। अज्ञ जन ही आत्मा को और पर ब्रह्म को कर्ता मानता है। ब्रह्मात्म

वेत्ता को तो कहीं पर भी आत्मानन्द से विना और कुछ भी नहीं है। हे देवि में शाप निवृत्ति के लिये आप से क्षमा नहीं मांगता हूँ। किन्तु मेरे कथन से आप को क्षोभ हुआ उसकी क्षमा मांगता हूं ऐसा कह कर चले गये। महादेव ने कहा कि हे उमा हरि भक्त सर्व में आत्म समदर्शी किसी से भय नहीं मानते सुख दुःख, वन्ध, मोक्ष, वर, शापादि, आत्मा में माया कल्पित हैं। ऐसा जानकर निर्भय हुए विचरते हैं। ऐसे उमा के शाप से चित्रकेतु त्वष्टा के पुत्र रूप वृत्रासुर हुआ है ॥ ३२ ॥

अ० १८ श्लो० ३३-४१-४२

पतिरेव हि नारीणां दैवतं परं स्मृतम् ।
मानसः सर्व भूतानां वासुदेवः श्रियः पतिः ॥३३॥
शरत्पद्मोत्सवं वक्त्रं वचश्च श्रवणामृतम् ।
हृदयं क्षुरधाराभं स्त्रीणां को वेद चेष्टितम् ॥३४॥
नहि कश्चित्प्रियः स्त्रीणामञ्जसा स्वाशिषात्मनाम् ।
पतिं पुत्रं भ्रातरं वा घ्नन्त्यर्थे घातयन्ति च ॥३५॥

इन्द्र घाती पुत्र की प्राप्ति की इच्छा करके दिति ने कश्यप पति की महान् सेवा की सेवासे प्रसन्न होकर कश्यप ने कहा कि हे प्रिये वर मांगो मैं तुम्हारे पर प्रसन्न हूँ क्यों

कि पति रूप परमेश्वर के प्रसन्न होने पर स्त्री की सब कामना पूर्ण हो जाती है। स्त्रियों का कल्याणकारी पति ही परम देवता कहा है। और सब के मन में स्थित लक्ष्मीपती वासुदेव सर्व भूत प्राणियों का आराधनीय परम देवता है। इस हेतु से मोक्ष कामा पतिव्रता स्त्रीयें पति को ही ईश्वर रूप से पूजती हैं तब दिति ने कहा यदि आप प्रसन्न हो तो मैं मृत्यु रहित, इन्द्र घाती पुत्र आपसे चाहती हूँ यह वर दें॥ ३३ ॥ ऐसा सुन कश्यप ऋषि ने कहा धिक्कार है मुझको जो स्त्री वश होकर यथेष्ठ वर को दिया कामी जन को शरद् ऋतु के पद्म सम है विकसित मुख जिसका और सुनने में अमृत सम हे मीठे वचन जिसके। उस्त्रे की धार सम तीक्ष्ण है चित्त जिसका। ऐसी स्त्रीयों की कपट चेष्टाओं को कौन प्राणी जान सक्ता है अर्थात् नही जान सकता है। ॥३४॥ स्वार्थ कामना करके कपट से पति हितकारी स्त्रियोंको संसार में कोई भी भलीप्रकार से प्रिय नहीं है। क्योकि स्त्री निज स्वार्थ के निमित्त अति प्रिय पति पुत्र भाई आदि का वध कर देती है। और दूसरों से वध करवा देती हैं ऐसा जानकर भी मिथ्या वाद के महापाप के भय से जो वरदान का वाक्य कहा था सो दे ही दिया। और व्रत पालन के ये नियम कहे कि हे शुभे हिंसा, गाली, झूंठ, नख रोम छेदन,

अशुद्ध स्पर्श, जल में नग्न स्नान क्रोध दुर्जन के साथ भाषण, अधौत वस्त्र धारण करना, धारी हुई माला धारण, झूंठाअन्न, भद्रकाली निवेद मांस, शूद्रीसे लायाअन्न, कीट दूषित ऋतुवती दृष्टअन्न, अञ्जली से जल पीना इत्यादि इक तीस का न सेवन करने से तेरा पुत्र इन्द्र घाती होगा। और इनका सेवन करने से देव बान्धन होगा। यह व्रत का नियम कह दिया। परद्रोही के मनोरथ सफल नहीं हुआ करते हैं। " शठं प्रति शठं कुर्यात् सादरं प्रति सादरमिति " इस न्याय से जैसे को तैसा मिले पुंसवन व्रत की विधि वैगुण्य हो जाने पर इन्द्रने दिति के पेट में योग शक्ति से प्रवेशकर गर्भ के सात भाग कर दिये। फिर एक एक के सात सात भाग कर दिए, ऐसे उनपच्चास मरूत देवता इन्द्र के पक्ष पाती हो गये। पति सेवा करने पर भी और पुंसवन व्रत की विधि से हरि पूजन करने पर भी पर-द्रोह निमित्त से सकाम कर्म किया हुआ दिति का सफल न हुआ। यदि निष्काम पति सेवा व हरि पूजन करती तो दिति को चार पुरुषार्थों की प्राप्ति हो जाती ॥२५॥

इति श्रीभागवतसारबिन्दौ सारार्थदीपिका भाषाटीकायां षष्ठ स्कन्धः

卐 हरिः ॐ तत्सत् 卐

॥ अथ सप्तम स्कन्धः ७ ॥

अ. १ श्लो. ३०-३१

गोप्यः कामाद् भयात् कंसो द्वेषाच्चैद्यादयो नृपाः
सम्बन्धाद् वृष्णयः स्नेहाद् यूयं भक्त्या वयं विभो ।१।
कतमोऽपि न वेनः स्यात् पञ्चानां पुरुषं प्रति ।
तस्मात् केनाप्युपायेन मनः कृष्णे निवेशयेत् ॥२॥

राजा युधिष्ठिर ने नारद से पूछा कि भो मुने राजा वेन को ऋषियों ने ईश्वर की निन्दा करने पर शाप देकर नरक में डाल दिया । और यह शिशुपाल, दन्तवक्त्र साक्षात् ईश्वर कृष्ण की निन्दा करते हुओं की जीव्हा में कुष्ठ न हुआ नरक में पतन न हुआ उलटे सबके देखते हुए कृष्ण भगवान् में ही प्रवेश हो गये । यह मेरी बुद्धि में अति आश्चर्य मोह होता है । तब नारद ने कहा कि हे धर्मनन्दन गोपियें श्रीकृष्ण भगवान् में कामवश से, कंस अतिभय से शिशुपाल दन्तवक्त्र राजा द्वेष से, और यादव सम्बन्ध से आप पाण्डवलोक स्नेह प्रेम से, भक्ति से हम ऋषि लोक सर्व पापों से मुक्त होकर परमेश्वर कृष्ण के स्वरूप को प्राप्त हो चुके हैं ॥ १ ॥ इन पाञ्चों के बीच में वेन श्रीकृष्ण

परमात्मा हरि के प्रति कोई भी सम्बन्ध वाला नहीं है। पूर्ण पुरुष परमात्मा में तीव्र भक्ति के अभाव से नरक में प्राप्त हुआ है, तिस हेतु से किसी न किसी उपाय साधन से मनको श्रीकृष्ण परमात्मा में स्थापन करे। शिशुपाल दन्तवक्त्र विष्णु के यह दो जय विजय नाम के द्वारपाल थे इसीसे विष्णु को प्राप्त हो गये ॥ २ ॥

अ० २ श्लो. २१-२२-४०

भूतानामिह संवासः प्रपायामिव सुव्रते ।
दैवेनैकत्र नीतानामुन्नीतानां स्वकर्मभिः ॥३॥
नित्य आत्माऽव्ययः शुद्धः सर्वगः सर्ववित् परः ।
धत्तेऽसावात्मनो लिङ्गं मायया विसृजन् गुणान् ॥४॥
पथि च्युतं तिष्ठति दिष्टरक्षितं गृहे स्थितं तद्विहतं विनश्यति । जीवत्यनाथोऽपि तदीक्षितो वने गृहेऽपि गुप्तोऽस्य हतो न जीवति ॥५॥

विष्णु के द्वारपाल जय विजयों को सनत्कुमारादि ने कहा कि विष्णु के द्वार पर तामसी जनों का वास योग्य नहीं है। इससे मृत्युलोक में तीन जन्म से शुद्ध होकर इस पद पे आना होगा। तब प्रथम जन्म में हिरण्याक्ष और हरिण्य-

कशिपु हुए। हिरण्याक्ष को वराह भगवान् के भूमि के उद्धार काल में नाश कर देने पर हिरण्यकशिपु अति दुखी हुए सम्बन्धियों को कहते हैं। हे शोभनव्रत मातः तथा सर्व बान्धवो, सर्व प्राणियों का निज निज प्रारब्ध कर्म से एक स्थान में प्राप्त सम्बन्ध वालों का पुनः स्व प्रारब्ध कर्मों से वियुक्तों का सर्वदा इस संसार में एक स्थान में वास नहीं होता है। जैसे प्याउ के स्थान में जल पान के लिये कुछ काल एकत्र हुवों का फिर वियोग हो जाता है। तैसे ही सबका संयोग वियोग होता ही रहता है ॥ ३ ॥ ऐसे लोकिक दृष्टि से शोक निवारण करके शास्त्र विचार द्वारा तत्व दृष्टि से शोक निवारण करते हैं। आत्मा मृत्यु रहित नित्य है षड् विकारो से रहित है, शुद्ध है, सर्व व्यापी है, सर्वज्ञ है, देहादि से भिन्न है। त्रिगुण सम्बन्धी उच्च नीच सुखी दुःखी देहों को त्याग और स्वीकार करता हुआ निज आत्म अविद्या से नाना मूर्तियों को धारण करता है। लिङ्ग शरीरकी उपाधि से ही संसार होता है ॥ ४ ॥ और एक संवाद यह है कि एक राजा को सुयज्ञ शत्रुओं ने मार दिया था तिस की स्त्रियों को रुदन करते हुवों को सूर्य अस्त हो गया तब यम बालक रूप हो कहते हैं हे अबला क्यों रोती हो तुम तो अधिक अवस्था युक्त हो देखो मैं बालक माता पिता से

त्यागा हुआ वन में जीता हूँ । क्यों कि जो ईश्वर गर्भ में रक्षक है सो सर्वदा रक्षक है तो क्या चिन्ता कर्त्तव्य है दुर्गम मार्ग में भूल से वन में प्राप्त हुआ भी ईश्वर से रक्षित हुआ जीता है। और ईश्वर से त्यागा हुआ प्राणी घर में सुरक्षित हुआ भी मर जाता है। तिस ईश्वर की दृष्टि से अनाथ अरक्षित भी वन में जीता है। और ईश्वर से हत जन्तु घर में सुरक्षित हुआ भी नहीं जीता है तो शोक करना व्यर्थ है। ॥ ५ ॥

अ० ४ श्लो० २७-२८-३१-३२

यदा देवेषु वेदेषु गोषु विप्रेषु साधुषु।
धर्मे मयि च विद्वेषः स वा आशु विनश्यति ॥६॥
निर्वैराय प्रशान्ताय स्वसुताय महात्मने ।
प्रह्लादाय यदा द्रुह्येद्धनिष्येऽपि वरोर्जितम् ॥७॥
ब्रह्मण्यः शीलसम्पन्नः सत्यसन्धो जितेन्द्रियः।
आत्मवत् सर्वभूतानामेकः प्रियसुहृत्तमः ॥८॥
दासवत्संनतार्याङ्घ्रिः पितृवत् दीनवत्सलः।
भ्रातृवत् सदृशे स्निग्धो गुरुष्वीश्वरभावनः।
विद्यार्थरूपजन्माढ्यो मानस्तम्भविवर्जितः ॥९॥

हिरण्यकशिपु तप कर ब्रह्मा से नाना वर लेकर दर्पित हुआ ऋषि मुनि देवताओं को पीड़ा देने लगा तब ऋषि देवताओं ने सर्व व्यापी विष्णु से पुकार की कि हम लोग हिरण्यकशिपु से अति पीड़ित हैं तब विष्णु ने आकाशवाणी द्वारा कहा कि हे ऋषि देवताओं जिस काल में जो प्राणी देवताओं में वेदो में, गौओं में ब्राह्मणों में, साधुमहात्माओं में वेद शास्त्रविहित धर्म में मुझ ईश्वर में द्वेष करता है सो प्राणी शीघ्र ही नाश होता है ॥ ६ ॥ यदि ब्रह्मा के वर से दर्पित हुआ जब निर्वैर शान्त स्वभाव महात्मारूप निज पुत्र प्रह्लाद के लिये द्वेष करेगा। तब ब्रह्मा के वर दर्पित इस असुर को मैं अवश्व ही नाश करूंगा ॥ ७ ॥ नारद प्रह्लाद के गुणों को कहते हैं:— ब्राह्मणों का पूजक, शुभ स्वभाव युक्त, सत्य प्रतिज्ञ, जितेन्द्रिय, सर्व प्राणियों के आत्मा के समान एक अद्वितिय प्रिय अति सुहृद ॥ ८ ॥ दास के सम श्रेष्ठ पुरुषों के चरणों में नमस्कार कर्त्ता, पिता के सम दीन जनों पर दयाकारी, अपने सदृश्यों में भ्राता के सम अति प्रेम कर्त्ता, पूज्य गुरु वर्ग में ईश्वर भावना करने वाला, विद्या रूपादि युक्त, मानस्तम्भादि से रहित प्रह्लाद कृष्ण भगवान् स्वरूप में परा भक्ति से अनुरक्त हुआ उच्च स्वर से गाता है कभी नाचता है, हंसता कभी रोता है कभी असुर

बालकों को शास्त्रों के सिद्धान्त रहस्य सुनाता है। नारद कहते हैं हे युधिष्ठिर ऐसे निष्पाप पुत्र में असुर द्वेष करता है॥ ६ ॥

अ० ५ श्लो० ४-५-११-१२

एकदासुरराट् पुत्रमङ्कमारोप्य पाण्डव ।
पप्रच्छ कथ्यतां वत्स मन्यते साधु यद् भवान् ॥१०॥

तत् साधु मन्येऽसुरवर्य देहिनां सदा समुद्विग्नधियामसद्ग्रहात् । हित्वाऽऽत्मपातं गृहमन्धकूपं वनं गतो यद्धरिमाश्रयेत ॥ ११ ॥

स्वः परश्चेत्यसद्ग्राहः पुंसांयन्मायया कृतः ।
विमोहितधियां दृष्टस्तस्मै भगवते नमः ॥१२॥

स यदानुव्रतः पुंसां पशुबुद्धिर्विभिद्यते ।
अन्य एष तथान्योऽहमिति भेदगतासती ॥१३॥

नारदने कहा हे युधिष्ठिर असुरों के पुरोहित शुक्राचार्य के शण्डा, मर्क, नाम के दो पुत्र असुर बालकों को तथा प्रह्लाद को पढ़ाते थे। तब एक दिन हिरण्यकशिपु प्रह्लाद पुत्र को गोद में लेकर पूछते हैं कि हे पुत्र कहो आप संसार में जो श्रेष्ठ कर्त्तव्य मानते हो सो क्या है॥ १० ॥ प्रह्लाद

ने कहा कि हे असुर श्रेष्ठ संसार के देह पुत्रादि में अहंमम ऐसे मिथ्याभिमान से सम्यक् उद्विग्न चित्त वाले प्राणियों को गृहादि का त्याग कर जो वनमें जाकर अनन्य चित्त होकर पापहारी हरि को आश्रयण करता है सो में श्रेष्ठ मानताहूँ। यह गृह कैसा है निज धर्म तथा मोक्ष रूप से अधः नरकादि में पतन कारी है, अन्धकूपके समान मोह कारी है ॥ ११ ॥ हिरण्यकशिपु पुत्र के ऐसे वचनों को सुनकर हंसे और अध्यापकों को कहा कि आप लोकों के पढ़ाने पर यह वाल विष्णु के पक्षपातियों की वार्ता क्यों बोलता है। ऐसा करो जिससे विष्णु पक्षपातियों की वार्ता प्रह्लाद सुनने न पाये। तब शण्डा मर्क ने कहा हे वत्स प्रह्लाद ऐसी विचारवाली बुद्धि तुम्हारे को किसकी शिक्षा से हुई है या अपने आपही ऐसी बुद्धि हो गई है यह सत्य कहो। प्रह्लाद ने कहा भो गुरो ! स्व और पर ऐसा मिथ्या हठ जिस ईश्वर की माया से मोहित बुद्धि वाले पुरुषों को हुआ देखा जाता है तिस भगवान् ईश्वर के लिये नमस्कार है ॥ १२ ॥ जब वह भगवान् ईश्वर जिसके अनुकूल होता है तब पशुओं के समान अविवेकी पुरुषों की मिथ्या बुद्धि ही यह भिन्न है और मैं भिन्न हूँ ऐसे भेदवाली मिथ्या

बुद्धि नाश हो जाती है। ब्रह्मात्मस्वरूपाद्वय सच्चिदानन्द में बुद्धि स्थिर हो जाती है॥ १३ ॥

अ० ५ श्लो० २३-२४-३४-४१

श्रवणं कीर्तनं विष्णोः स्मरणं पादसेवनम् ।
अर्चनं वन्दनं दास्यं सख्यमात्मनिवेदनम् ॥१४॥
इति पुंसार्पिता विष्णौ भक्तिश्चेन्नवलक्षणा ।
क्रियते भगवत्यद्धा तन्मन्येऽधीतमुत्तमम् ॥१५॥
आहामर्षरुषाविष्टः कषायीभूतलोचनः ।
वध्यतामाश्वयं वध्यो निःसारयत नैर्ऋताः ॥१६॥
परे ब्रह्मण्यनिर्देश्ये भगवत्यखिलात्मनि ।
युक्तात्मन्यफला आसन्नपुण्यस्येव सत्क्रियाः ॥१७॥

ऐसा सुनकर गुरुओं ने कहा हे दुष्ट तुम असुरों के कुल रूप चन्दन वन को काटने के लिये विष्णुरूप कुठार का सहकारी कण्टक वृक्ष के दण्ड समान है। ऐसे नाना शाम, दाम, भेद, दण्डों से शासना करते हुए हिरण्यकशिपु के चरणों में लाकर प्रह्लाद को डालदिया। तब असुरराज ने गोद में लेकर पूछा हे पुत्र कहो गुरु से तुमने क्या शिक्षा ली प्रह्लाद ने कहा विष्णु का ही श्रवण करना, गुण, कीर्तन,

स्मरण करना, हरिपादसेवा, हरिपूजा हरिका दास होना हरि का ही सखा होना, हरि को देह समर्पण करना ॥१४॥

श्री विष्णोः श्रवणे परीक्षदभवद्वैयासकीःकीर्तने ।
प्रह्लादःस्मरणे तदंघ्रिभजने लक्ष्मी पृथुः पूजने ॥
अक्रूरस्त्वभिवन्दने कपिपतिर्दास्येऽथसख्येऽर्जुनः ।
सर्वस्वात्मनिवेदनेबलिरभूत्कृष्णाप्तिरेषां परा ॥१॥
शांडिल्यसूत्रेस्वप्नेश्वरोक्तिः ॥

ऐसे नवधा भक्ति के पढने से जो विष्णु भगवान् में पुरुष करके नव प्रकार की भक्ति पूर्वक चित्त अर्पित किया जाता है सो पढ़ना ही मैं श्रेष्ठ मानता हूँ इस शिक्षा से और बढकर शिक्षा नहीं है ऐसा सुनकर हिरण्यकशिपु ने कहा कि हे शण्डामर्क यह नीच शीक्षा तुमने बालक को क्यों दी शण्डमर्क ने कहा कि यह शिक्षा हमने नहीं दी । तब असुर ने कहा अरे दुष्ट प्रह्लाद यह नीच बुद्धि की शिक्षा तुमने कहां से सीखी है ॥१५॥ प्रह्लाद ने कहा भो पितः! विष्णु में अजितेन्द्रिय पुरुषों की मति स्वयं वा गुरु शिक्षा से भी स्थिर नहीं हो सकती है । जब तक वीतराग महात्माओं की पाद रज का स्पर्श नहीं होता तब तक विष्णु का स्वरूप जानना अशक्य है । ऐसा सुनकर हिरण्यकशिपु ने प्रह्लाद को गोद से नीचे पटकदिया अति क्रोध युक्त ताम्र के समान

रक्त लोचन हुआ कहता है हे राक्षसों यह दुष्ट वध करने योग्य है। मेरी दृष्टि से शीघ्र ही दूर करो, मारडालो, विष्णु का पक्षपाती यह ही मेरे भ्राता का हनन कर्ता है ॥१६॥

ऐसा सुनकर भयकारी राक्षस प्रह्लाद के मर्म स्थान में खड्ग त्रिशूलों का प्रहार करने लगे परन्तु सच्चिदानन्द पर ब्रह्म में मन इन्द्रियों के अगोचर भगवान् सर्व के आत्मा-परमात्मा में युक्त हुए आत्म निष्ठ प्रह्लाद में राक्षसों के प्रहार ऐसे निष्फल हो गये। जैसे पुण्यहीन के लिये शुभ महान् उद्यमभी निष्फल होजाते हैं। तब असुर को अति शंका हुई हस्ति विषादि नाना उपायों से पुत्र को मारना चाहा। ऐसे भयभीत हीरण्यकशिपु को शण्डामर्कों ने कहा कि आप के भय से सब लोक पाल कांपते हैं तो आप क्यों डरते हो हम इसको और समझाते हैं असुर ने कहा अच्छा ॥१७॥

अ. ६ श्लो. १-३-७-८-९

कौमार आचरेत् प्राज्ञो धर्मान् भागवतानिह ।
दुर्लभं मानुषं जन्म तदप्यध्रुवमर्थदम् ॥१८॥
सुखमैन्द्रियकं दैत्या देहयोगेन देहिनाम् ।
सर्वत्र लभ्यते दैवाद् यथा दुःखमयत्नतः ॥१९॥
मुग्धस्य बाल्ये कौमारे क्रीडतो याति विंशतिः ।

जरया ग्रहस्तदेहस्य यात्यकल्पस्य विंशतिः ॥२०॥
दुरापूरेण कामेन मोहेन च बलीयसा ।
शेषं गृहेषु सक्तस्य प्रमत्तस्यापयाति हि ॥ २१ ॥
को गृहेषु पुमान् सक्तमात्मानमजितेन्द्रियः ।
स्नेहपाशैर्दृढैर्बद्धमुत्सहेत विमोचितुम् ॥ २२ ॥

प्रह्लाद सहित असुर बालकों को पढ़ानेवाले शण्डामर्क गुरु जब कहीं अन्य कार्य के लिये चले गये। तब प्रह्लाद असुर बालकों को बुलाकर प्रेम से शास्त्र का रहस्य कहते हैं। हे मित्रों ! इस मनुष्य जन्म में कौमार अवस्था से ही लेकर बुद्धिमान् असुर भाव को छोड़कर विष्णु श्रवणादि भागवत धर्मों का आचरण करें। क्यों कि मनुष्य जन्म विचार से चार पुरुषार्थों को देने वाला है इसीसे यह जन्म दुर्लभ है। और अनित्य है ॥ १८ ॥ ईश्वर शरण होना ही मनुष्य को कल्याण कारी हैं क्यों कि ईश्वर सर्व प्राणियों का हितकारी है। हे दैत्य बालकों इन्द्रिय सम्बन्धी विषय सुख देह धारी प्राणियों को देह के योग से सर्व योनियों में प्राप्त होता है। जैसे पूर्व किये पापों से दुःख बिनाही यत्न प्राप्त हो जाता है क्यों कि विषय सुखों में प्रयत्नशील ईश्वर शरण न हुआ मोक्ष को प्राप्त नहीं होता

है ॥ १६ ॥ पुरुष देह नाश से पूर्व ही मोक्ष के लिये यत्न करे क्यों कि सौ वर्ष की पुरुष आयु है। तिसमें अति ज्ञान हीन की बालपन में, खेलते हुए की कौमार पन में बीस वर्ष की आयु नाश हो जाती है। जरा से ग्रस्त देह असमर्थ हुए की बीस वर्ष की आयु नाश हो जाती है ॥ २० ॥ शेष मध्य की युवा अवस्था गृह कार्यों में सक्त हुए प्रमादी की दुष्पूर्ण कामनाओं से और बलिष्ठ सम्बन्धियों के मोह करके नाश हो जाती है ॥ २१ ॥ स्त्री पुत्र गृहादि में राग वान् अजितेन्द्रिय पुरुष दृढ़मोह फांसियों से बन्धा हुआ निजको मुक्त करने को कोन समर्थ हो सकता है। जिन विषय पदार्थों के लिये प्राणों को भी देना चाहता है तिनकी इच्छा कैसे त्यागे। कुटुम्ब पोषण के लिये लगा हुआ नष्ट होती निज आयु को नहीं जानता है प्रह्लाद ने कहा हे दैत्य बालकों। सर्व स्थावर जंगम में परमानन्द पर ब्रह्म व्याप्त है असुर भावको छोड़कर तिस सुख स्वरूप ब्रह्म का चिन्तन करो। दैत्य बालकों ने कहा यह आपने कैसे सुना प्रह्लाद ने कहा यह भागवत ब्रह्मज्ञान मैंने नारद से माता के गर्भ में सुना है इस ज्ञान के प्राप्त करने में परिश्रम नहीं होता है ॥ २२ ॥

अ० ७ श्लो० १५-१६-१७-१६-२०-२२-२५

ऋषिः कारुणिकस्तस्याः प्रादादुभयमीश्वरः ।
धर्मस्य तत्त्वं ज्ञानं च मामप्युद्दिश्य निर्मलम् ॥२३॥
तत् तु कालस्य दीर्घत्वात् स्त्रीत्वान्मातुस्तिरोदधे ।
ऋषिणानुगृहीतं मां नाधुनाप्यजहात् स्मृतिः ॥२४॥
भवतामपि भूयान्मे यदि श्रद्दधते वचः ।
वैशारदी धीः श्रद्धातः स्त्रीबालानां च मे यथा ।२५।
आत्मा नित्योऽव्ययः शुद्ध एकः क्षेत्रज्ञ आश्रयः ।
अविक्रियः स्वदृग् हेतुर्व्यापकोऽसङ्ग्यनावृतः ॥२६॥
एतैर्द्वादशभिर्विद्वानात्मनो लक्षणैः परः ।
अहंममेत्यसद्भावं देहादौ मोहजं त्यजेत् ॥ २७ ॥
अष्टौ प्रकृतयः प्रोक्तास्त्रय एव हि तद्गुणाः ।
विकाराः षोडशाचार्यैः पुमानेकः समन्वयात् ॥२८॥
बुद्धेर्जागरणं स्वप्नः सुषुप्तिरिति वृत्तयः ।
ता येनैवानुभूयन्ते सोऽध्यक्षः पुरुषः परः ॥२९॥

प्रह्लाद ने कहा कि मेरे पिता के तप करने को चले जाने पर देवताओं से दैत्य जीते जाने पर इन्द्र मेरी माता को पकड़कर इन्द्रपुरी को लिये जाता था। तब नारद ने

मार्ग में दीन दैत्य पत्नी को देख कर इन्द्र से कहा कि इसको कहां ले जाते हो। इन्द्रने कहा इसके गर्भ में हमारा शत्रु है इसके नाश के लिये ले जाता हूँ। नारद ने कहा छोड़ दो इसको इसके गर्भ में ईश्वर भक्त है सर्व का हित कारी होगा ऐसा कहकर आपके आश्रम में ले जाकर दयालु ईश्वर स्वरूप नारद ऋषि मेरे को लक्ष्य रखकर मेरी माता के शोक शान्तिके लिये धर्मका तत्त्व भक्ति स्वरूप औरआत्मा-नात्म का विवेकरूप शुद्ध आत्मज्ञान दोनो का उपदेश दिया ॥ २३ ॥ सो दोनो ज्ञान मेरी माता को तो दीर्घ काल होने से स्त्री स्वभाव होने से विस्मृत हो गये। और नारद ऋषि से अनुगृहीत मुझको अब तक भी भक्ति स्वरूप, आत्मज्ञान दोनों की विस्मृति नहीं हुई ॥ २४ ॥ हे दैत्य बालकों यदि आप लोकों की मेरे वचनोंमें श्रद्धा है तो स्त्री बालक आप लोको को भी देह में आत्म अहंकार छेदक शुद्ध बुद्धि प्राप्त हो जाएगी। जैसे ईश्वर में श्रद्धा करने से मुझ को ब्रह्मात्माकार शुद्ध बुद्धि प्राप्त हुई हैं ॥ २५ ॥ आत्मा नित्य, निर्विकार, शुद्ध, अद्वितीय, सर्वज्ञाता, अधिष्ठान, निष्क्रिय, आत्मज्योति स्वप्रकाश, सर्वकर्त्ता, विभु सत्य ज्ञान अनन्त, सर्व संग रहित पूर्ण ॥ २६ ॥ इन बारह आत्मा के लक्षण स्वरूपों से विवेक कारियों से देह भिन्न

आत्मा ज्ञात है देहादि में अहंता ममता रूप मोह जन्य असदाग्रह को त्याग दो ॥ २७ ॥ मूल प्रकृति, महतत्त्व अहंकार, शब्द स्पर्श, रूप, रस, गन्ध यह आठ प्रकृति है। सत्य, रज, तम्, यह प्रकृति के गुण है। एकादश इन्द्रिय पंञ्चमहाभूत यह षोडष विकार हैं। और साक्षी रूप से सर्व के साथ सम्बन्धी होने से पूर्ण पुरुष एक अद्वय आचार्यों ने कहा हे ॥ २८ ॥ हे दैत्य बालकों ! जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति, यह तीन बुद्धि की वृत्ति हैं। वो तीन वृत्तियें जिस चेतन साक्षी से अनुभव की जाती हैं। सो सर्व प्रकाश पूर्ण पुरुष पर ब्रह्म है ॥ २६ ॥

अ० ७ श्लो. ५५

एतावानेव लोकेऽस्मिन्पुंसः स्वार्थः परः स्मृतः ।
एकान्त भक्तिर्गोविन्दे यत्सर्वत्र तदीक्षणम् ॥३०॥

हे असुर बालकों ! श्वान, शूकरों को भी होनेवाले विषय भोगों के सम्पादन से प्राणियों का क्या भला हो सकता है। इतनाही इस लोक में पुरुष का परम मोक्ष कारी स्वार्थ है कि परमात्मा में अनन्य भक्ति कर जो सर्व प्राणियों में तिस परमात्मा स्वरूप को सत्कार दृष्टि से ही देखना ॥ ३० ॥

अ. ८ श्लो. १०-१३

जह्यासुरं भावमिमं त्वमात्मनः सम मनो धत्स्व न सन्ति विद्विषः । ऋतेऽजितादात्मन उत्पथस्थितात् तद्धि ह्यनन्तस्य महत् समर्हणम् ॥३१॥

यस्त्वया मन्दभाग्योक्तो मदन्यो जगदीश्वरः । क्वासौ यदि स सर्वत्र कस्मात्स्तम्भे न दृश्यते ॥३२॥

ऐसे प्रह्लाद के उपदेश से सब असुर बालकों को विष्णु परायण देखकर शण्डामर्क ने भय भीत हुओं ने हिरण्यकशिपु से कहा कि यह सब बालक प्रह्लाद सहित हमारी शिक्षा नहीं सुनते हैं। तब असुर राज ने क्रुद्ध होकर कहा कि हे दुष्ट मेरी आज्ञा न मानकर तुम किसके बल से निर्भय हुआ बोलता है। प्रह्लाद ने कहा कि जिसके बल से आप, मैं और यह चराचर विश्व रचा हुआ है। तिस ईश्वर का ही सब को बल है। आप अपने इस असुर स्वभाव को त्याग दे क्यों कि कुपथगामी अजित मन से विना अन्य कोई शत्रु नहीं होते हैं। इससे मनको एक रस सर्व व्यापी परमात्मा में धारण करो। एसा करना ही तिस परमात्मा का महान् आराधन है। षड् इन्द्रियों के सहित मन को न जीतने पर दशों दिशों का जीतना एक मन्द बुद्धिता ही

है ॥ ३१ ॥ हिरण्यकशिपु ने कहा दुष्ट मन्द भाग्य मेरे से भिन्न यदि जगदीश्वर है वो कहां है । प्रह्लाद ने कहा सो ईश्वर सर्वत्र है । हिरण्यकशिपु ने कहा तो स्तम्भ में सब सभा को क्यों नहीं दिखता है । हे मिथ्या वादी दुष्ट अब तेरा सिर खड्ग से काटता हूँ ऐसे कहते हुए ने स्तम्भ को हाथ से ताड़न किया । तबतिसी स्तम्भ में से महान् शब्द करते हुए नरसिंह भगवान् प्रकट होकर असुर संहारी भगवान् ने प्रह्लाद भक्त की रक्षा की ॥ ३२ ॥

शक्रश्चेत्प्रभुरस्ति तेऽहो कथं नायाति मत्सन्निधौ ।
सर्वत्रैव यदस्ति कथं स्तम्भोदरे सदसा न दृश्यते ।
भक्तिर्मे यदि दृढाः वेदा प्रमाणं यदि स्तम्भाभ्यन्तर
वर्तिनो भगवतः स्यात्तूर्णमालोकनम् ॥ १ ॥
क्वेदं वपुश्च वयः कुमारमेतत् क्वेयत्ता प्रमत्त कृद्दारुण यातनास्ते । आलोचितं विषमं यदभूतपूर्वं क्षन्तव्यमङ्ग यदि मे समये विलम्ब ॥२॥ ॥ नृसिंह चम्पू ॥

अ० १३ श्लो० १६-१७-२४-२५

बिभर्षि कायं पीवानं सोद्यमो भोगवान् यथा ।
वित्तं चैवोद्यमवतां भोगो वित्तवतामिह ।
भोगिनां खलु देहोऽयं पीवा भवति नान्यथा ॥३३॥

न ते शयानस्य निरुद्यमस्य ब्रह्मन् नु हार्थो यत एव भोगः । अभोगिनोऽयं तव विप्र देहः पीवा यतस्तद्वद नः क्षमं चेत् ॥३४॥

यदृच्छया लोकमिमं प्रापितः कर्मभिर्भ्रमन् ।
स्वर्गापवर्गयोर्द्वारं तिरश्चां पुनरस्य च ॥ ३५ ॥

अत्रापि दम्पत्तिनां च सुखायान्यापनुत्तये ।
कर्माणिकुर्वतां दृष्ट्वा निवृत्तोऽस्मि विपर्ययम् ।३६।

प्रह्लाद आत्मतत्वों को जानने की इच्छा कर अपनी राजधानी भूमण्डल में विद्वान् वीतरागों को खोजते फिरते थे । तब कावेरी नदी के तट पर वीतराग दत्तात्रेय अवधूत धूलिगात्र वर्णाश्रमादि के लिङ्गों से रहित स्थित थे । तिनके चरणों में श्रद्धा भक्ति से अपना मस्तक लगाकर नमस्कार कर आत्मतत्व जिज्ञासु प्रह्लाद ने पूछा कि भो भगवन् आपने उद्यम सहित भोगवान पुरुष के समान् स्थूल देह को धारण किया है । और उद्यम वाले जनों को धन प्राप्त होता है । धन वालों को संसार में भोग प्राप्त होते हैं । और भोगी पुरुषों का ही निश्चित यह देह स्थूल होता है विना भोगों से देह स्थूल नहीं होता है ॥३३॥ भो भगवन् ! निरुद्यम सोते हुए आपका निश्चित् धन कोई देखा नहीं जाता है कि

जिस धन से आपको भोग प्राप्त हो। भोगहीन आपका यह देह स्थूल जिससे हुआ है हे विप्र सो यदि कहना योग्य हो तो हमारे को कहो। वित्तार्जन में असमर्थ भी धन उपार्जन में उद्यम करते हैं। आप विद्वान् चतुर लोक रञ्जन प्रिय कथा कर्ता समर्थ हुए भी उद्यम नहीं करते हैं ॥३४॥ दत्तात्रेय ने प्रसन्नहोकर कहा हे असुरश्रेष्ठ आप प्रवृत्तिनिवृत्ति निष्ठनरोंके स्थान, फल चेष्टाओं को जानते ही हो। तोभी आपके पूछने पर हम कहते हैं कि भव प्रवाहकारी तृष्णा से कर्म करते हुए नाना योनियों में भ्रमते हुए दैवयोग से पुण्य कर्मों कर के इस मनुष्य देहको प्राप्त हुआ हूँ। कैसा मनुष्य देह है। धर्म करने से स्वर्ग का द्वार है। अधर्म करनेसे श्वान सूकरादि योनियों का द्वार हैं। मिश्रित पुण्य पापों से मनुष्य योनि का द्वार है। निवृत्ति पक्ष धारण से मोक्ष का द्वार है ॥३५॥ इस मनुष्य देह के प्राप्त होने पर भी स्त्री पुरुषों को सुख की प्राप्ति के लिये दुःख निवृत्ति के लिये नाना कर्म करते हुओं को उलटा दुःख प्राप्त हुआ ही देखकर मैं इस संसार से निवृत्त हुआ हूँ ॥३६॥

अ० १३ श्लो० २६-३१-३४-४०-४६

सुखमस्यात्मनो रूपं सर्वेहोपरतिस्तनुः । मनः सं-स्पर्शजान् दृष्ट्वा भोगान् स्वप्स्यामि संविशन् ॥३७॥

पश्यामि धनिनां क्लेशं लुब्धानामजितात्मनाम् ।
भयादलब्ध निद्राणां सर्वतोऽभिविशङ्किनाम् ॥३८॥
मधुकार महासर्पौ लोकेऽस्मिन्नो गुरूत्तमौ ।
वैराग्यं परितोषं च प्राप्ता यच्छिक्षया वयम् ॥३९॥
क्वचिच्छये धरोपस्थे तृणपर्णाश्मभस्मसु :
क्वचित् प्रासादपर्यङ्के कशिपौ वा परेच्छया ॥४०॥
धर्मं पारमहंस्यं वै मुनेः श्रुत्वासुरेश्वरः ।
पूजयित्वा ततः प्रीत आमन्त्र्य प्रययौ गृहम् ॥४१॥

यदि कहें प्रवृत्ति से सुख होता है निवृत्ति से नहीं ऐसा नहीं क्यों कि सुख निज आत्मा का स्वरूप ही है । सर्व प्रवृत्ति की इच्छा रहित होने पर स्वतः ही आत्म सुख विस्तार मे प्रकाशित होता है । तिस आत्मसुख में मैं मग्न हूँ । सर्व भोगों को मन के संकल्प से मनो राज्य मात्र जन्यों को अनित्य देखकर निरुद्यम हुआ वन में प्रारब्ध से प्राप्त भोगों को भोगता हुआ सोता हूँ ॥३७॥

कष्ट से विना भी धन प्राप्त होने में दुःखही है । क्यों कि धनके लोभियों को अजित मन इन्द्रिय पुरुषों को सर्व से धन हरण की शंका कारियों को, रात्री में चोरो के भय से अप्राप्त निद्रा वाले धन रक्षक धनियों को महा क्लेश

युक्त देखता हूँ। और राजा से, चोर से, शत्रु से, स्वजनों से पशुपक्षियों से, अतिथियों से कालादि से धनी को नाना भय बने रहते हैं। नाना क्लेशों के मूल धन को त्याग कर विद्वान् जीवन्मुक्ति का आनन्द लेते हैं ॥ ३८ ॥ प्रह्लाद ने कहा आपने वैराग्यादि को कैसे प्राप्त किया है। दत्तात्रेय ने कहा हमारे इस लोक में मधुकार अजगर सर्प, यह दो श्रेष्ठ गुरु हैं। जिन दोनों की शिक्षा से हम वैराग्य और सन्तोष को प्राप्त हुए हैं। जैसे मधुकार के कष्ठ से प्राप्त किये मधुको नोच कर दूसरा ही खाजाता है। इस हेतु से संग्रह से वैराग्य ही सुखकारी जाना है। अजगर सर्प से हमने यथा लाभ में संतोष करना सीखा है। यह हमारे प्रसन्न और स्थूल पने में हेतु है ॥ ३९ ॥ कहीं तो पृथ्वी रूप बिछौने पर सोता हूँ और कहीं घास, पत्र पत्थर, भस्म रूप बिस्तरों पर सोता हूँ कहीं अच्छे मकानों में पलंग पर तकिये बिछौने पर दूसरे पूरुषों की इच्छा से सोता हूँ। मानापमान कर्ता जनों में विषमता न कर न किसी की निन्दा न स्तुती करता हूँ। निज एक आत्मानन्द में मग्न हूं ॥ ४० ॥ नारद ने कहा हे युधिष्ठिर ऐसे वीतराग ब्रह्म-निष्ठों के परमहंस धर्म को मुनि दत्तात्रेय से सुन कर प्रह्लाद

प्रसन्न हो मुनि की पूजा करके तिनसे पूछकर आज्ञा लेकर निजराजधानी को चले गये ॥ ४१ ॥

अ० १४ श्लो. ७-८-११-१२

दिव्यं भौमं चान्तरिक्षं वित्तमच्युतनिर्मितम् ।
तत् सर्वमुपभुञ्जान एतत् कुर्यात् स्वतो बुधः ।४२।
यावद् भ्रियेत जठरं तावत् स्वत्वं हि देहिनाम् ।
अधिकं योऽभिमन्येत स स्तेनो दण्डमर्हति ॥४३॥
आश्वाघान्तेवसायिभ्यः कामान् संविभजेद् यथा ।
अप्येकामात्मनो दारां नृणां स्वत्वग्रहो यतः ॥४४॥
जह्याद् यदर्थे स्वप्राणान् हन्याद् वा पितरं गुरुम् ।
तस्यां स्वत्वं स्त्रिया जह्याद् यस्तेन ह्यजितो जितः ।४५

सद् गृहस्थ धन के अभाव में कैसे निर्वाह करे । दिव्य भौम अन्तरिक्ष यह जो तीन प्रकार का धन परमात्मा से उत्पादन किया जानकर निर्वाह करे, दिव्य धन जैसे राजा रघु को कुबेर की कृपा से बारह योजन की निधि प्राप्त हुई थी। कृषि आदि से या भूमि से निधि प्राप्त होना यह भौम धन है। जो अकस्मात् व्यापारादि से प्राप्त धन है, सो अन्तरिक्ष धन कहा है। ऐसे भगवत् कृपा से स्वप्रारब्ध

अनुसार प्राप्त धन को। सर्व का साधारण जानकर पांच विभाग से भोगता हुआ प्राणधारणादि जीवन निर्वाह को बुद्धिमान् स्वयं यहां का हित और परमार्थ हित जान कर करें॥४२॥जितने धन से उदर पूर्ति हो उतना धन पुरुषों को स्वीकार करने में दोष नहीं। जो उदर पूर्ति से अधिक धन को व्यसनों के लिए स्वकीय रूप से संग्रह करता है। वह पुरुष ईश्वर का चोर है, ऐसे चोर को जन्ममरणादि दुःखानुभव रूप दण्ड होना योग्य है ॥ ४३ ॥ सद्गृहस्थ त्रिवर्ग रूप धर्मार्थ काम रूप तीन संसारी पुरुषार्थों को यथा देश यथा काल के अनुसार दैव प्राप्तों का सेवन करे। श्वान पतित, चांडालादि से लेकर सर्व प्राणियों के लिये जैसे यथायोग्य निज के काम भोग पदार्थों का विभाग कर,सत्कार से देता है। तैसे जिस स्त्री में पुरुष का स्वकीय रूप से स्वत्व माना हुआ है। मेरी यह स्त्री है ऐसा आग्रह है, तिसनिज एक स्त्री से निज सेवा न लेकर अतिथि आदि सेवा शुश्रूषा में नियुक्त करना ही स्त्री का विभाग करना है। अन्यथा नहीं, क्यों कि " पतिरेवगुरु स्त्रीणां " स्त्रियों को शिक्षादि देने में पति को गुरुकहा है। पति से अन्य स्त्री को गुरु करना शास्त्र में कहा नहीं॥ ४४ ॥ जिस स्त्री के निमित्त बहुत से निज प्राणों का भी घात कर देते हैं! और पिता, गुरु का

भी घात करने में तत्पर हो जाते हैं। तिस स्त्री में स्वकीय स्वत्व त्याग दिया है जिसने, तिस पुरुष ने जानों जो अन्यों से नहीं जीता गया भगवान्' तिस को भी जीत लिया, जानो प्रसन्न कर लिया तिस पुरुष को संसार में क्या दुर्लभ वस्तु है। अर्थात स्त्री में रागहीन पुरुष की आत्मतत्व विचार में योग्यता हो जाती है॥ ४५ ॥

अ० १५ श्लो० १६-२१-२२-३६-३८-४०-४७

सन्तुष्टस्य निरीहस्य स्वात्मारामस्य यत् सुखम्।
कुतस्तत् कामलोभेन धावतोऽर्थेहया दिशः ॥४६॥
पण्डिता बहवो राजन् बहुज्ञाः संशयच्छिदः।
सदसस्पतयोऽप्येके असन्तोषात् पतन्त्यधः ॥४७॥
असङ्कल्पाज्जयेत् कामं क्रोधं कामविवर्जनात्।
अर्थानर्थेक्षया लोभं भयं तत्वावमर्शनात् ॥४८॥
यः प्रव्रज्य गृहात् पूर्वं त्रिवर्गावपनात्पुनः।
यदि सेवेत तान् भिक्षुः स वै वान्ताश्यपत्रपः ॥४९॥
गृहस्थस्य क्रियात्यागो व्रतत्यागो वटोरपि।
तपस्विनो ग्रामसेवा भिक्षोरिन्द्रियलोलता ॥५०॥
आत्मानं चेद् विजानियात् परं ज्ञानधुताशयः।

किमिच्छन् कस्य वा हेतोर्देहं पुष्णाति लम्पटः ॥५१॥

प्रवृत्तं च निवृत्तं च द्विविधं कर्म वैदिकम् ।

आवर्तेत प्रवृत्तेन निवृत्तेनाश्नुतेऽमृतम् ॥ ५२ ॥

नारदजी यतियों के धर्म कहते हैं कि तीर्थयात्रार्थ धर्म के लिये भी धन की इच्छा न करे निष्प्रिह सन्तुष्टमन वाले निजात्मानन्द मग्न को जो सुख होता है सो सुख काम लोभ करके धनकी ईच्छा से दशों दिशा में भ्रमण कर्ता तृषालु को कहां से होसकता है। उपस्थजिह्वा दो इन्द्रियों के वशी भूत कृपणता से असन्तुष्ट जन कुत्ते जैसा मारा मारा फिरता है। अर्थात् नहीं होसकता। जैसे पादमें पादत्राण वाले को सर्व दिशा कण्टक रहित होजाती हैं तैसे सन्तुष्ट मन वाले को सर्व दिशा सुख रूप होजाती है ॥४६॥

हे राजन् ! बहुत से पण्डित बहु शास्त्र ज्ञाता भी संशय छेदक सभापति हुए भी असंतोष से अधः पतन ही होते हैं ॥४७॥ मनके संकल्पों से रहित हुआ काम को जय करे कामना रहित होने से क्रोध को जय कर सकता है। अर्थ रूप धनमें अनर्थ दर्शन से धन इच्छा का जय होता है। ब्रह्मात्म स्वरूप अद्वैत के विचार से सर्व भय का जय होता है ॥४८॥ जो सन्यास करके भी भोग पदार्थों की इच्छा करता है तिसकी शास्त्रों

में निन्दा की है। कि यदि धर्म, अर्थ, काम, रूप तीन वर्ग के उत्पादक गृह से वैतृष्णा वैराग्य विना सन्यास करके फिर तिन भोग पदार्थों का संग्रह कर सेवन करता है। सो सन्यासी निर्लज्ज निश्चित वान्ताशी नाम वमन भोजी है ॥४६॥ स्वाश्रम के धर्म से पतितों की चारों आश्रमों की निन्दा की है। क्रिया कर्म त्यागी गृही को, गुरू सेवा और अष्ट प्रकार के मैथुन का न सेवन करना रूप व्रत के त्यागी ब्रह्मचारी को ग्रामवास सेवी वानप्रस्थी तपस्वी को, इन्द्रिय चपलता वाले यति को पतित कहा है। यह चारों आश्रमी स्व स्व आश्रमों के धर्मों मे पतित कहे हैं ॥५०॥

इन्द्रियजित ज्ञान से निरस्त अविद्या शक्ति वाला विरक्त निजात्म स्वरुप पर ब्रह्म को यदि जानले तो किस विषय पदार्थ की ईच्छाकर किस कारण से किस भोक्ता के लिये देह को तपाय मान करेगा। या देह को विषय सेवन से पुष्ट करेगा अर्थात् नहीं करेगा ॥ ५१ ॥ वैदिक कर्म दो प्रकार के हैं एक प्रवृति रूप है दूसरा निवृत्ति रुप हैं। नाना क्रिया कर्म प्रवृत्ति से संसार चक्र में प्राप्त होता है। और सर्व संसारिक आरम्भों की निवृत्ति से अद्वय ब्रह्मात्मनिष्ठ कैवल्य मोक्ष को प्राप्त होता है जिसकी जैसी इच्छा हो तैसे करे॥ ५२॥

इति श्रीभागवतसारबिन्दौ सारार्थदीपिका भाषाटीकायां सप्तम स्कन्ध.

॥ अथ अष्टम स्कन्धः ८ ॥

अ. १ श्लो. ६-१०

येन चेतयते विश्वं विश्वं चेतयते न यम् ।
यो जागर्ति शयानेऽस्मिन्नायं तं वेद वेद सः ॥ १ ॥
आत्मावास्यमिदं विश्वं यत् किञ्चिज्जगत्यांजगत् ।
तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा मा गृधः कस्यस्विद्धनम् ॥२॥

सर्व अनात्म संसार से विरक्त होकर मनुजी कहते हैं कि जिस चिदात्मा करके यह विश्व चेतन रूप हुआ चेष्टा करता है। और जिस चिदात्मा को यह विश्व चेतन नहीं कर सकता है। क्योंकि आत्मा को स्वतः चेतन होनेसे इस इन्द्रिय संघात के सोने पर जो चिदात्मा साक्षी रूप से जागता है। अहो चित्रं जो अज्ञानी जन तिस चिदात्मा को नहीं जानता है। सो चिदात्मा इस सर्व विश्व को जानता है ॥ १ ॥ तिस चिदात्माकी ईश्वरता दिखलाते हुए लोक के हित उपदेश करते हैं। यावत चतुर्दश लोक रूप यह विश्व संसार में इदंता रूप से दिखता है। सो सब आत्मा स्वरूप ईश्वर करके व्याप्त है। तिस हेतु से सर्वस्व को ईश्वरार्पण रूप त्याग करके ब्रह्मात्म स्वरूप बुद्धि का पालन

करो। किसी के भी धनकी इच्छा न करे। यह ईशावास्योपनिपत् के कथन से मनुजी ने वीतराग परमहंसों के धर्म कहे। यदि संसारिक धन, धान्य राज्यादि से मोक्ष होता तो मनुजी साम्राज्य को क्यों त्यागते। इसीसे वैराग्ययुक्त ज्ञान ही मोक्षकारी है ॥ २ ॥

अ० २ श्लो. ३२

न मामिमेज्ञातय आतुरं गजाः कुतः करिण्यः प्रभवन्ति मोचितुम्ः। ग्राहेण पाशेन विधातुरावृतोऽप्यहं च तं यामि परं परायणम् ॥३॥

जब अहंकार मदमुक्त गजेन्द्र को ग्राहने जल क्रीड़ा करते को पांव से पकड़ लिया तब गजेन्द्र ने मुक्त होने के लिये सब बल लगाया। परन्तु प्रबल ग्राह से मुक्त न हो सका तब गजेन्द्र को अन्तिम यह विचार हुआ कि ग्राह से अति पीड़ित मुझ को यह मेरी ज़ाती वाले गज ग्राह से मुक्त कराने में समर्थ न हो सके तो यह हस्तिनियां तो क्या हो मुक्त करा सकती हैं। ऐसे संकट में जब कोई सहायक न मिला, तब पूर्व पुण्य पुन्ज प्रभाव से एक ईश्वर की शरण होना ही रुचा। कि अब मैं ग्राहरूप विधाता की पाश से बद्ध हुआ भी, परब्रह्मादि के आश्रयरूप, परब्रह्म परमेश्वर की शरण को ही प्राप्त होऊं जिसकी शरण लेने पर फिर

दूसरे की शरण न लेना पड़े। ऐसे अति आपत्तियों के आने पर भी पुण्यात्माओं को परमेश्वर परायण होना ही रुचता है। पापियों को नहीं। तब निज परायण हुए भक्त के कष्ट को न सहते हुए भगवान् ने गरुड़ारूढ होकर गजेन्द्र को ग्राह से मुक्त करदिया। इसी हेतु से कुन्ती जैसी पुण्य-शीलाओंने ईश्वर प्राप्ति का हेतु विपत्ति को ही मांगा है॥३॥

अ० ७ श्लो० २३-२४

गुणमय्या स्वशक्त्यास्य सर्गस्थित्यप्ययान् विभो।
धत्से यदा स्वदृग् भूमन् ब्रह्मविष्णुशिवाभिधाम् ॥४॥

त्वं ब्रह्म परमं गुह्यं सदसद्भाव भावनः।
नानाशक्तिभिराभातस्त्वमात्मा जगदीश्वरः ॥५॥

जब अमृत के लिये असुर और देवताओं ने समुद्र मथा तब मन्थन करने से महाकष्ट कारी विष उत्पन्न हुआ तिस विष से देव असुर सब पीड़ित हो गये। ब्रह्मा विष्णु भी रक्षा न कर सके। और ब्रह्माण्ड पुराण में कहा है किः-

"तं दृष्ट्वा रक्त गौराङ्गं कृतं कृष्णं जनार्दनम्।
ततः सर्वे वयं भीतास्त्वामेव शरणं गताः ॥

भो महादेव! हम असुर और देवता तिस विष्णु जनार्दन को गौर रक्त रंग वाले को श्याम वर्ण वाला हुआ

देखकर तिस विष्णु के श्याम होने के भय से भयभीत हुए हम सव ही आपकी शरण को प्राप्त हुए हैं आपही एक हमारे रक्षक हो और कोई नहीं है। भो विभो! स्वत सिद्ध ज्ञान शिव आप जब निज गुणमयी माया शक्ति करके इस संसार के सर्ग स्थिति लयों को धारण करते हो। तब ब्रह्मा विष्णु, रुद्रादि संज्ञा को धारण करते हो ॥ ४ ॥ आपही मन इन्द्रियों के अगोचर परब्रह्म हो आपही स्थूल सूक्ष्म रूप देव, मनुष्य, तिर्यग आदि पदार्थों को उत्पादन करते हो। आपही नाना शक्तियों करके प्रतीत होते हो। आपसे भिन्न कुछ नहीं है। आपही सर्व के आत्मा जगदीश्वर हो। इस प्रकार शिवका विष्णु के साथ अभेद करके देवासुरों ने स्तवन किया। तब महादेव विष्णु ब्रह्मादि देवताओं पर कृपा करते हुए सर्व व्यापी विष को निज योग शक्ति से हाथ में लेकर पान कर गये। तो भी हलाहल विषने अपना प्रभाव महादेव के गले में नीलता का चिन्ह दिखा ही दिया। और महा पुरुषों को दूषण भी भूषण रूप ही हो जाते हैं। तब से महादेव की नील कण्ठ नाम से स्तुती की जाती है ॥ ५ ॥

अ० १६ श्लो० २० २१-२२-२४

न पुमान् मामुपव्रज्य भूयो याचितुमर्हति।

तस्माद् वृत्तिकरीं भूमिं बटो कामं प्रतीच्छ मे ॥६॥
यावन्तो विषयाः प्रेष्ठास्त्रिलोक्यामजितेन्द्रियम् ।
न शक्नुवन्ति ते सर्वे प्रतिपूरयितुं नृप ॥७॥
त्रिभिः क्रमैरसन्तुष्टो द्वीपेनापि न पूर्यते ।
नववर्षसमेतेन सप्तद्वीपवरेच्छया ॥ ८ ॥
यदृच्छयोपपन्नेन सन्तुष्टो वर्तते सुखम् ।
नासन्तुष्टस्त्रिभिर्लोकैरजितात्मोपसादितैः ॥ ९ ॥

भगवान् वामन रूप होकर स्वर्ग से पतित देवताओं को स्वर्ग प्राप्ति कराने के लिये बलि के यज्ञ में गये । तब यज्ञ में वामन बटु रूप भगवान् का सब ने पूजा सत्कार किया, बलि ने विशेष कर पूजा सत्कार किया । और कहा कि मेरे से आप कृपा करके कुछ मांगे । श्री वामन बटु ने कहा कि शरीर निर्वाहक परिग्रह पुरुष को पापकारी नहीं होता है । इस हेतु से मेरे पाद के माप से तीन कदम भूमि आप मुझको भजन के लिये दें । बलिने कहा भो बटो ! पुरुष मुझको प्राप्त होकर फिर किसी दूसरे से याचना करने योग्य नहीं रहता है तिस हेतु से आप स्व इच्छानुसार पूर्ण जीविका कारी भूमि मुझ से मांगे ॥ ६ ॥ श्री वामन बटु

ने कहा हे नृप यावत् भी तीन लोक में प्रिय सुखकारी विषय हैं। वे सब विषय अजितेन्द्रिय पुरुष की कामना पूर्ति करने को समर्थ नहीं हो सकते हैं ॥ ७ ॥

जो तृपालु जन शरीर निर्वाहक तीन कदमों से असन्तुष्ट हैं। वो सप्तदीप भूमि के वरकी इच्छा करके, नव वर्ष सहित एक द्वीप से भी पूर्ण नहीं होता है ॥८॥

पवित्रे निर्जने देशे शर्करादिविवर्जिते ।
धनुःप्रमाणपर्यन्ते शीताग्नि जल वर्जिते ॥

योगकुण्डल्युपनिषद् में कहा है, कि एकान्त सेवी भजन करने वाले को शुद्ध निर्जन देश में कंकर कंटक बालु शीताग्नि अधिक जलप्रवाह आदि से रहित भूमि में कुटी बनानी चाहिए। कितने परिमाण की कुटी होना चाहिए। वह कुटी धनुष प्रमाण पर्यन्त लम्बी चौड़ी होनी चाहिए । तीन कदम का चार हाथ धनुष होता है। इस उपनिषद् वेद के अनुसार भगवान् वामन ने बलि राजा से निज पाद के नाप से तीन कदम भूमि भजन के लिए मांगी थी।

कुटिया तहां एकान्त संभारे-धनुष प्रमाण न बहु विस्तारे।

जैसे देव इच्छा से प्राप्त वस्तु करके सन्तुष्ट जन सुखी होता है। तैसे असन्तुष्ट जन अजित मन तृपालु तीन लोकों के प्राप्त होने से भी सुखी नहीं होसकता है ॥९॥

अ. १९ श्लो. २५-३७-४३

पुंसोऽयं संसृतेर्हेतु रसंतोषोऽर्थकामयोः ।
यदृच्छयोपपन्नेन सन्तोषो मुक्तये स्मृतः ॥१०॥
धर्माय यशसेऽर्थाय कामाय स्वजनाय च ।
पञ्चधा विभजन् वित्तमिहामुत्र च मोदते ॥ ११ ॥
स्त्रीषु नर्मविवाहे च वृत्यर्थे प्राणसङ्कटे ।
गोब्राह्मणार्थे हिंसायां नानृतं स्याज्जुगुप्सितम् १२

स्त्री पुत्र धनादि में असन्तोष ही इस पुरुष को संसार को प्राप्ति का कारण है। और दैव इच्छा से यथा लाभ करके सन्तोष करना ही पुरुष को मुक्ति के लिए कहा है।१०।

देव इच्छा लाभ सन्तुष्ट ब्राह्मण का तप तेज सर्व प्रकार से बढ़ता है और सन्तोष न करने से तप तेज ऐसे नष्ट हो जाता है जैसे जल पड़ने से प्रज्वलित अग्नि नष्ट होजाती है। तिसी हेतु से तीन पाद भूमि ही आपसे मांगता हूँ जितने से देह निर्वाह सिद्ध हो उतनाही धन पुरुष को सुख कारी है। देह निर्वाह से अधिक धन क्लेशकारी होता है।११ श्री वामन बटु के ऐसे वचन सुनकर शुक्र ने बलि से कहा कि हे राजन्, यह विष्णु वामन रूप छल करके स्वर्ग को तुम्हारे से छीनकर इन्द्र को देना चाहते हैं। दो पाद

से तुम्हारे भूलोक और स्वर्ग लोक को माप लेगें तो तीसरे पाद की क्या गति होगी । यदि कहो कि देना कह कर नहीं देते ऐसा झूंठ प्रह्लाद का पौत्र होकर मैं कैसे बोलूं तिस में यह शास्त्रों का कथन है कि स्त्रियों को प्रोत्साह से वशी करने में, परिहास में, विवाह में वर की स्तुति करने में, निज सर्वस्व जीविका अर्थ, प्राणों के सङ्कट में, गौ ब्राह्मणों के हितार्थ, किसी भी प्राणी की हिंसा से रक्षा होने में इतनी जगे झूंठ बोलना पापकारी अथवा निन्दित नहीं है ॥ १२ ॥

अ० २० श्लो० ४-७-११

न ह्यसत्यात् परोऽधर्म इति होवाच भूरियम् ।
सर्वं सोढुमलं मन्ये ऋतेऽलीक परं नरम् ॥१३॥
श्रेयः कुर्वन्ति भूतानां साधवो दुस्त्यजासुभिः ।
दध्यङ्शिबिप्रभृतयः को विकल्पो धरादिषु॥१४॥
यजन्ति यज्ञक्रतुभिर्यमादृता भवन्त आम्नायविधान कोविदाः । स एव विष्णुर्वरदोऽस्तु वा परो दास्याम्यमुष्मै क्षितिमीप्सितां मुने ॥१५॥

शुक्राचार्य गुरु के ऐसे वचनों को सुनकर बलिने कहा भो गुरो ! प्राह्लादि होकर मैं धन के लोभ से मिथ्या कैसे

बोलूं। और यह भूमि भी कहती है कि मिथ्या भाषण से परे बढ़कर और कोई अधर्म नहीं है। एक मिथ्या वादी नर को छोड़ कर और सर्व प्राणियों का भार सहन करना मैं पूर्ण रूप से सुखकारी मानती हूँ परन्तु मिथ्या वादी के भारको सहन करने में मैं समर्थ नहीं हूँ ॥ १३ ॥ जो जो धनादिक सर्व पदार्थ हैं वो मरें हुए नर को सब त्याग देते हैं तो फिर जीतेही क्यों न स्वयं पात्र में दान देकर धन का त्याग करदे। अहो संसार में वही साधु श्रेष्ठ पुरुष प्रातः स्मरणीय हैं। जो दुस्त्यज प्रिय प्राणों को दे करके सर्व प्राणियों का कल्याण करते हैं। दधीच ऋषि ने निज़ अस्थियें देकर इन्द्रादि देवताओं का कल्याण किया है। शिबिराजा ने कपोत पक्षी की रक्षा के लिये निजदेह का समस्त मांस काट कर इन्द्र को देदिया। और हरिश्चन्द्रादि ने धन, स्त्री पुत्रादि निजदेह तक भी अपने वाक्य सत्य करने के लिये नीचों के हाथ में बेच दिये हैं। मुझको केवल भूमि आदि के देने में क्या विकल्प करने की अवश्यकता है। और यदि विष्णु है तो उनको अवश्य ही जो मागें सोइ देऊंगा ॥ १४ ॥ क्यों कि वेदों की विधियों के ज्ञाता आप जैसे ऋषि जिस सर्व व्यापी विष्णु को आदर सत्कार से यूप रहित यज्ञ, यूप सहित क्रतुओं करके यजन करते हैं।

भो मुने सो सर्व व्यापी विष्णु सर्व पुण्यों के फल दाता हों अथवा और कोई शत्रु हों। इसके लिये तो इनकी इच्छा के अनुसार भूमि और जो कुछ भी मांगे सो देऊंगा जब तीन पाद भूमि के दान का संकल्प बलिने दिया। तब श्री वामन वटुने दो पादों से भूमि और स्वर्ग को माप लिया। तीसरे पादकी भूमि न होने से गरुड़ ने विष्णु की इच्छा से बलि को पाश से बांध लिया॥ १५॥

अ० २१ श्लो० ३४

विप्रलब्धो ददामीति त्वयाहं चाऽऽढ्यमानिना।
तद्व्यलीकफलं भुङ्क्ष्व निरयं कतिचित् समाः॥१६॥

तब श्री वामनजी ने कहा कि हे बलि तुमने धनाढ्याभिमानसे हमारे को वञ्चन किया है। तीन पाद भूमि मैं आप को देऊंगा। ऐसा कहकर अब तीसरा पाद भूमि का न देकर तिस मिथ्या भाषण का फल कुछ काल तक नरक भोगो। क्यों कि मिथ्या वादी पुरुष को नरकों की प्राप्ति अवश्य ही होती है यह नियम है॥ १६॥

अ० २२ श्लो- ४-५-१६-२४-२५-२६-३५

पुंसां श्लाघ्यतमं मन्ये दण्डमर्हत्तमार्पितम्।
यं न माता पिता भ्राता सुहृदश्चादिशन्ति हि॥१७॥

त्वं नूनमसुराणां नः पारोक्ष्यः परमो गुरुः ।
यो नोऽनेकमदान्धानां विभ्रंशं चक्षुरादिशत् ॥१८॥
त्वयैव दत्तं पदमैन्द्रमूर्जितं हृतं तदेवाद्य तथैव शोभनम्
मन्ये महानस्य कृतो ह्यनुग्रहो विभ्रंशितो यच्छ्रिय-
आत्ममोहनात् ॥१९॥
ब्रह्मन् यमनुगृह्णामि तद्विशो विधुनोम्यहम् ।
यन्मदः पुरुषः स्तब्धो लोकं मां चावमन्यते ॥२०॥
यदा कदाचिज्जीवात्मा संसरन् निजकर्मभिः ।
नानायोनिष्वनीशोऽयं पौरुषीं गतिमाव्रजेत् ॥२१॥
जन्मकर्मवयोरूपविद्यैश्वर्यधनादिभिः ।
यद्यस्य न भवेत् स्तम्भस्तत्रायं मदनुग्रहः ॥२२॥
रक्षिष्ये सर्वतोऽहं त्वां सानुगं सपरिच्छदम् ।
सदा सन्निहितं वीर तत्र मां द्रक्ष्यते भवान् ॥३॥

बलिने कहा भो भगवान् पुरुषों में तिस पुरुष को मैं श्लाघ्यनीय मानता हूँ । कि जो पूज्य पुरुषों करके दण्डनीय है । क्योंकि जिस कल्याणकारी दण्ड को मोह वश हुए माता पिता सुहृद भ्रातादि नहीं दे सकते हैं । आप सर्व के हितकारी विष्णु से बन्धन रूप दण्ड करके मैं अनुग्रहित हुआ

अतिश्लाघ्यनीय होगया हूँ ॥१७॥ भो भगवन्! आप हमारे असुरों के शत्रु के बहाने से निश्चित पारोच्य परम गुरु हैं। क्यों कि जो आपने हम असुर लोगों को नाना मदोंसे अन्ध हुवों को ऐश्वर्य भ्रंशरूप ज्ञान वैराग्य नेत्र देदिये हैं। जिनको आप स्वर्गादि ऐश्वर्य देते हो तिनके जानों ज्ञान विचार रूप नेत्र ही नाश करदेते हो ॥१८॥ वलि के वन्धन कारी श्री वामन के पास जाकर प्रह्लाद नमस्कार कर कहते हैं कि भो भगवन्! यह इन्द्र का पद आपने नहीं लिया किन्तु अपनी ही वस्तु स्वीकार की है। क्यों कि आपने ही महान् वल युक्त इन्द्र पद वलि को दिया था। सो दिया हुआ इन्द्र पद आपने आज ले लिया है सो आपने वहुत अच्छा किया। जो आत्म स्वरूप में मोहकारी राज्य लक्ष्मी से वलि को भ्रष्ट किया है। सो आपने इस वलि के ऊपर महान् अनुग्रह किया है ऐसा मैं मानता हूँ ऐसी कृपा आज तक और किसी पर नहीं हुई है आप विधि पूर्वक वेद के मन्त्रों से समर्पण किये हुए द्रव्यों को जल्दी स्वीकार नहीं करते हो और वलि से वान्ध वान्ध कर दान लेते हो ॥ १९ ॥ तव ब्रह्मा ने कहा भो देव देव! जो आपको पत्र पुष्प जलादि का भी समर्पण कर देता है वो सर्व वन्धनों से मुक्त हो जाता है। यह वलि तो आपको सर्वस्व दे चुका है। यह कैसे

बन्धन का भागी हो सकता है। तब श्री वामन ने कहा कि हे ब्रह्मन् जिस पर मैं कृपा करता हूं तिसका सर्व धन हर लेता हूं क्यों कि जिन धनादि से मद युक्त अनम्र हुआ पुरुष सर्व लोगों का और मुझ ईश्वर का अपमान करता है तिससे दुर्गति का भागी होता है ॥ २० ॥ और जब कदाचित जीवात्मा निज कर्मों से संसारी नाना योनियों में परवश भ्रमण करता हुआ मनुष्य जन्म को प्राप्त होता है ॥ २१ ॥ तिसमें भी जन्म, शुभकर्म, युवावस्था, रूप, विद्या धनादि से जिसको मद नहीं होता है। सो तिस पर मेरी परम कृपा है ॥ २२ ॥ बलि को सदा भगवद् वियोग न चाहते हुए को जानकर भगवान् कहते हैं कि हे बलि तुम्हारे अनुयायी, परिवार सहित मैं तुम्हारी सर्व ओर से रक्षा करूंगा। हे धर्मवीर। तिस सुतल लोक में मेरे को आप सर्वदा सन्मुख पासही स्थित देखोगे। और आपके सहवास से असुरों का असुर भाव ही नष्ट हो जायगा। बलि के द्वारपाल होकर भगवान् ने भक्तवशवर्तिता दिखला दी है ॥ २३ ॥

अ० २४ श्लो० ५-६

गोविप्रसुरसाधूनां छन्दसामपि चेश्वरः ।
रक्षामिच्छंस्तनूर्धत्ते धर्मस्यार्थस्य चैव हि ॥ २४ ॥

उच्चावचेषु भूतेषु चरन् वायुरिवेश्वरः ।
नोच्चावचत्वं भजते निर्गुणत्वाद्धियो गुणैः ॥२५॥

राजा परीक्षित् ने शुकदेवजी से पूछा कि भो भगवन् मैं मत्स्यावतार का प्रयोजन जानना चाहता हूँ सो आप कृपा कर कहें। ऐसा परीक्षित् के पूछने पर श्री शुकदेवजी सामान्य से अवतारों का प्रयोजन कहते हैं। ईश्वर परमात्मा गौ, ब्राह्मण, देवता, साधुमहात्मा की तथा धर्म अर्थ काम मोक्ष रूप चार पुरुषार्थों की यथावत् रक्षा करने की इच्छा करते हुए, अन्तर्यामी मत्स्य, कूर्म तथा राम कृष्णादि मायिक शरीरों को धारण करते हैं ॥ २४ ॥ तोभी ऊंच नीच, भूतप्राणियों में माया के गुणों से शरीर धारण कर नियन्ता रूप से विचरते हुए भी वायु के समान निर्लेप होकर परमात्मा ऊंच नीचपने को प्राप्त नहीं होते हैं क्यों कि पूर्ण परमात्मा को निर्गुण होने से। ऐसा जानकर विद्वान् ब्रह्मनिष्ठ हो जाते हैं ॥ २५ ॥

पिबन्ति नद्यः स्वयमेव नाम्भः खादन्ति न स्वादुफलानि वृक्षाः ।
अम्भोधरो वर्षति नात्महेतोः परोपकाराय सतां विभूतयः ॥

इति श्रीभागवतसारबिन्दौ सारार्थदीपिका भाषाटीकायां अष्टम स्कन्ध

卐 हरिः ॐ तत्सत् 卐

॥ अथ नवम स्कन्धः ८ ॥

अ० ४ श्लो० ६३-६५-६६

अहं भक्त पराधीनोह्यस्वतन्त्र इव द्विज ।
साधुभिर्ग्रस्त हृदयो भक्तैर्भक्त जनप्रियः ॥१॥
यो दारागार पुत्राप्तान् प्राणान् वित्तमिमं परम् ।
हित्वा मां शरणं याताः कथं तांस्त्यक्तुमुत्सहे ॥२॥
मयि निर्बद्धहृदयाः साधवः समदर्शनाः ।
वशीकुर्वन्ति मां भक्त्या सत्स्त्रियः सत्पतिं यथा॥३॥

ईश्वर भक्त राजा अम्बरीष की रक्षा में नियुक्त चक्र से पीड़ित दुर्वासाऋषि ब्रह्माशिवादि से न रक्षित हुए विष्णु की शरण गये। विष्णुजी से रक्षा के लिये प्रार्थना की। कि आपके नाम कीर्तन से नरक में स्थित हुआ भी मुक्त हो जाता है। तो आपको चक्र से रक्षा करनी क्या अशक्य है। तब विष्णु ने कहा कि हे द्विज मैं भक्तों के पराधीन हूँ। निश्चित अस्वतंन्त्र पुरुषों के समान हूँ साधु महात्माओं करके तथा भक्तों करके ग्रस्त चित्त हूँ। और साधु महात्मा भक्त जन ही मुझको अति प्रिय हैं। भक्त साधु महात्माओं के विना मैं निज की भी रक्षा करना नहीं चाहता हूँ॥ १ ॥

क्यों कि जो महान पुरुष स्त्री पुत्र गृहादि प्राणों को तथा परम धन प्राणों को दूर त्याग कर मेरी शरण को प्राप्त हुए है तिन अनन्य भक्तों को त्यागने का मैं कैसे उत्साह कर सकता हूं ॥ २ ॥ हे ब्रह्मन् मुझ ईश्वर में निबद्ध हृदय साधु महात्मा, सर्व में समदर्शी मुझ को अनन्य भक्ति से ऐसे वशी भूत कर लेते हैं कि जैसे पतिव्रता श्रेष्ठ स्त्रियें पति को निज वश में कर लेती है। तप और विद्या यह दोनों ब्राह्मणों के श्रेय कारी हैं। परन्तु दुर्विनीत अहंकारी को दुर्गतिकारी हैं आपने मेरे भक्त का अति अपराध किया है। तोभी आप जायें राजा अम्बरीष से क्षमा मांगे तो आपका शुभ होगा। तब निर्मान होकर दुर्वासा ने जाकर अम्बरीष से क्षमा मांगी। राजाने चक्रकी स्तुति कर दुर्वासा की रक्षा की और दुर्वासा का पूजन कर भोजन कराकर पीछे दुर्वासा ऋषि की आज्ञा लेकर भोजन किया। ऐसे पुण्यात्मा राजा प्रातः स्मरणीय कहे जाते हैं ॥ ३ ॥

अ० ६ श्लो० ५१

सङ्गं त्यजेत मिथुनव्रतिनां मुमुक्षुः सर्वात्मना न-विसृजेद् बहिरिन्द्रियाणि। एकश्चरन् रहसि चित्त-मनन्त ईशे युञ्जीत तद्व्रतिषु साधुषु चेत् प्रसङ्गः॥४॥

यमुना के जल में तप करते हुए सौभरी ऋषि ने मिथुन व्रति 'मीनो की मैथुन चेष्टा को देखकर विवाह की इच्छा होने पर राजा मान्धाता की पचास कन्या मे से एक कन्या मांगी। राजा ने वृद्ध जानकर कहा कि आप स्वयंवर की रीति से कन्यालें। तब सौभरीने आपको स्त्री अप्रिय वृद्ध जानकर तपोबल से अपना सुन्दर रूप बना-लिया तब राजा की कन्याओं के पास गए। राजा की पचासों कन्याओं ने एक सौभरी ऋषि को पति रूप से वर लिया तब बहुत काल तक पचास राज कन्याओं को भोग कर विषयों से न तृप्त होने पर सौभरी ऋषि को अपने तप हानी का विचार हुआ कि मैं मिथुन व्रती मीनों के कुसङ्ग से कैसी दुर्गति को प्राप्त होता जा रहा हूं। ऐसा विचार कर कहा है कि निज श्रेयकारी मुमुक्षु पुरुष मिथुन व्रति विषयीजनों का सङ्ग सर्व प्रकार से त्याग दे। अन्तर आत्मविचार से बिना दुर्गतिकारी बाह्य विषयों में इन्द्रियों को कभी भी न जाने दे। एकान्त स्थान में विरक्त होकर एकाकी विचरता हुआ चित्त को सत्य ज्ञान अनन्त ब्रह्म में जोडे। यदि संग करना ही होवे तो आत्म स्वरूप ब्रह्म अभ्यास रूप व्रत परायण वीतराग साधु महात्माओं के विषे सङ्ग करे। ऐसे विचार से सौभरी ऋषि सर्व का सङ्ग त्याग

कर विरक्त होकर वनमें जाकर परब्रह्म परमात्मा में चित्त को जोड़ते दिया ॥ ४ ॥

अ० ७ श्लो० २१

शुनःशेपं पशुं पित्रे प्रदाय समवदन्न ।
ततः पुरुषमेधेन हरिश्चन्द्रो महायशः ॥५॥

हरिश्चन्द्रने पुत्र के लिये वरुण की उपासना करी तब वरुण ने कहा कि आपके पुत्र होगा तिस पुत्र के नर मेध यज्ञ से हमारा यजन करना। राजा हरिश्चन्द्रने कहा कि मैं ऐसा ही करूंगा। तब राजा के रोहित पुत्र होने पर वरुण ने कहा अब मेरा यजन करो। हरिश्चन्द्र ने कहा कि उत्पन्न हुआ बालक दश दिन तक अपवित्र होता है। दश दिन के बाद वरुण ने कहा अब यजन करो। राजा ने कहा दन्त हीन पशु अशुद्ध होता है ऐसा कहकर बहुत काल व्यतीत कर दिया। तब प्राण परीप्सु रोहित वन को चले गये। तब वरुण के कोप से राजा हरिश्चन्द्र को जलोदर रोग हो गया। ऐसा सुनकर रोहित वन से घर को आये। आते हुए ने मार्ग में अजीगर्त के तीन पुत्रों में से मध्य के शुनःशेप नाम पुत्र के बदले में सौ गौओं अजीगर्त को देकर शुनःशेप को ले आये। पिता हरिश्चन्द्र से कहा कि इस अजी-

र्गत ब्राह्मण के पुत्र को वरुण के लिये बली देने के लिये सौ गौओं देकर मैं ले आया हूं। ऐसे अजीगर्त केपुत्र शुनःशेप यज्ञ पशु को पिता के लिये देकर सम्यक नमस्कार किया। तब राजाने बहुत से ऋषि ब्राह्मणों को यज्ञ में बुलाकर यज्ञ पशुको यूप के साथ बन्धन के लिये कहा। तिस ब्राह्मण के पुत्र को बन्धन करने के लिये कोई नहीं बोला। अजीगर्त ने कहा कि मुझको सौगौओं दी जाए तो मैं बांध देता हूँ। राजा ने कहा सौगौओं देगें। तिसने बांध दिया। तब राजा ने कहा कि नरमेध की रीति से इसका वध करो। तब दूसरों के न बोलने पर अजीगर्त ने कहा कि सौगौ देने पर मैं वध कर देता हूँ। राजा ने कहा कि सौगौदेगें। तब विश्वामित्र अति दया कर शुनःशेप के प्राण रक्षा के लिये। वेद का सूक्त बन्धन युक्त शुनःशेप को सुनाया। तिस वेद के सूक्त का पाठ करने से वरुण देवता प्रसन्न हो गये। राजा हरिश्चन्द्र का जलोदर रोग दूर हो गया। और शुनःशेप के प्राणों की रक्षा हो गई। तब सर्व ऋषियों ने विचार कर शुनःशेप विश्वामित्र को पुत्र रूप से देदिया। ऐसे महा यशस्वी भी राजा हरिश्चन्द्र तिस नर मेध यज्ञ से निज स्वार्थ के लिये यजन करते थे। तिस अन्याय का बदला विश्वामित्र नें

राजा के राणी व पुत्र का विक्रय कराकर राजा हरिश्चन्द्र को शव जीवी भंङ्गी के हाथ विक्रय करा दिया है। विश्वामित्र ने अन्याय अधर्म नहीं किया है। राजा को धर्म की उच्च कोटि में आरूढ़ कर दिया ॥ ५ ॥

अ० ८ श्लो० १२

स्व शरीराग्निना तावन् महेन्द्र हृतचेतसः ।
महद्व्यतिक्रमहता भस्मसादभवन्क्षणात् ॥६॥

राजा सगर के याज्ञिय अश्व को इन्द्र हरण कर ले गये। परन्तु सगर के पुत्रों के भय से अश्व को श्री कपिल जी के आश्रम में बांध कर चले गये। पीछे से खोजते खोजते सगर के पुत्र कपिल के आश्रम में आकर घोड़े को देखकर बोले कि इसी ऋषि वेष धारी ने हमारे याज्ञिय अश्व को चुराया है। यह ही हमारा चोर है। तब इन्द्रकी कपट माया से हत बुद्धि हुए महान् पुरुषों की अवज्ञा करके नष्ट शक्ति हुए, निज शरीर के महान्पाप रूप अग्नि से क्षण मात्र में भस्म हो गये। जो कहते हैं कि मुनि के कोपाग्नि से सगर के पुत्र दग्ध हो गये। यह कथन श्रेष्ठ नहीं है। क्यों कि सत्वगुण प्रधान शान्तिस्वरुप कपिल में कोप की कैसे संभावना हो सकती है। अर्थात् नहीं हो सकती है,

जैसे निर्लेप आकाश में मृतिका की संम्भावना नहीं होती है। जिसकी कथन कीहुई दृढ़ अद्वैत सांख्यरूप नौका करके मुमुक्षु जन दुर्लंघ्य संसारार्णव को सुख से तरजाते हैं। तिस परमात्मा रूप कपिलदेव की अमित्रादि भेद दृष्टि कैसे हो सकती हैं। प्राणि निज पाप कर्मों करके ही संसार में कष्ट गति को प्राप्त होते हैं श्रेष्ठ जनो को दोष लगाना महापाप माना जाता है। अपने पवित्र भावों से अंशुमान् कपिल देव की कृपा के पात्र हुए याज्ञिय अश्व को लाकर पितामह का यज्ञ पूर्ण किया ॥ ६ ॥

अ. ९ श्लो. ५-६-७

किं चाहं न भुवं यास्ये नरा मय्यामृजन्त्यघम् ।
मृजामि तदघं क्कुत्र राजंस्तत्र विचिन्त्यताम् ॥७॥
साधवो न्यासिनः शान्ता ब्रह्मिष्ठा लोकपावनाः ।
हरन्त्यघं तेऽङ्गसङ्गात्तेष्वास्ते ह्यघभिद्धरिः ॥८॥
धारयिष्यति ते वेगं रुद्रस्त्वात्मा शरीरिणाम् ।
यस्मिन्नोतमिदं प्रोतं विश्वं शाटीव तन्तुषु ॥ ९ ॥

अंशुमान् गङ्गा लानेकी इच्छासे तप करते ही काल वश हो गये गङ्गा न ला सके। अंशुमान-के पुत्र दिलीप भी ऐसे ही तप करते काल वश हुए गङ्गा न ला सके।

दिलीप के पुत्र भगीरथ के तप से प्रसन्न हुई गङ्गा ने वर के लिये कहा। भगीरथ ने निज अभिप्राय कह दिया। गङ्गा ने कहा कि मेरे वेग को कोन धारण करेगा और धारण करे तो भी मैं भूलोक में न जाऊंगी। क्यों कि मुझमें प्राणि स्नान करके पापों का त्याग करेंगे। मैं तिस पाप को किस में प्रक्षालन कर दूर करूंगी। हे राजन्। तिसमें कुछ मेरे हित के लिये विचार करो॥ ७॥ भगीरथ ने कहा कि शान्त चित्त त्यागी साधु महात्मा, ब्रह्मनिष्ठ, दर्शनमात्र से लोक पावन कर्ता आपकी पवित्र धारा रूप अङ्ग संग स्नान से आपके सर्व पापों का हरण कर देगें। क्यों कि तिन ब्रह्मनिष्ठ विरक्त साधु महात्माओं में अघ भेदन कारी हरि परमात्मा सर्वदा स्थित हैं॥ ८॥ और आपके गिरि भेदन कारी वेग को सर्व चराचर प्राणियों के अधिष्ठान आत्मा रुद्र भगवान् धारण करेंगे जिस रुद्र परब्रह्म में यह चराचर तन्तुओं में पट के समान ओत प्रोत रूप से व्याप्त हैं। ऐसा कहकर भगीरथ अल्प काल के तप से महादेव को प्रसन्न कर शिव जटा धारित भुवन पावनी गङ्गा को लाकर जहां पितरों के देह दग्ध हुए थे। तहां देशों को पवित्र करती हुई गङ्गा दग्ध सगर के पुत्रों को सेचन करती हुई। भस्मी भूत हुए भी सगर के पुत्र जिस गङ्गाजल के स्पर्श मात्र से

स्वर्ग को चले गये। जो प्राणी श्रद्धा से गंगा में स्नान करते हैं। तिनके स्वर्ग जाने में तो क्या ही संशय है। अर्थात् श्रद्धा से स्नान कर्ता तो अवश्यही स्वर्ग को प्राप्त होता है॥ ६॥

अ० १० श्लो० २-५५

तस्यापि भगवानेष साक्षाद् ब्रह्ममयोहरिः।
अंशांशेन चतुर्धागात् पुत्रत्वं प्रार्थितः सुरैः।
रामलक्ष्मणभरतशत्रुघ्न इति संज्ञया॥१०॥
एकपत्नीव्रतधरो राजर्षिचरितः शुचिः।
स्वधर्मं गृहमेधीयं शिक्षयन् स्वयमाचरत्॥११॥

खट्वांग से दीर्घ बाहु दिलीप, तिससे रघु, रघु से अज, अज से दशरथ, तिस दशरथ के देवताओं करके प्रार्थना किये हुए भगवान् ब्रह्म स्वरुप पापहारी हरि श्रीराम निज माया उपाधि द्वारा चिदंशरूप करके राम लक्ष्मण भरत शत्रुघ्न नाम चार रूप से पुत्रत्व को प्राप्त हुए॥ १०॥ एक पत्नी व्रत धारी राज ऋषि पवित्र चरित्र श्रीरामचन्द्रजी स्व गृहस्थाश्रम के धर्म का स्वयं शास्त्र विधि से प्रजा को

शिक्षा करते हुए आप धर्म का आचरण करते हुए प्रजा का धर्म से पालन करते थे ॥ ११ ॥

अ० १८ श्लो. ४४

उत्तमश्चिन्तितं कुर्यात् प्रोक्तकारी तु मध्यमः ।
अधमोऽश्रद्धया कुर्यादकर्त्तोच्चरितं पितुः ॥ १२ ॥

शर्मिष्ठा के साथ ईर्षा के कारण से देवयानी के कहने से शुक्राचार्य ने ययाति राजा को जरावस्थायुक्त होने का शाप देदिया । तव राजा ययाति ने भोग विषयों से अतृप्त होने के कारण अपने पुत्र यदु से युवावस्था मांगी यदु ने स्वीकार न की तव तुर्वसु से पूछने पर तिसने भी स्वार न की ऐसे सर्व वड़े पुत्रों के जरावस्था का न स्वीकार करने पर छोटे पुत्र पुरू से राजा ययाति ने पूछा कि तुम मेरी जरावस्था को लो और मेरे को विषय भोगने के लिये युवावस्था दो तव पुरुने कहा कि भो तात ! इस लोक में देह कर्ता पिता के प्रत्युपकार करने को कौन मनुष्य समर्थ हो सकता है । जिस पिता की कृपा से परमपद मोक्ष को प्राप्त किया जाता है । पिता के अनुकूल पिता के मन में चिन्तित कार्य को करने वाला पुत्र उत्तम कहा जाता है । और पिता के कहने से कार्य को करने वाला मध्यम कहा जाता है । पिता के कहे

कार्य को अश्रद्धा से करने वाला पुत्र अधम कहा जाता है। और पिता के कहे कार्य को न करने वाला पुत्र अति पापिष्ठ मल मूत्र के समान कहा जाता है। ऐसे प्रसन्न होकर पुरुने पिता से जरावस्था लेली तब ययाति बहुत काल तक विषयों को भोगते रहे॥ १२ ॥

अ० १६ श्लो० १४-१५-१६-१८

न जातु कामः कामानामुपभोगेन शाम्यति ।
हविषा कृष्णवर्त्मेव भूय एवाभिवर्धते ॥ १३ ॥
यदा न कुरुते भावं सर्वभूतेष्वमङ्गलम् ।
समदृष्टेस्तदा पुंसः सर्वाःसुखमयादिशः ॥१४॥
या दुस्त्यजा दुर्मतिभिर्जीर्यतो या न जीर्यते ।
तां तृष्णां दुःखनिवहां शर्मकामो द्रुतं त्यजेत् ॥१५॥
पूर्णं वर्षसहस्रं मे विषयान् सेवतोऽसकृत् ।
तथापि चानुसवनं तृष्णा तेषूपजायते ॥ १६ ॥

जब राजा ययाति बहुत काल तक विषयों के भोगने से तृप्ति न हुए। उलटा विषय तृष्णा रूप दावाग्नि अधिक बढ़गई। तब पूर्व पुण्य पुञ्ज प्रभाव से राजा के अन्तः करण में विषयभोग तृष्णा रूप दावाग्नि को शान्त करने वाली पर

वैराग्य रूप गङ्गा की धारा प्रगट हो गई। तब राजा ययाति ने कहा कि काम हत बुद्धि जन के मनकी पूर्ति को संसार के विषय नहीं कर सकते हैं। कदाचित् भी विषयों की कामना विषयों के भोगने से शान्त नहीं होसकती है जैसे घृत रूप हवि करके कृष्ण वर्त्म-यज्ञ कुण्ड का अग्नि शान्त नहीं होता है। उलटा घृत रूप हवि से अधिक बढ़ता है। तैसे ही कामी जन की तृष्णा विषयों के भोगने से अधिक बढ़ती है ॥१३॥ जिस काल में पुरूष सर्व भूत प्राणियों में राग द्वेष रूप विषमता अनिष्ट चिन्तन भाव को नहीं करता है। तब तिस समदृष्टि पुरूष को सर्व दिशा सुख रूप प्रतीत होती है ॥१४॥ जो तृष्णा दुष्ट मति वाले जनो से दुस्त्यज त्यागनी अशक्य है। और जो तृष्णा पुरुष के जीर्ण होने पर भी जीर्ण नहीं होती है। तिस दुःखकारी तृष्णा को सुख की कामना वाला पुरुष शीघ्र ही त्यागदे ॥ १५ ॥ राजा ययाति कहते हैं कि मैंने पूर्ण हजार वर्ष तक विषयों का बारम्बार सेवन किया। तो भी तिन विषयों में मेरी तृष्णा प्रति दिवस अधिक से अधिक बढ़ती गई है ॥१६॥

अ० १६ श्लो० १६

तस्मादेतामहं त्यक्त्वा ब्रह्मण्याधाय मानसम्।
निर्द्वन्द्वो निरहङ्कारश्चरिष्यामि मृगै सह ॥ १७ ॥

तिस हेतु से मैं इस दुर्गतिकारी तृष्णा को त्याग कर, सच्चिदानन्द आत्मस्वरूप अद्वय ब्रह्म में मन को स्थिर करके राग द्वेष द्वन्दों से रहित, वर्णाश्रम देहादि में अभिमान से रहित हुआ, विषयी पुरुषों का सङ्ग छोड़कर वनके मृगों के साथ विचरूंगा। दृष्ट श्रुत यावत् देहादि संसार को मिथ्या दुःख रूप जानकर सर्व चराचर में विद्वान् ब्रह्म स्वरूप आत्मद्रष्टा होवे। ऐसा कह कर राजा ययाति पुरु पुत्र को युवावस्था देकर तिससे जरावस्था लेकर पुत्रों को यथा योग्य राज्य का विभाग कर निर्मान मोह होकर वनको चले गये।१७।

अ. २४ श्लो. ५६-५७-५८

यदायदेह धर्मस्य क्षयो वृद्धिश्च पाप्मनः।
तदा तु भगवानीश आत्मानं सृजते हरिः ॥१८॥
नह्यस्य जन्मनो हेतुः कर्मणो वा महीपते ।
आत्ममायां विनेशस्य परस्य द्रष्टुरात्मनः ॥१९॥
यन्मायाचेष्टितं पुंसः स्थित्युत्पत्त्यप्ययाय हि ।
अनुग्रहस्तन्निवृत्तेरात्मलाभाय चेष्यते ॥ २० "

शुकदेवजी ने कहा कि हे परीक्षित् जिस जिस काल में इस संसार में वेद शास्त्र विहित धर्म की हानी होती है। और अति पाप की वृद्धि होती है। तिस काल में भगवान्

पापहारी हरि माया के नियन्ता निज माया से मायिक शरीर धारण करते हैं ॥१८॥ माया नियन्ता के सर्व से परे असंग साक्षी सर्व व्यापी के जन्म का कारण निज माया से बिना कर्मादि नहीं बन सकते हैं। भक्तों पर अनुग्रह करने के लिये और दुष्ट का निग्रह करने के लिये नाना राम कृष्णादि रूप से अवतार धारण करते हैं ॥ १९ ॥ ईश्वर परमात्मा निज माया की चेष्टा कर जीव प्राणी पर अनुग्रह करते हैं इस हेतु से जीव के पुण्य पापों के भोग निमित्त नाना प्रकार की सृष्टि की उत्पत्ति, स्थिति, लयके लिये इच्छा करते हैं। पुनः ईश्वर परमात्मा का यह अनुग्रह है कि अज्ञान सहित प्रपञ्च की निवृत्ति से श्रोत्रिय ब्रह्मनिष्ठ गुरु द्वारा अद्वय ब्रह्मात्म स्वरूप प्राप्ति के लिये इच्छा करते हैं। इस प्रकार ईश्वर परमात्मा जीव प्राणियों पर सर्वदा अनुग्रह ही करते हैं ॥ २० ॥

राजन्सर्षपमात्राणि पर छिद्राणि पश्यति।
आत्मनो बिल्वमात्राणि पश्यन्नपि न पश्यति ॥
मूर्खो हि जल्पतां पुंसां श्रुत्वा वचः शुभाशुभाः।
अशुभं वाक्यमादत्ते पूरीषमिव सूकर ॥
प्राज्ञस्तु जल्पतां पुंसां श्रुत्वा वचः शुभाशुभाः।
गुणवद्वाक्यमादत्ते हंस क्षीरमिवाम्भसाः ॥

इति श्रीभागवतसारबिन्दौ सारार्थदीपिका भाषाटीकायां नवम स्कन्धः

॥ अथ दशम स्कन्धः १० ॥

. अ० ३ श्लो० १६-२४-२६-३१

त्वत्तोऽस्य जन्मस्थितिलयमान् विभो वदन्त्यनी-
हादगुणादविक्रियात् । त्वयिश्वरे ब्रह्मणि नो विरु-
ध्यते त्वदाश्रयत्वादुपचर्यते गुणैः ॥ १ ॥
रूपं यत्तत् प्राहुरव्यक्तमाद्यं ब्रह्मज्योति निर्गुणं
निर्विकारम् । सत्तामात्रं निर्विषेशं निरीहं सत्वं
साक्षाद् विष्णुरध्यात्मदीपः ॥२॥
जन्म ते मय्यसौ पापो मा विद्यान्मधुसूदन ।
समुद्विजे भवद्धेतोः कंसादहमधीरधीः ॥ ३॥
विश्वं यदेतत् स्वतनौ निशान्ते यथावकाशं पुरुषः
परो भवान् । बिभर्ति सोऽयं मम गर्भगोऽभूदहो
नृलोकस्य विडम्बनं हि तत् ॥ ४ ॥

अर्ध रात्रि में महान्धकार को नाश करते हुए सर्व व्यापी विष्णु मानो वसुदेव देवकी को ज्ञान प्रकाश करते हुए चतुर्भुज रूप से प्रगट हुए । तब वसुदेव महानन्द में मग्न हुए चतुर्भुज विष्णु को देखकर बोले कि मैंने सत्य ज्ञानानन्द पूर्ण पुरुष प्रकृति से परे आपको साक्षात जानलिया

है। भो विभो आप सच्चिदानन्द, अक्रिय, अनीह, निर्गुण ब्रह्म से ही इस प्रपञ्च की उत्पत्ति, स्थिति, लय को सर्वज्ञ मुनि लोग कहते हैं। क्यों कि आप पूर्ण ब्रह्म ईश्वर में इस प्रपञ्च के उत्पत्ति, स्थिति,, लय. होना कोई विरुद्ध नहीं है। आप अधिष्ठान के आश्रित होने से इस त्रिगुण कृत प्रपञ्च को आप पूर्ण ब्रह्म में गौणता से माना जाता है। जैसे भृत्य का युद्धादि कार्य किया हुआ राजा में माना जाता है। आप ईश्वर सर्व लोकों की रक्षा करने की इच्छा कर हमारे गृह में निज माया करके प्रगट हुए हो। आपके जन्म को यह कंस सुनकर अभी शस्त्र लेकर आपको मारने के लिये आयेगें। इससे हम भयभीत हैं॥ १ ॥ देवकी भगवान के दर्शन से प्रसन्न हुई कृष्ण के वास्तव स्वरूप का वर्णन करती है। जैसा आपका वास्तव रूप है तिसको वेद कहते हैं। इन्द्रिय अगोचर अव्यक्त, सर्व का कारण, विभु ब्रह्म, प्रकाशस्वरुप, निर्गुण, निर्विकार त्रिकाल बाध रहित, सत्य ज्ञान आनन्द स्वरूप, जाति आदि रहित निर्विशेष, क्रियादियों से रहित निरीह, सन्निधि मात्र से कारण, इस प्रकार यावत् चराचर जगत् है, सो साक्षात् आप सर्व व्यापी विष्णुही हो। और आपही बुध्यादि करण संघात के प्रकाशक हो॥ २ ॥ हे मधुसूदन आपका जो मेरे विषे यह

जन्म हुआ है। इसको यह पापी कंस न जान सके क्यों कि आपके कारण ही मैं अधैर्य बुद्धि हुई कंस से भय भीत हुई सम्यक् उद्विग्नता को प्राप्त हो रही हूँ क्यों कि मुझ पापिष्ठा के पेटसे जन्मे हुए छे बालक " सूर्य के समान तेज वाले कंस ने मारदिये हैं। यदि आप सुन्दर मूर्तिकी भी कंस से हानी हुई तो मैं पापिष्ठा ही हूँ ॥ ३ ॥ हे भगवन् यह जो दृश्यमान् विश्व हैं इसको प्रलय काल में यथा योग्य अवकाश पूर्वक संकोच रहित निज माया रूपी शरीर में आप पूर्ण पुरुष परब्रह्म धारण करते हो। सो आप मेरे तुच्छ स्त्री के गर्भ से प्राप्त हुए हो अहो आश्चर्य है। यह एक सर्व लोगों को निश्चित वंचन ही करना है। आपके एक अंश में यह चराचर विश्व धारण किया हुआ है। मैं तुच्छ स्त्री आप पूर्ण पुरुष को धारण कर सकती हूँ। आप सर्व शक्तिमान् ईश्वर जो चाहें सो कर सकते हो। देवकी के ऐसे वचनों को सुनकर भगवान ने कहा कि हे मात ! तुमने पूर्व जन्म में तप करके मुझ ईश्वर को प्रसन्न किया था। तब मैंने तुम्हारे को वर मांगने को कहा तुमने कहा कि हमारे आप जैसा पुत्र हो। तब हमने बिचार कर देखा कि हमारे समान और कौन है अर्थात नहीं है। तो हम ही तुम्हारे तप का फल देने के लिये पुत्र भाव से

प्रगट हुए हैं अब आप भय न करें मुझको आप दोनों पुत्र भाव से अथवा ब्रह्म भाव से चिन्तन करते हुए मेरे स्वरूप को प्राप्त हो जाओगे। यदि आप कंस से भय मानते हो तो मुझको गोकुल में यशोदा के यहां छोड़ आयें। और यशोदा के गर्भ से उत्पन्न हुई मेरी योग माया रूप कन्या को यहां ले आयें तब आप लोगों को कोई भय न होगा। तब वसुदेव ने वैसा ही किया जैसा कृष्ण भगवान् ने कहा था ॥ ४ ॥

अ० ४ श्लो० ४६ अ० ६ श्लो० १८

आयुः श्रियं यशो धर्मं लोकानाशिष एवच ।
हन्ति श्रेयांसि सर्वाणि पुंसो महदतिक्रमः ॥५॥
स्वमातुः खिन्नगात्राया विस्रस्त कबरस्रजः ।
दृष्ट्वा परिश्रमं कृष्णः कृपयासीत्स्वबन्धने ॥६॥

काल पाश के वशीभूत हुए कंस ब्राह्मण ऋषियों को हिंसा करना ही अपना हित मानते हुए साधुमहात्मा को कष्टकारी पीड़ा देने की दानवों को आज्ञा देकर निज गृह में प्रवेश हो गये। तब दानव लोग मृत्युवश हुए श्रेष्ठ पुरुषों को पीड़ा देने लगे। श्रेष्ठ पुरुषों के साथ द्वेष करना केवल मृत्यु मात्र का ही हेतु नहीं किन्तु और भी

वहुत अनर्थ कारी है। वह यह है महान् पुरुषों का तिर. स्कार किया हुआ आयु, धन, लक्ष्मी, यश, धर्म, स्वर्गादि लोक और इष्ट पदार्थों का तथा पुरुष के सब कल्याणों को नष्ट कर देता है। निरापराधों को कष्ट देने से कंस को असुरों के साथ मृत्यु होनाही फल हुआ ॥ ५ ॥ एक दिन यशोदा दधि मथन करती थी श्री कृष्णचन्द्र मथन करने को बन्द कर माता का दूध पीने लगे। तब दूध उबलने पर कृष्ण को अतृप्त हुए को गोद से नीचे उतारकर उबलते दूध को सम्हालने गई। कृष्ण ने कुपित होकर दधि की मटकी फोड़कर उखल पर चढ़कर छींके पर रक्खी हुई मक्खन चुरा कर खाने लगे और कुछ बानरों को देरहे हैं। इतने में यशोदा ने दधि पात्र फूटा देखकर कृष्ण को न देखकर खोजने लगी। तब कृष्ण को उखल पर चढ़े हुए इधर उधर देखते मक्खन खाते को देखकर हाथ में छड़ी लेकर कृष्ण को पकड़ने के लिये भागी तब कृष्ण माता को देखकर भयभीत हुए भागे। जो योगियों के मन की गति से परे है तिस कृष्ण को पकड़ती हुई थकित हो गई। गिर रही है केशो के जूड़े पर की फूलों की माला जिसकी, बहुतसी रस्सियों से बांधती हुई ऐसी खिन्न परिश्रम युक्त हुई निज माता को देखकर कृष्ण निज माता पर कृपा करते हुए स्वयं

ही बन्धन में आगये।

कृषि भू वाचकः शब्दो णश्च निवृत्ति वाचकः।
तयोरैक्यं परं ब्रह्म कृष्ण इत्यभिधीयते ॥

ऐसे कृष्ण भगवान ने भक्तों के वश वर्तिपना लोगों को नेत्रों से दिखला दिया। ब्रह्मादि देवता भी वशवर्ति हैं जिनोके, सो ईश्वर भक्त वश हुए तुच्छ स्त्री से बांधेगये हैं ॥ ६ ॥

अ० १० श्लो. १३-१७ १८

असतः श्रीमदान्धस्य दारिद्र्यं परमञ्जनम् ।
आत्मौपम्येन भूतानि दरिद्रः परमीक्षते ॥७॥
दरिद्रस्यैव युज्यन्ते साधवः समदर्शिनः ।
सद्भिः क्षिणोति तं तर्षं तत आराद् विशुद्ध्यति ।८।
साधूनां समचित्तानां मुकुन्दचरणैषिणाम् ।
उपेक्ष्यैः किं धनस्तम्भैरसद्भिरसदाश्रयैः ॥ ९ ॥

कुवेर के पुत्र नल कूवर, मणीग्रीव दोनो मदिरापान करके धन के मद से उन्मत्त हुए देवांङ्गनाओं के साथ गंगा में क्रीड़ा करते थे। देव ऋषि नारद को आते देखकर देवां-गनाओं ने तो वस्त्र ओढ़ लिये और नल कूवर मणिग्रीव

ऋषि नारद के आगे निर्लज्ज होकर नमस्कारादि से बिना नग्न ही खड़े रहे। नारद ने विचार कर कहा कि इन धन मदान्ध कुबेर के पुत्रों को विचार रूप नेत्र खोलने के लिये दरिद्र रूप अंजन ही औषधी देनी योग्य है। क्यों कि धन लक्ष्मी के मदान्ध शठ जनको नेत्र खोलने की औषधि रूप दरिद्र ही एक परम अञ्जन है। क्यों कि धनहीन दरिद्री पुरुष ही सर्व भूत प्राणियों को अपने आत्मा के समान देखता है। और धन मदान्ध जन सर्व प्राणियों को अपने आपसे नीचे देखता है ॥७॥ धन हीन दरिद्री पुरुष को स्वतः ही समदर्शी साधुमहात्मा प्राप्त हो जाते हैं। तिन वीतराग साधुमहात्माओं के संग से संसारिक विषयों की तृष्णा को श्रेष्ठ जन नाश कर देते हैं। तिस तृष्णा के नाश से शीघ्रही अन्तःकरण शुद्ध हो जाता है। ॥ ८ ॥ मुक्ति के घर भगवान् परमात्मा के चरण सेवी वीतराग समचित्त साधुमहात्मा को उपेक्षा करने के योग्य, धन गर्भित अभि-मानी असत् विषय वासना के आश्रय धन मदान्ध दुष्ट वामनावाले जनों से क्या प्रयोजन है। अर्थात कुछ जरुरत नहीं है। ऐसा विचार कर नारद ने कुबेर के पुत्र नल कूबर मणीग्रीव को यमलार्जुन वृक्ष रूप होने का शाप दे दिया तब नल कूबर मणीग्रीव ने शाप से भयभीत होकर नारद से

प्रार्थना करी । कि भो देव ऋषे ! हमारे पर जड़योनि से मुक्त होने की कृपा करें। तब नारदने कहा कि द्वापर में कृष्ण भगवान् के स्पर्श से आप लोग जड़ योनि से मुक्त हो ओगे ॥ ६ ॥

अ० २२ श्लो० १६-२६

यूयं विवस्त्रा यदपो धृतव्रता व्यगाहतैतत्तदु देवहेलनम् । बद्ध्वाञ्जलिं मूर्ध्न्यपनुत्तयेंऽहसः कृत्वा नमोऽधोवसनं प्रगृह्यताम् ॥१०॥

न मय्यावेशितधियां कामः कामाय कल्पते ।
भर्जिताः क्वथिता धाना प्रायो बीजाय नेष्यते ॥११॥

मार्गशीर्ष मास में गोपियों ने कात्यायनी देवी के पूजन का व्रत धारण किया, कि हमारे श्रीकृष्ण भगवान् पति हों ऐसी अभिलाषा रखकर प्रतिदिवस यमुना में स्नान करने लगी विशेष कर वस्त्र रहित नग्न होकर स्नान करा करती थीं । तब श्रीकृष्ण भगवान् ने तिन गोपियों के मन के अभिप्राय को जानकर तिन की मनो कामना पूर्ण करने के लिये व्रत घातक नग्न स्नान रूप वरुण देवता के तिरस्कार रूप अपराध को दूर करने के लिये देव प्रसन्न कारी व्रत धारण करने की धार्मिक शिक्षा देने के लिये श्रीकृष्ण

गोपियों के वस्त्र हरण कर कहते हैं कि हे गोपियों ! आप जो धृत व्रता होकर वस्त्र रहित नग्न होकर जलमें स्नान करती हो यह वरूण देवता का अवहेलन रूप अपराध करना है। ऐसे व्रत भंगकारी अपराध से भयभीत गोपियों को श्रीकृष्ण अपराध नाशक पुण्यकारी प्रायश्चित कहते हैं। कि दोनों हाथ जोड़ अंञ्जली रूप से मस्तक में लगा कर, इस देवापराध रूप पापकी निवृत्ति के लिये नम्र भाव होकर नमस्कार करके अपने अपने वस्त्र लेलो। क्योंकि एक एक हाथसे नमस्कार करना दोष है। ऐसी श्रीकृष्ण की शिक्षा सुनकर व्रत की पूर्ती की कामना वाली गोपीयोंने भगवान्को दोनों हाथ जोड़कर नमस्कार करके वस्त्र ग्रहण करलिए ॥१०॥ हे गोपियों मुझ ईश्वर में प्रविष्ठ चित्त वाले जनों को विषयभोगों के लिए कामना करनी योग्य नहीं है। जैसे अग्नि से भुने हुए धान अथवा अग्नि से जलमें उबाले हुए धान पुनः अंकुर उत्पादन के लिये समर्थ नहीं होते हैं। क्यों कि मुझ सच्चिदानन्द परमात्मा में स्थिर चित्त वाले जनों को "सर्वे पदा हस्ती पदे निमग्ना" इस न्याय से सबही आनन्द को प्राप्त होजाते हैं। कोई सुख शेष नहीं रहजाता है ॥११॥

अ० २३ श्लो० २७-३६-४२-४३

प्राण बुद्धि मनः स्वात्मदारापत्य धनादयः ।

यत्संपर्कात्प्रिया आसंस्ततः कोन्वपर प्रियः ॥१२॥
धिग्जन्म नस्त्रिवृद्विद्यां धिग् व्रतं धिग् बहुज्ञताम् ।
धिक् कुलं धिक् क्रियादाक्ष्यं विमुखा ये त्वधोक्षजे १३
नासां द्विजातिसंस्कारो न निवासो गुरावपि ।
न तपो नात्ममीमांसा न शौचं न क्रियाःशुभाः॥१४
अथापि ह्युत्तमश्लोके कृष्णे योगेश्वरेश्वरे ।
भक्तिर्दृढा न चास्माकं संस्कारादिमतामपि ॥१५॥

किसी कालमें बलदेव और कृष्णभगवान् ने यमुना तट पर गौओं चराते हुओ ने गोप बालकों से कहा कि यहां कुछ दूर पर ब्राह्मण यज्ञ करते हैं, तिनसे हमारा नाम लेकर भोजन लाओ। तब गोप बालकों ने जाकर हाथजोड़कर ब्राह्मणों से कहा कि भो विप्रों! यहां कुछ दूर पर राम और कृष्ण गौओं चराते हुओं ने हमारे को भोजन के लिये भेजा है। आप लोग हम भूखों को भोजन दें। यदि कहो कि हम लोग दीक्षित हुए तुम्हारे को पतितों को यज्ञ का अन्न कैसे दें। यह दोष नहीं आता है। क्यों कि अग्निषोम यज्ञ में पशु आलम्बन से पूर्व अन्न देना दोष है, तिस से पश्चात् अन्न देने में दोष नहीं। और आप लोगों का तो वृहस्पति-सव यज्ञ है इसमें अन्न देना दोष नहीं है। और सौत्रामणि

यज्ञ से अन्य यज्ञ में भी अन्न देना दोष नहीं है। इस हेतु से आप हमारे को अन्नदें ऐसे भगवान की याचना सुनकर भी न सुनते जैसे चुप हो गये। तब गोप बालकों ने राम कृष्ण से जाकर कहदिया कि ब्राह्मणों ने अन्न नहीं दिया है। श्रीकृष्ण भगवान् ने हंस कर कहा कि ब्राह्मण की पत्नियों से जाकर कहो कि राम कृष्ण भोजन मांगते हैं ऐसा कहने पर तुम्हारे को शीघ्र ही भोजन दे देगी। तब गोप बालकों ने जाकर ब्राह्मण पत्नियों से नमस्कार कर कहा कि भो विप्र पत्नियों! रामकृष्ण ने गोपालों के साथ गौओं चराते हुओं ने भोजन मांगा है। ऐसा सुनकर ब्राह्मण पत्नियां चार प्रकार का बहु गुण युक्त अन्न लेकर कृष्ण भगवान के दर्शनार्थ स्वयं चलकर गई। भगवान् कृष्णचन्द्र मोहन मूर्ति के दर्शन करके अति आनन्दित हुई श्री कृष्णचन्द्र ने हास्य युक्त मुखारविन्द से स्वागत कर कहा कि हे महाभागा हम आपका क्या हित कार्य करें। जो विवेकी जन मेरे में अनन्य भक्ति करते हैं। वे निज मोक्ष पुरुषार्थ को देखलेते हैं हे महाभागा प्राण, बुद्धि, मन, स्वजाति वाले देह, दारा, पुत्र, धन, धरादि सर्व पदार्थ जिस सच्चिदानन्दात्मा के सम्बन्ध से प्रिये होते हैं। तिस सच्चिदानन्द आत्मा से भिन्न दूसरा कौन पदार्थ प्रिय हो

सकता है। अर्थात् नहीं हो सकता है। ब्रह्म स्वरूप सच्चिदानन्द आत्मा ही परम प्रेम का विषय होने से अति प्रिय है। तिस हेतु से आनन्द स्वरूप मुझ में तुम्हारा प्रेम होने से तुम कृतार्थ हो चुकी हो। अब तुम गृह को जाओ क्योंकि तुम्हारे साथ तुम्हारे पतियोंकी आरम्भ की हुई यज्ञ को समाप्त करेंगे॥ १२॥ विप्र पत्नियों ने कहा कि भो विभो आपकी शरणको प्राप्त हुई हम स्त्रियों की अब और दूसरी कोई हमारी गति नहीं है। कृष्ण भगवान् ने कहा हे महाभागा देह के अंग संग करने से कोई विशेष सुख की प्राप्ति नहीं होती है। जैसा मुझ सच्चिदानन्द स्वरूप में मन लगाने से आनन्द होता है ऐसा अंग संगादि से सुख नहीं होता है। ऐसा श्रीकृष्ण से सुनकर विप्रपत्नियें यज्ञ शाला में पतियों के पास चली गईं। तब ब्राह्मण निज पत्नियों की श्रीकृष्ण भगवान् में अनन्य अलौकि भक्ति देखकर गुरु के समान मानते हुए और अपने में भगवद्भक्ति न देखकर पश्चाताप करते हैं। कि हमारे शुद्ध कुल, सावित्री युक्त सदीक्षावाले त्रिवृत जन्म को धिक्कार है। और वेद विधा ब्रह्मचर्यादि व्रत को भी धिक्कार है। बहु शास्त्रज्ञता को धिक्कार है। हमारे शुभ कुलीनता को भी धिक्कार है। और क्रिया कर्म में दाक्ष्यपने को भी धिक्कार है। क्योंकि

जो हम लोग श्रीकृष्ण भगवान् की भक्ति से विमुख हैं।
इस कारण से हमारे को वारंवार धिक्कार है ॥ १३ ॥
हमारी स्त्रियें अहो भाग्य है जो भगवान् में चित्त लगाकर गृह
के पुत्र पतियों की, मोहरूप पाशको छेदनकर बेठी हैं।
न तो इनके द्विजातियों के समान संस्कार ही हुए हैं। न गुरु
कुल में ही निवास करा है न तप ही किया है। न आत्म
ब्रह्मस्वरूप का ही विचार किया है। न शौच पवित्रता है।
न गोपियों में शुभ क्रिया कर्म ही है ॥ १४ ॥ तो भी इतने
संस्कार आचरणों से हीन गोपियों का उत्तमाशय
श्रीकृष्ण भगवान में, योगेश्वरों के ईश्वर परमात्मा में दृढ़
अनन्य भक्ति है। और हमारे लोगों की उपनयनादि संस्कार
वालों की भी ईश्वरमाया मोहितों की श्रीकृष्ण भगवान में
भक्ति है नहीं। अहो स्वार्थ मूढ़ हमने श्रीपति भगवान् की
याचना भंग करदी है। इस कारण से हम अभिमान युक्तों
को वांरवार धिक्कार है ॥ १५ ॥

अ. २६ श्लो. ५-१४

हिन्वतोऽधः शयानस्य मास्यस्य चरणावुदक्।
अनोऽपतद् विपर्यस्तं रुदतः प्रपदाहतम् ॥ १६ ॥
क सप्तहायनो बालः क महाद्रिविधारणम् ।

ततो नो जायते शङ्का व्रजनाथ तवात्मजे ॥१७॥

श्रीकृष्ण की विचित्र लीलाओं को देखकर गोप नन्दजी से कहते हैं। हे नन्द तुम्हारे पुत्र कृष्ण ने पन्द्रह दिन के पूरे न होने पर भी महा बलशाली पूतना के प्राणों को स्तन पान के मिस से पान कर लिया है। और तीन मासके कृष्ण ने गाड़ी के नीचे सोते हुए ने चरणों को ऊपर उछालते हुए रुदन करते ने पाद के अग्र भाग से गाड़ी को दूर पटक दिया है। ये कैसे पटकदिया है। और एक वर्ष की आयु में तृणावर्तदैत्य को कैसे मारडाला। और किसी दिन मक्खन चुराने पर यशोदा माता से ऊंखल में बन्धे हुए घसीटते हुए ने दोनो भुजों से यमलार्जुन आकाश स्पर्शी वृक्षों को कैसे उखाड़ डाला ॥ १६ ॥ और कहां सप्तवर्ष का बालक कहां गोवर्धन पर्वत धारण करना। हे व्रजनाथ नन्द! तिन कारणों से ही हमारे लोगों को तुम्हारे पुत्र कृष्ण में शंका उत्पन्न होती है क्यों कि ऐसी अद्भुत् शक्ति वाला बालक हमारे गोपालों के आजतक हुआ नहीं तुम्हारे कैसे हुआ। इस शङ्का से तुम्हारे को ज्ञाति से बाहर किया जाता है। या इसका पुरावा दीजिये। तब नन्द ने गोपों से शंका निवारक श्रीगर्गाचार्य के वचन कहे कि गर्गाचार्यने मुझसे कहा कि इसके युगानुसार तीन वर्ण है कृतयुग में शुक्ल, त्रेता में

रक्त द्वापर में पीत अब इसका वर्ण कृष्ण है। यह साक्षात् नारायण हैं। तुम्हारे पुण्यों के बल से तुम्हारे कल्याण के लिये यह ईश्वर ही प्रकट हुए हैं। ऐसा सुनकर सर्व शान्त हो गये॥ १७॥

अ० ३२ श्लो० १६-१७-१८-१६

भजतोऽनुभजन्त्येक एक एतद्विपर्ययम् ।
नोभयांश्च भजन्त्येक एतन्नो ब्रूहि साधु भोः ॥१८॥
मिथो भजन्ति ये सख्यः स्वार्थैकान्तोद्यमा हि ते।
न तत्र सौहृदं धर्मः स्वार्थार्थं तद्धि नान्यथा ॥१६॥
भजन्त्यभजतो ये वै करुणाः पितरो यथा ।
धर्मो निरपवादोऽत्र सौहृदं च सुमध्यमाः ॥ २० ॥
भजतोऽपि न वै केचिद् भजन्त्यभजतः कुतः।
आत्मारामा ह्याप्तकामा अकृतज्ञा गुरुद्रुहः ॥२१॥

किसी काल में श्रीकृष्ण भगवान् मायाधारी कुछलीला करने की कामना से मनोहारी बंशी को यमुना तटपर बजाते थे। तिस संशय संताप हारी मनोहर कृष्ण भगवान् की बंशी के शब्दों से आकृष्ट चित्त गोपियां माता, पिता, पति, भ्राता, बान्धावों की लज्जा न कर यमुना के तटपर

श्रीकृष्ण के पास आगई। भगवान् ने सर्व का मधुर वचनों से स्वागत किया। और कहा कि आप स्त्रियें घोर वनमें रात्रिको क्यों आई। स्त्रीयों का निष्कपट होकर पति की सेवा करना ही परम धर्म है। और हे महाभागों ! तिस पति के बान्धवों का यथा योग्य सेवा पूजन करना, और सन्तती का पालन करना। पति दुष्टशील, दुर्भाग्य, वृद्ध, मूर्ख. रोगी निर्धन भी हो तो भी कल्याणाभिलाषी स्त्रियों करके त्याग योग्य नहीं है अर्थात पति पूज्य ही है। तोभी भगवान के दुःख संशयहारी मनोहर वचनों के श्रवण का न त्याग करती हुई गोपियों ने घर जाना स्वीकार न किया। और कहने लगी कि हम सर्व लोक लाज को दूर कर आपकी सेवा में प्राप्त हुई हैं। और आप हमारी सेवा को कुछ भी नहीं मानते हो। तब भगवान् कृष्ण की अकृतज्ञाता को कृष्ण के वचनों से ही कहने की कामना वाली गूढ़ाभिप्राय वाली लोक वृत्तान्त के समान पूछती हैं। भो भगवन्। एक प्राणी तो सेवा पूजा कराने से पश्चात् उसके बदले उसकी सेवा पूजा करते हैं और एक प्राणि न सेवा पूजा करने वाले की भी सेवा पूजा करते हैं। और सेवा पूजा न करने वाले की भी सेवा पूजा नहीं करते हैं इनमें कौनसा श्रेष्ठ है यह वार्ता हमारे को कहो॥ १८॥

तात्पर्य के ज्ञाता श्रीकृष्ण भगवान् कहते हैं हे गोपियों जो पुरुष उपकार के प्रत्युपकार रूप से परस्पर सेवा पूजा करते हैं, दूसरे की सेवा पूजा नहीं करते हैं वो लोग एक स्वार्थ के लिये ही अति उद्यमी हैं। तिन पुरुषों में सौहृदता नहीं है इसीसे सुख भी नहीं है। और न तिनमें धर्म ही है। किन्तु स्वार्थ के लिये ही तिनका उद्यम है। इष्ट फलके लिये ही, बैल गर्दभ कण्डु न्याय से तिनका परस्पर सेवा पूजन है सो धर्म के लिये नहीं हैं॥ १६ ॥

और जो प्राणी सेवा पूजा न करनेवालों की भी सेवा पूजा करते हैं वे दो प्रकार के प्राणी हैं। एक तो करुणा से जैसे माता पिता न सेवा पूजा करने वालेपुत्रादि की सेवा पूजा करते हैं। एक प्रेम स्नेह करके दूसरे की सेवा पूजा न करने वालों की भी सेवा पूजा करते हैं तिसमें हे गोपियों निश्चित ही यथा क्रम से धर्म काम दोनों होते हैं। इस हेतु से सेवा पूजा न करने वालों की भी सेवा पूजा करते हैं।२०। तीसरे प्रश्न का उत्तर यह है कि कोई प्राणि सेवन करते हुओं का भी सेवन नहीं करते हैं न सेवन करते हुओं का तो क्या ही सेवन करना था। वो प्राणी चार प्रकार के हैं एकतो आत्माराम आनन्दमग्न हैं। १। और दूसरे आप्तकामा विषय दर्शनशील हुए भी पूर्ण काम होनेसे भोगों की इच्छा

से रहित हैं ।२। तीसरे अकृतज्ञ करे उपकार को न जानने वाले मूढ़ जन ।३। चतुर्थ माता पिता, गुरू के साथ में द्रोह करने वाले जन हैं । हे गोपियों में इनमें कोइसा भी नहीं हूँ । किन्तु मैं तो परम कारूणिक हूं, परम सुहृद हूं, सेवन करने वालों के सर्वदा ध्यान प्रवृत्ति के लिये सेवन करते हुए प्राणियों का भी जल्दी हम सेवन नहीं करते हैं ॥२१॥

अ० ३३ श्लो० २७-२८-२९-३०-३१-३२

संस्थापनाय धर्मस्य प्रशमायेतरस्य च ।
अवतीर्णो हि भगवानंशेन जगदीश्वरः ॥२२॥
स कथं धर्म सेतूनां वक्ता कर्ताऽभिरक्षिता ।
प्रतीपमाचरद् ब्रह्मन् परदाराभिमर्शनम् ॥२३॥
आप्तकामो यदुपतिः कृतवान् वै जुगुप्सितम् ।
किमभिप्राय एतन्नः संशयं छिन्धी सुव्रत ॥२४॥
धर्म व्यतिक्रमो दृष्ट ईश्वराणां च साहसम् ।
तेजीयसां न दोषाय वह्नेः सर्वभुजो यथा ॥२५॥
नैतत् समाचरेज्जातु मनसाऽपि ह्यनीश्वरः ।
विनश्यत्याचरन् मौढ्याद् यथा रुद्रोऽब्धिजं विषम् ।२६।
ईश्वराणां वचः सत्यं तथैवाचरितं क्वचित् ।
तेषां यत् स्ववचोयुक्तं बुद्धिमांस्तत् समाचरेत् ।२७।

काम उत्तेजक रास क्रीड़ा में काम की अतिवशी कारिता दिखलाते हुए योगेश्वर श्रीकृष्ण भगवान् ने योगियों के वज्रोली योग की पराकाष्टा रूप अवस्था दिखाकर सिद्ध करदी, तिसमें भी परीचित् राजा शुकदेवजी से पूछते हैं कि भो भगवन् जगदीश्वर श्री कृष्ण भगवान बलराम अंश के साथ वैदिक धर्म के स्थापन के लिये और अधर्म के नाश के लिये अवतीर्ण हुए हैं ॥२२॥ सो कृष्ण सर्व धर्म की मर्यादाओंके वक्ता कर्त्ता, और रक्षक हुए फिर कैसे प्रतिकूल परदारा स्पर्श रूप अधर्म का आचरण किया,यह केवल कलंज भक्षण के समान् अधर्म मात्र ही नहीं है किन्तु महा साहस है ॥२३॥

क्यों कि यदुकुलपति, पूर्ण काम, लक्ष्मीपति हुए भी यह निन्दित कार्य किस अभिप्राय से किया। भो वीतराग ब्रह्मनिष्ठता रूप शोभन व्रतधारी इस हमारे संशय को छेदन करो ॥ २४ ॥ तब शुकदेवजी ने कहा हे राजन् ! धर्म का व्यत्तिक्रम (उल्टा) करने का साहस महान् तेजस्वी समर्थ ईश्वर रूप पुरुषों में देखा जाता है। जैसे ब्रह्मा पुत्री के पीछे भागे, इन्द्रने अहल्या को भोगा, चन्द्रमा ने गुरू पत्नी तारा को भोगा। विश्वामित्र ने मेनका को भोगा। सोतिन तेजस्वीयों को दोष के लिये नहीं है। जैसे अशुभ शुभ सर्व को भोजन रूप दग्ध करने वाले अग्नि देव को

दोष नहीं लगता है ॥ २५ ॥ यदि ऐसा है तो जैसे जैसे श्रेष्ठ आचरण करते हैं तैसे ही दूसरे भी करें। यह नहीं ऐसे समर्थ ईश्वरों के आचरण को असमर्थ अनीश्वर लोग मन से भी आचरण न करें। ऐसे आचरण को मूर्खता से आचरण करता हुआ असमर्थ प्राणी नाश को प्राप्त हो जाता है। जैसे रुद्र से अतिरिक्त असमर्थ प्राणी समुद्र से जन्य विषको खाकर शीघ्र ही नाश को प्राप्त हो जाता है ॥ २६ ॥ तो सदाचार की प्रमाण्यता कैसे सिद्ध हो। सो कहते हैं तिन समर्थ ईश्वरों के वचन सत्य हैं तिनका आचरण करें। कहीं पर तिन ईश्वरों का आचरण भी सत्य माननीय है तिन ईश्वरों के बचनो से जो जो लोग शास्त्र से अविरूद्ध वार्ता हैं तिसका बुद्धिमान आचरण करे। ईश्वर समर्थ पुरुषों के जो विरूद्ध आचरण हैं वे प्रारब्ध कर्म के निवृत्ति के लिये हैं। अन्यथा नहीं। जिस कृष्ण भगवान् के पाद पद्मों की रज सेवा से तृप्त चित्त योग प्रभाव से नष्ट वन्धन हुए मुनि लोग भी स्वेच्छानुसार विचरते हुए बन्धायमान् नहीं होते हैं। तो श्रीकृष्ण भगवान् स्वेच्छा से लीला मात्र माया करके शरीर धारी को तो कैसे ही बन्ध हो सकता है। अर्थात् बन्धन नहीं होता है। ऐसे भगवान् की, काम को विजय करने वाली रास क्रीड़ा के

श्रवण से बुद्धिमान् पुण्यात्मा के हृदय में रोगकारी काम का शीघ्र ही नाश रूप फल होता है। और पापात्मा को पश्चाध्यायि रासक्रीड़ा के श्रवण से उलटा पापकारी काम रोग उत्पन्न होता है ॥ २७ ॥

अ. ३८ श्लो. ३-२१

किं मयाऽऽचरितं भद्रं किं तप्तं परमं तपः ।
किं वाथाप्यर्हते दत्तं यद् द्रक्ष्याम्यद्य केशवम् ।२८
लब्ध्वाङ्गसङ्गं प्रणतं कृताञ्जलिं मां वक्ष्यतेऽक्रूर-
ततेत्युरुश्रवाः । तदा वयं जन्मभृतो महीयसा नैवा
दृतो यो धिगमुष्य जन्म तत् ॥ २९ ॥

कृष्ण, बलराम को गोकुल से मथुरा में लाने के लिये रथ देकर कंस का भेजा हुआ अक्रूर अपने को अहो भाग्य मानता हुआ यह सम्भावना करता है, कि क्या मैंने पूर्व जन्म में महान् पुण्य का आचरण किया है अथवा क्या महान् परम तप किया है। अथवा क्या किसी योग्य विद्वान् के लिये मैंने कोई दान दिया है । जिसके बल से जो आज मैं कृष्ण, बलराम को देखूंगा। मेरे को पुरुषोत्तमों का दर्शन होना ऐसे दुर्लभ है कि जैसे विषयासक्त जनको अद्वय ब्रह्म का कीर्तन प्राप्त होना दुर्लभ होता है ॥ २६ ॥

जब कृष्णचन्द्र निजचरण कमलों में पड़े हुए कृतांजलि को मुझको मन्द हास युक्त कृपा दृष्टि से देखेंगे, तब मैं सर्व पापों से मुक्त हुआ परम सुख को प्राप्त हो जाऊंगा। और फिर श्रीकृष्ण भगवान् के अङ्ग सङ्ग करते हुवे अंजलि नमस्कार करते हुए मुझ को महान् यशस्वी कृष्ण कहेंगे, हे अक्रूर, हे तात। तब हम लोग सफल जन्म धारण करने वाले होंगे। क्यों कि जो प्राणि महान् तेजस्वी कृष्ण करके आदर योग्य नहीं हुआ, उस प्राणि का सो जन्म धारण करना धिक्कार रूप ही है ऐसे कृष्ण का चिन्तन करता हुआ अक्रूर प्रातः काल मथुरा से चलकर सूर्यास्त काल में गोकुल पहूंचा अर्थात् मथुरा से लेकर गोकुल तक दण्डवत् नमस्कार करते हुए गए ॥३०॥

अ० ४० श्लो. १०-२३ २४

यथाद्रिप्रभवा नद्यः पर्जन्यापूरिताः प्रभो ।
विशन्ति सर्वतः सिन्धुं तद्वत्त्वां गतयोऽन्ततः ॥३१॥
भगवञ्जीवलोकोऽयं मोहितस्तव मायया ।
अहंममेत्यसद्ग्राहो भ्राम्यते कर्मवर्त्मसु ॥ ३२ ॥
अहं चात्मात्मजागारदारार्थस्वजनादिषु ।
भ्रमामि स्वप्नकल्पेषु मूढः सत्यधिया विभो ॥३३॥

जो जो अक्रूर ने मार्ग में संकल्प किये थे वे सर्व पूर्ण

हो गए जब गोकुल से रथ में मथुरा को लाते हुए कृष्ण बलराम को अक्रूर ने कहा कि आप रथमें ही ,बैठो मैं यमुना में स्नान कर आता हूं, कृष्ण बलराम ने कहा अच्छा स्नान कर आओ । जब अक्रूर ने यमुना में गोता लगाया तब कृष्ण बलराम को जल में देखा । फिर विचारा कि कृष्ण बलराम को तो रथ में बिठा कर आया हूँ तब बाहर देखा तो बाहर भी कृष्ण राम को देखा । फिर गोता लगाया तो जल में भी रामकृष्ण को देखा । सब जगह रामकृष्ण को देखकर अक्रूर ने कहा कि भो प्रभो जैसे हिमालय पर्वत से उत्पन्न हुई जो साक्षात् गङ्गादि नदियें हैं। पूनः वर्षा से पूर्ण हुई सर्व प्रकार नानामार्गों से सिन्धु में ही प्रवेश करती है तैसे ही सर्व जिज्ञासु जन नाना ऋजुकुटिल शास्त्रों के विचार मार्गों द्वारा अन्त में आप सच्चिदानन्द ब्रह्मस्वरूप सिंधु मे ही प्रवेश करते हैं ॥ ३१ ॥ भो भगवन् आपके सर्व अवतारों के प्रति बारंबार नमस्कार है । ऐसे स्तुति करके अक्रूर संसार बन्धन से मुक्त होने की प्रार्थना करते हैं । कि भो बिभो ! यह जीव लोक आप ईश्वर की माया करके मोहित हुआ देह पुत्र स्त्री धनादियों में अहंता ममता कर मिथ्या हठ वाला हुआ सुख दुःख देनेवाले कर्म के ऊंच नीच योनि रूप मार्गों में भ्रमण करता है ॥ ३२ ॥

यह केवल दूसरे लोग की ही वार्ता नहीं है किन्तु में मूढ़ भी स्वप्न के समान मिथ्या पदार्थों में देह, पुत्र, गृह दारा, धन स्वबन्धुजनादि में, अतिबन्धनकारी दुःख रूप नाशवानों में सत्य सुख बुद्धि करके मोहजाल में भ्रमण कर रहा हूँ। भो विभो! अनित्य, अनात्म रूप, महा दुःख रूपों में, सत्यात्म सुख बुद्धिवाला हुआ मैं अज्ञानी आप ब्रह्मात्म सुख स्वरूप को नहीं जानता हूँ। सो मैं आज आप सच्चिदानन्द की शरण को भाग्य से प्राप्त हुआ हूँ ॥ ३३ ॥

अ० ४३ श्लो० १७

मल्लानामशनिर्नृणां नरवरः स्त्रीणां स्मरो मूर्तिमान्
गोपनां स्वजनोऽसतां क्षितिभुजां शास्ता स्वपित्रोःशिशुः।
मृत्युर्भोजपतेर्विराडविदुषां तत्त्वं परं योगिनां
वृष्णीनां परदेवतेति विदितो रङ्गं गतः साग्रजः॥३४॥

धनुष भङ्गादि सर्व कार्य कर कृष्ण भगवान् शृङ्गारादि रस समूहों की मूर्ति रूप जिस जिसका जैसा जैसा अभिप्राय है तिनको तिस तिस अभिप्राय के अनुसार देखने में आए चाणूर मुष्टिकादि मल्लों को तथा देखने वाले अज्ञानियों को वज्रादि रूप से दश प्रकार के प्रतीत होते हुए तिस रङ्ग भूमि में प्राप्त हुए। तब चाणूरादि मल्लों को वज्र

रूप रौद्ररस प्रतीत हुए। नरों को श्रेष्ट नर रूप से अद्भुत रस प्रतीत हुए। स्त्रियों को मूर्तिमान् कामदेव रूप से श्रृङ्गार रस प्रतीत हुए। गोपजनों को स्वसम्बन्धी रूप से हास्य रस प्रतीत हुए। दुष्ट राजाओं को शास्ता रूप से वीर रस से प्रतीत हुए। माता पिता को शिशु रूप से दया करुणा रस प्रतीत हुए। कंस को मृत्यु रूप से भयानक रस प्रतीत हुए अज्ञानि पुरुषों को कोमलाङ्ग वाले यह राम कृष्ण वज्रासारांग वाले चाणूरादि मल्लों के साथ कैसे लड़ेंगें ऐसे विराट्, विकल, अपर्याप्त रूप से वीभत्स रस प्रतीत हुए वीतराग योगियों को ब्रह्मात्म स्वरूप परं तत्व रूप से शांत रस प्रतीत हुए और यादव वृष्णियों को पर देवता रूप से सप्रेम भक्ति रस प्रतीत हुए। ऐसे श्रीकृष्ण भगवान् स्त्री पुरुषों को नाना रूप से प्रतीत होते हैं॥ ३४ ॥

अ० ४४ श्लो० १५-४७-४८

या दोहनेऽवहनने मथनोपलेप प्रेङ्खेङ्खनार्भ रुदितो क्षणमार्जनादा। गायन्ति चैनमनुरक्तधियोऽश्रुकण्ठ्यो धन्याव्रजस्त्रिय उरुक्रमचित्तयानाः ॥३५॥

अनागसां त्वं भूतानां कृतवान् द्रोहमुल्बणम्।
तेनेमां भो दशां नीतो भूतध्रुक् को लभेत शम्॥३६॥

सर्वेषामिह भूतानामेष हि प्रभवाप्ययः ।
गोप्ता च तदवध्यायी न क्वचित् सुख मेधते ॥ ३७ ॥

सुन्दर मोहन मूर्ति कृष्ण भगवान को देखकर मथुरा की स्त्रियें कहती हैं कि जो गोकुल की गोपियें गो दोहनादि कार्यों में इस कृष्ण के गीत गाती हैं। वे व्रज की गोपियें महा भाग्या धन्य हैं। धान्य कूटने में, दधिके मथने में, घरके लीपने में वालकों को पालने पर झुलाने में, बालकों के रुदन करने में, वालकों का जल से प्रोक्षण करने में, गृह के मार्जनादि कार्यों में श्रीकृष्ण को ही गाती हैं। कैसी हैं व्रज की स्त्रियें श्रीकृष्ण में अति अनुरक्त बुद्धिवाली कण्ठ तक प्रेम के आंसु बहते हैं जिनके, और तिस महान् पराक्रमी कृष्ण में ही है चित्त जिनका, तिस हेतु से ही सर्व विषय प्राप्त हैं जिनको। अथवा तिस उरुक्रम कृष्ण को सदा चिन्तन करती हुई कृष्ण का गायन करती है इस कारण से ये गोपियां धन्य भाग्या हैं ॥३५॥ तब चाणूरादि मल्लों के सहित राम कृष्ण करके सभ्रातकंस के मारे जाने पर कंस की स्त्रियें कंस के शिरको गोदमें लेकर दुःख से रुदन करती हुई कहती हैं कि भो प्राणनाथ ! निरपराध भूतप्राणियों को अति कष्टकारी दारुण द्रोह दयाहीन होकर आपने किया तिस-

कारण से ही इस दीन दशा को प्राप्त हुए हो क्योंकि निरपराध भूत प्राणियों से द्रोहकारी कोन प्राणी सुखको प्राप्त होसकता है ? अर्थात् नहीं होसकता है ॥३६॥ इस संसार में सर्वभूत प्राणियों का यह कृष्णभगवान् ही उत्पत्ति लय पालन कर्ता है। तिस कृष्ण भगवान् की अवज्ञा कर्ता प्राणी किसी लोक में भी सुख प्राप्त नहीं कर सकता है ॥३७॥

अ. ४५ श्लो. ४-५

न लब्धो दैवहतयोर्वासो नौ भवदन्तिके ।
यां बालाः पितृगेहस्था विन्दन्ते लालिता मुदम्॥३८॥
सर्वार्थसम्भवो देहो जनितः पोषितो यतः ।
न तयोर्याति निर्वेशं पित्रोर्मर्त्यः शतायुषा ॥३९॥

तव कृष्ण बलराम कंस मामा की संस्कार क्रिया कराकर, और माता पिता को कारागार बन्धन से मुक्त कर पितरों के चरणों में दण्डवत नमस्कार करते हुए कहते हैं कि भो मात पितः हम भाग्य हीनों ने बालावस्था में आप पूज्य पादों के समीप वास प्राप्त न किया। जो बालक पिता के गृह में स्थित हुए लालित पालित हुए महान् सुख को प्राप्त होते है वो सुख भी हम हत भाग्यों ने प्राप्त न किया ॥ ३८ ॥

ऐसे अभाग्य वश से आप लोगों की ओर हमारी दोनों की कामना पूरी न हुई। आप पूज्य पादों की सेवा न करने से हमारे महान् धर्म की हानी हुई। क्यों कि सर्व धर्म अर्थ काम मोक्ष रूप अर्थों की प्राप्ति है जिस देह में सो देह जनित, पोषित है जिन माता पिताओं से, तिन माता पिताओं की निष्कृति रूप अनृणीता पुत्रों करके पुरुष की सौ वर्ष की आयु से भी नहीं प्राप्त हो सकती है। जो पुत्र देह से धन से समर्थ हो कर माता पिता की जीविका सम्पादन न करे तिसके मांस को यमदूत उसी ही से खवाते हैं। और माता, पिता, वृद्ध, श्रेष्ठ भार्य्या बालपुत्र, गुरु, विप्र, अतिथि प्राप्त होवे, इन सर्व का समर्थ हुआ जो प्राणी पालन नहीं करता है सो प्राणी जीता ही मरे के तुल्य है। सो हमारे दोनों भ्राताओं के कंस के भय से आप पितरों की सेवा न करते हुओं के इतने दिन व्यर्थ ही व्यतीत हुए। इसका हमारे को अति खेद है सो आप क्षमा करें॥ ३६॥

अ० ४६ श्लो० ४-३८-३६-४०

ता मन्मनस्का मत्प्राणा मदर्थे त्यक्त दैहिकाः।
मामेव दयितं प्रेष्ठमात्मानं मनसा गताः।
ये त्यक्तलोकधर्माश्च मदर्थे तान् बिभर्म्यहम् ॥४०॥

न माता न पिता तस्य न भार्या न सुतादयः ।
नात्मीयो न परश्चापि न देहो जन्म एव च ॥४१॥
न चास्य कर्म वा लोके सदसन्मिश्रयोनिषु ।
क्रीडार्थःसोऽपि साधूनां परित्राणाय कल्पते ॥४२॥
सत्वं रजस्तम इति भजते निर्गुणो गुणान् ।
क्रीडन्नतीतोऽत्र गुणैः सृजत्यवति हन्त्यजः ॥४३॥

तब माता पिता को आनन्दित करते हुए कृष्णचन्द्र उग्रसेन नाना को राज्य देकर, सांदीपनि गुरु से सर्व विद्या में पारंगत होकर, स्ववियोग से संतप्त यशोदादि गोपियों को शांतिकारी सन्देश उपदेश देने के लिये उद्धव को व्रज में भेजते हुए उद्धव को कहते हैं। हे उद्धव वे गोपियें मुझ कृष्ण में मनवाली, मेरे में ही प्राणवाली हैं। मेरे लिये त्याग दिये पति पुत्र देहादि का अभिमान जिन्होंने, मुझ प्रिय से प्रियात्मा को मन से प्राप्त हुवों का और मेरे निमित्त त्याग दिये हैं इस लोक तथा परलोक के धर्म और सुख तिनके साधन जिन्होंने, तिनोंका मैं सुख वर्धन, पोषण करता हूँ ॥ ४० ॥ तिन गोपियों को आनन्दकारी सन्देश कहकर तो भी असन्तुष्ट हुए नन्दयशोदादि को बोले, कि हे महाभागों खेद मत करिये। क्योंकि कृष्ण परमात्मा काष्ठ

में व्याप्त अग्नि के समान अति समीप हैं। जैसे काष्ठ के मन्थन करने से अग्नि प्रगट हो जाता है। तैसे ही कृष्ण परमात्मा भक्ति विचार मथन करने से निज बुद्धि में शीघ्र ही प्रगट हो जाते हैं। तिस विभु कृष्ण का न कोई माता है न पिता है न भार्या न पुत्रादि हैं। न अपना है। न पर है। तिसका देह है। न जन्म है न मरणादि हैं ॥ ४१ ॥

न इसके कोई पुण्य पापादि कर्म ही हैं। तो भी जन्म कर्मादि से रहित हुआ भी सो कृष्ण परमात्मा इस लोक में निज क्रीडार्थ दूसरा साधुजनो के पालनार्थ सात्विकी राजसी तामसी, देव, मत्स्य, नृसिंहादि शुभा शुभ मिश्रित योनियों में अवतार रूप से प्रगट होते हैं। ४२ ॥ क्रीड़ा से रहित निर्गुण हुआ भी सत्व, रज, तम, रूप तीन गुणों को प्राप्त होता है। क्योंकि सो अज परमात्मा गुणो करके सर्व प्राणियों की सृष्टि, पालन संहार करता है। प्राणी अविद्या करके मैं कर्ता हूँ ऐसा मानता है। जैसे भ्रमण करता जन भ्रान्त दृष्टि से स्थिर भूमि वृक्षादि को भ्रमण करते हुयों के समान देखता है। वास्तव से भ्रमण नहीं करते हैं। तैसे ही मन के कर्ता होने पर कृष्ण में आरोपण मिथ्या ही अज्ञानि जन करते हैं ॥ ४३ ॥

अ० ४७ श्लो० ३१-४७-५२-५८

आत्मा ज्ञानमयः शुद्धो व्यतिरिक्तोऽगुणान्वयः ।
सुषुप्तिस्वप्न जाग्रद्भिर्मायावृत्तिभिरीयते ॥४४॥
परं सौख्यं हि नैराश्यं स्वैरिण्यप्याह पिङ्गला ।
तज्जानतीनां नः कृष्णे तथाप्याशा दुरत्यया ॥४५"
हे नाथ हे रमानाथ व्रजनाथार्तिनाशन ।
मग्नमुद्धर गोविन्द गोकुलं वृजिनार्णवात् ॥४६॥
एताः परं तनुभृतो भुवि गोपवध्वो गोविन्द ।
एव निखिलात्मनि रूढभावाः । वाञ्छन्ति यद्
भवभियो मुनयो वयं च किं ब्रह्म जन्मभिरनन्त-
कथारसस्य ॥ ४७ ॥

हे गोपियों कृष्ण भगवान् का कहना है कि आत्मा अति शुद्ध है। गुण रहित है। सर्व से भिन्न है। क्योंकि आत्मा ज्ञान स्वरूप है। माया के कार्य मन की जाग्रत स्वप्न सुषुप्ति वृतियों करके आत्मा विश्व तैजस, प्राज्ञ रूप से नाना प्रतीत होता है स्वतः नाना रूप नहीं है। जैसे स्त्रियों का चित्त प्रिय पति के परदेश गए हुए में लगा रहता है। तैसा पास होते पति में प्रेम नहीं होता है। ऐसे ही मुझ ईश्वर में शुद्ध

मन से चिन्तन करने से अधिक आनन्द होता है अङ्ग संगादि से आनन्दाधिक नहीं होता है ॥ ४४ ॥ गोपियों ने कहा कि हे उद्धव श्रीकृष्ण के साथ हमारी संगति अघटित होने पर भी हमारे को व्याकुल करती है इस हेतु से निराश होना परम कठिन है। निराश होना परम सुख रूप है। ऐसा स्वेच्छाचारी पिङ्गला नाम की गणिका भी कहती है। तिस रहस्य को जानती हुइयों की भी हमारी तो भी मन मोहन कृष्ण में अनिवार्य आशा लगी हुई है ॥ ४५ ॥ हे प्राणनाथ कृष्ण, हे रमानाथ, हे व्रज के नाथ भो स्वामिन् हे दुःख नाशक, हे गोविन्द,दुःख सागर में मग्न हुए गोकुल का दर्शन देकर उद्धार करो ॥ ४६ ॥

उद्धव गोपियों को श्रीकृष्ण में प्रेम युक्त व्याकुल हुई यों को देखकर कहते हैं। कि ये ही गोप स्त्रियें भूमि पर देह धारण कर केवल सफल जन्म वाली हैं। क्योंकि कृष्ण गोविन्द सर्व के आत्मा में रूढ़ भक्ति भाव वाली हैं। जिस रूढ़ भक्ति भाव की संसार से भय भीत हुए मुनिलोक, और हम सर्व ही इच्छा करते हैं। इस कारण से अनन्त आनन्द स्वरूप कृष्ण की कथाओं में अतिराग वाले को क्या प्रयो-जन है, ब्राह्मणादि जन्मों से। अथवा चतुर्मुख ब्रह्मा के जन्मों से भी क्या प्रयोजन है। अहो आश्चर्य है ईश्वर

साक्षात् भजने वाले अज्ञानी को भी श्रेय शुभ गति देते हैं। जैसे अमृत पान किया हुआ सर्व को ही अति आनन्द देता है ॥ ४७ ॥

अ० ४८ श्लो० २७-३०-३१

दिष्ट्या जनार्दन भवानिह नः प्रतीतो योगेश्वरैरपि-दुरापगतिः सुरेशैः। छिन्ध्याशु नः सुतकलत्रधनाप्त-गेहदेहादिमोहरशनां भवदीयमायाम् ॥ ४८ ॥

भवद्विध महाभागा निषेव्या अर्हसत्तमाः ।
श्रेयस्कामैर्नृभिर्नित्यं देवाः स्वार्था न साधवः ॥४९॥
न ह्यम्मयानि तीर्थानि न देवा मृच्छिलामयाः ।
ते पुनन्त्युरुकालेन दर्शनादेव साधवः ॥ ५० ॥

श्रीशैलदर्शनान्मुक्ति र्वाराणस्यां मृतस्य च ।
केदारोदकपानेन मध्यनाडीप्रदर्शनात् ॥

बलराम उद्धव के सहित कृष्ण भगवान् अक्रूर को मिलने घरमें गये। तब नाना प्रकार की पूजा स्तुति करते हुए अक्रूर कहते हैं, भो सर्व जन रक्षक जनार्दन जो आप योगिराज मुनियों करके तथा देवराज इन्द्रादियों करके भी प्राप्त होने अशक्य हो। सो आप हम लोग अविवेकियों को

भाग्य से घर में ही साचात् प्राप्त हो गये हो। भो ईश्वर हमारी अविवेकियों की जो पुत्र दारा धन, तथा प्राप्त गेह देहादि में मोहरूपी आपकी माया पाश को कृपा कर शीघ्र ही छेदन करो ॥ ४६ ॥ तब कृष्ण भगवान् बोले कि भो महाभागों आप जैसे पूज्य तम श्रेष्ठ साधुजन, मोच्च की कामना वाले जनों करके सदा भक्ति से सेवनीय हैं। देवता सेवनीय नहीं हैं। क्यों कि देवता सदा स्वार्थ परायण रहते हैं। और साधुमहात्मा केवल परानुग्रह परायण रहते हैं। वास्तव में साधुमहात्मा ही देवता हैं सेवनीय हैं ॥४६॥
शंका—तो क्या जल मृतिका शिलादि रूप देवता नहीं हैं?
समाधान–जलादिरूप तीर्थ नहीं हैं यह नहीं किन्तु तीर्थ ही हैं और मृतिका शिलादि रूप देवता नहीं हैं। यहभी नहीं देवता ही हैं। किन्तु वो तीर्थ और देवता बहुत काल पाकर पवित्र करते हैं। और साधु महात्मा दर्शन मात्र से ही पवित्र करदेते हैं। इस कारण से तीर्थ देवता और साधु महात्माओं में महान् अतन्तर है ॥ ५० ॥

अ. ४६ श्लो. २०-२३

नेह चात्यन्तसंवासः कर्हिंचित् केनचित् सह।
राजन स्वेनापि देहेन किमु जायात्मजादिभिः ।५१

पुष्णाति यानधर्मेण स्वबुद्ध्या तमपण्डितम् ।
तेऽकृतार्थं प्रहिण्वन्ति प्राणा रायः सुतादयः ॥५२॥

किसी काल में कृष्णचन्द्र ने अक्रूर को पाण्डवों की आनन्द कुशलता का पता लेने के लिये हस्तिनापुर में भेजे वहां अक्रूर ने सर्व की आनन्द कुशलता पूछ कर, धृतराष्ट्र को दुष्ट दुर्योधन के वशीभूत होकर पाण्डवों के साथ विषम दृष्टि वर्तते को देखकर कहा कि भो राजन् आप स्वजन दुर्योधनादि में तथा युधिष्ठिरादि पाण्डवों में समदृष्टि से वर्तते हुए परलोक में श्रेय गति को और इस लोक में कीर्ति को प्राप्त होंगे। ऐसा न करने पर इस लोक में निन्दित हुए कष्टतम लोक को प्राप्त होवोगे और इस लोक में हे राजन् किसी भी प्राणि के साथ अत्यन्त सर्वदा सहवास नहीं रहता है। क्योंकि स्वदेह अति प्रिय के साथ का भी यदि वियोग अवश्य ही होता है। तो स्त्री पुत्रादि के साथ वियोग होने में तो कहना ही क्या है। जन्म मरण में और सुख दुःखों में कोई किसी की सहायता नहीं कर सकता है। एक अकेला ही जन्मता है। एक अकेला ही मरता है। एक अकेला ही स्वकीय शुभाशुभ कर्मों का फल भोगता है।॥ ५२॥

जिन दुर्योधनादि पुत्रों को स्वपुत्रादि बुद्धि से पोषण करते हो वे पुत्रादि तुम्हारे धनादि को लेकर स्वयं मरे हुए

अथवा जीते हुए तुझको त्याग देंगे । तिन पुत्रादि से त्यागा हुआ पापकारी प्राणी चार पुरुषार्थों से वंञ्चित हुआ अन्धतम लोक को प्राप्त होता है । हे राजन् ! तिस हेतु से इस सर्व प्रपञ्च को स्वप्न, माया तथा मनो राज्यों के समान जानकर और मनको वशकर शान्त स्वभाव हुआ सर्व में सम दृष्टि वाला होना चाहिये । धृतराष्ट्र ने कहा हे महामति अक्रूर यद्यपि आपकी कल्याण कारी अमृत रूप वाणी सत्य और प्रिय है । तो भी पुत्रानुरागी मेरे चञ्चल हृदय में ये स्थिर नहीं होती है । ऐसा कपट युक्त धृतराष्ट्र का अभिप्राय जानकर अक्रूर ने द्वारका पुरी में जाकर रामकृष्ण से सर्व वृतान्त कह दिया ॥ ५२ ॥

प्राप्यं संप्राप्यते येन भूयो येन न शोचते ।
पराया निर्वृत्ते स्थानं यत्तज्जीवित मुच्यते ॥

इति श्रीभागवतसारबिन्दौ सारार्थदीपिका भाषाटीकायां पूर्वार्धे दशम स्कन्धः

अ० ६० श्लो० १४-२०

निष्किञ्चना वयं शश्वन्निष्किञ्चनजनप्रियाः ।
तस्मात् प्रायेण न ह्याढ्या मां भजन्ति सुमध्यमे ।१४।
उदासीना वयं नूनं न स्त्र्यपत्यार्थकामुकाः ।
आत्मलब्ध्याऽऽस्महे पूर्णा गेहयोर्ज्योतिरक्रियाः ।२०।

किसी काल में सुख शय्या पर बिराजमान जगद्गुरु श्रीकृष्ण के पाद पद्मों की रूक्मिणी निजकर कमलों से सेवा करती थी तिस सेवा करती हुई को विलास करते हुए कृष्ण चन्द्रजी कहते हैं। कि हे शोभने राज पुत्री तुमने अविचार से अज्ञात आचरणवालों, लोक मार्ग विरुद्ध गामियों को स्त्री वश न वर्तियों को हमारे को क्यों स्वीकार किया है। क्योंकि एक तो हम धनहीन हैं। दूसरा धनहीन भिक्षु भी हमारे को सदा प्रिय लगते हैं। तिसी हेतु से बहुलता करके धनवान धनाढ्य लोक मुझको सेवन नहीं करते हैं। और धनहीन पुरुषों का आश्रय लेकर स्त्रियें अति कष्ठ पाती हैं। जिनके अपने समान धन, जन्म, ऐश्वर्यादि होते हैं तिनके साथ ही आपस में मैत्री विवाहादि हुआ करते हैं। धन कुलादि में उत्तम अधमों का आपस में सम्बन्ध नहीं हुआ करता है। नारदादि भिक्षुओं करके श्लाघिता गुण हीन

हमारे को वृथा ही तुमने अज्ञान से स्वीकार किया है। अहं-कारी दुर्मद राजओं का मद नाश करने के लिये मैं तुम्हारे को लाया हूँ। अब तुम अपने रूप धन कुलादि के समान शिशुपालादि श्रेष्ट राजाओं का जाकर सेवन करो जहां तुम्हारी सर्व कामना भी पूरी होए ॥ १ ॥ और हम तो निश्चित ही देह गेहादि में उदासीन हैं स्त्री पुत्र धनादि की कामना वाले नही हैं। इसी हेतु से दीपादि ज्योति के समान साक्षीरूप से क्रिया रहित हुए स्थित हैं। निजात्मानन्द लाभ से सर्वदा पूर्ण हैं। ऐसे कहकर श्रीकृष्ण तूष्णी हो गये। रुक्मणी पूर्व अश्रुत अप्रिय वाक्यों को सुनकर भयभीत हुई त्याग भय से व्याकुल हुई मूर्च्छा खाकर गिर पड़ी। ऐसी दशा को देककर श्रीकृष्ण चन्द्र नीचे पड़ी हुई रुक्मणी को गोद में लेकर निजकर कमलों से मुख नेत्रों को पोंछते हुए कहते है कि हे प्रिये! मैने तो हास विलास से तुम्हारे वचन सुनने के लिये ऐसा कहा था। मैं तो जानता हूं कि तुम मेरे में अति प्रेम वाली हो। और गृहस्थ में ये ही तो आनन्द है। ऐसे हास विलासों के वाक्यों से दिन रात्रियों को व्यतीत करना चाहिये। ऐसा कहकर रुक्मणी को प्रसन्न कर लिया ॥ २ ॥

अ० ६३ श्लो० २६

त्रिशिरस्ते प्रसन्नोऽस्मि व्येतु ते मद् ज्वराद् भयम्।
यो नौ स्मरति संवादं तस्य त्वन्न भवेद् भयम् ॥३॥

उषा के नीमित्त वन्धन किये हुए अनिरूद्ध को छुड़ाने के लिये आए कृष्ण भगवान् के साथ, निज भक्त बाणासुर की रक्षा के लिये भगवान् शंकर ने युद्ध किया। तव कृष्ण का वल प्रवल जानकर शंकर ने कृष्ण पर तीन शिरोंवाला त्रिशिर नामका ज्वर छोड़ा तिस ताप कारी ज्वर को देखकर श्रीकृष्ण ने शान्तोग्र रूप शीत नाम का ज्वर छोड़ा। तिन दोनों के अति घोर युद्ध करने पर शंकर का त्रिशिर नाम का ज्वर शीत ज्वर से पीड़ित होकर निज रक्षा के लिये कृष्ण चन्द्र की स्तुति करने लगा। तव प्रसन्न होकर श्रीकृष्ण भगवान् ने कहा कि हे त्रिशिर ज्वर तुम्हारे पर मैं अति प्रसन्न हूँ। तुम्हारे को मेरे शीत ज्वर से भय न हो। मेरी आज्ञा पालन करते हुए तुम सुख से विचरो। सो आज्ञा यह है कि जो प्राणि अपने दोनों के इस संवाद को स्मरण करे तिस प्राणी को तुमने ताप कर पीड़ा भय उत्पादन न करना। इस श्रीकृष्ण की आज्ञा को स्वीकार करके महेश्वर त्रिशिर ज्वर श्रीकृष्ण भगवान् को नमस्कार कर चले गये ॥ ३ ॥

अ० ६४ श्लो० २१-३६

नाहं प्रतीच्छे वै राजन्नित्युक्त्वा स्वाम्यपाक्रमत् ।
नान्यद् गवामप्ययुतमिच्छामीत्यपरो ययौ ॥४॥
स्वदत्तां परदत्तां वा ब्रह्मवृत्तिं हरेच्च यः ।
षष्टिवर्षसहस्राणि विष्ठायां जायते कृमिः ॥ ५ ॥

द्वारकापुरी में पाप से गिर्गिट योनि में प्राप्त हुए राजा नृग को कूप में से निकालने पर श्रीकृष्णचन्द्रजी के कर कमल के स्पर्श से दिव्य रूप धारी का भगवान् पूछते हैं कि आप कौन हो ऐसी दशा को कैसे प्राप्त हुए। तब नृग ने भगवान की स्तुतिकर कहा कि भो भगवन् मैं राजा नृग हूं। बहु गौ दान करने पर किसी काल में पूर्व दान की गौ मेरे गौ धन में आमिली उस गौ को मैंने भूलकर दूसरे ब्राह्मण को दान कर दिया। तिस गौ ले जाते को देखकर पूर्व गौ ग्राही ब्राह्मण ने कहा कि यह गौ मेरी है। दूसरे विप्र ने कहा मेरी है। ऐसे विवाद करते हुए मेरे पास आए। तब मैंने हाथ जोड़ कर एक एक को कहा कि भो विप्रों मुझ अपराधी से एक एक लक्ष गौ आप लेलें विवाद न करें। तब एक गोस्वामी ने कहा कि हे राजन् मैं इस गौ को छोड़कर दूसरी लाख गौओं नहीं चाहता हूँ ऐसा कह

कर चला गया दूसरे ने कहा कि मुझको यदि एक लक्ष से अधिक और भी दश हजार गौ दें, तो भी इस गौ को छोड़कर दूसरी गौओ नहीं ले सकता हूँ। ऐसा कहकर दूसरा विप्र भी चला गया। इतने में ही मेरी मृत्यु होने पर यम राज ने पूछा कि आपने पहिले पुण्य फल भोगना है या पाप फल भोगना है। तब मैंने कहा कि पाप फल पूर्व भोगना है। इतने में ही मैं पाप योनि रूप गिर्गिट होकर यहां गिर पड़ा हूँ। आप ईश्वर के स्पर्श दर्शन लाभ से इस शुभ गति को प्राप्त हुआ हूं ॥ ४ ॥ राजा नृग कहता है कि भो भगवान् जो कोई भी स्वयं,आप से दी हुई,ब्राह्मण की जीविका को हरण करता है। अथवा दूसरे पिता, पितामहादि की दी हुई जीविका को हरता है। सो ब्राह्मण जीविका हारी साठ हजार वर्ष तक विष्ठा में कीट होकर जन्मता है। ऐसे भूल से ब्राह्मण का धन हरने से राजा नृग गिर्गिट की योनि को प्राप्त हुआ है। और जानकर जो ब्राह्मण की जीविका को हरते हैं। तिनकी दुर्गति का तो कहनाही क्या है। इस हेतु से दान भी पूर्व उत्तर का विचार करके ही बुद्धिमान पुरुष को करना चाहिये। ॥ ५ ॥

अ० ६६ श्लो० २१-३८-४६

पृष्टश्चाविदुषेवाभैा कदाऽऽयातो भवानिति ।

क्रियते किं नु पूर्णानामपूर्णैरस्मदादिभिः ॥ ६ ॥
विदाम योगमायास्ते दुर्दर्शा अपि मायिनाम् ।
योगेश्वरात्मन्निर्माता भवत्पादनिषेवया ॥ ७ ॥
इत्याचरन्तं सद्धर्मान् पावनान् गृहमेधिनाम् ।
तमेव सर्वगेहेषु सन्तमेकं ददर्श ह ॥ ८ ॥

नारद कृष्ण भगवान् के सोलह हजार एकसो आठ स्त्रियें सुनकर, तिन बहु स्त्रियों की आपस में कलह देखने की इच्छा से द्वारका में गये। प्रथम रुकमणी के गृह में जाकर रुकमणी को हजारों समान रूपवाली दासियों के साथ रत्न जड़ित पंखे से पलंग पर विराजमान कृष्ण की सेवा करती हुई को देखा। तब श्रीकृष्ण ने शीघ्रता से उठ कर सिर नमाकर श्रद्धा से नमस्कार किया। शुभासन पर बैठा कर नारद के चरण धोकर जल को शिर में धारण किया। आप सर्व प्राणियों के आत्मा को सर्व प्राणियों से मैत्री भाव करना कोई आश्चर्य नहीं है। ऐसा कहकर नारद सत्यभामा के गृह में जाकर कृष्ण चन्द्र को सत्यभामा और उद्धव के साथ पासा खेलते को देखा। श्रीकृष्ण ने भक्ती से प्रणाम कर आसनादि देकर अविद्वान के समान कृष्ण चन्द्र ने नारद को पूछा कि पूज्यपाद आप कब आये हो।

भो पूज्य पाद आप पूर्ण कामों का हमारे जैसे संसारासक्तों अपूर्ण कामों करके क्या कार्य किया जाए। तो भी भो देवर्षे कुछ कहो हमारे को जिसके हमारा शुभ जन्म सफल होए इतने में नारद दूसरे घरों में जाकर कहीं तो श्रीकृष्ण को गौओं दान करते को देखा, कहीं शास्त्र सुनते सुनाते को देखा सर्व स्त्रियों को और कृष्ण भगवान् को गृहों में पवित्र कल्याण कारी गृहस्थाश्रम के धर्म कर्म करते को देखकर नारद ईश्वर की योग माया से मोहित हुए कहते हैं । कि भो योगेश्वर, सर्वात्मन्, आपकी योगमाया माया वाल ब्रह्मादि को भी दुर्दश है। ऐसे मेरे मन में अथवा आपके स्वरूप में प्रतीत होती हैं, केवल ऐसा जानत हूँ। सो भी आपके पाद पद्मो को सेवा के प्रभाव से जानता हूँ। परन्तु आपके परमार्थ स्वरूप को नहीं जानता हूं, कि येही बहुरूप धारी ही आपका परमार्थ स्वरूप है या दूसरा कोई आपका परमार्थ स्वरूप है। इससे आप हमारे को यहां से जाने की आज्ञा दीजिये आपके कल्याणकारी शुभ गुणों को गाता हुआ लोकों में रटन करूं ॥ ७ ॥ तब नारद को भी श्री कृष्ण भगवान् ने कहा कि हे देव ऋषि धर्म का मैं वक्ता हूं और कर्त्ता हूं तिस धर्म को शिक्षा करता हुआ इस लोक में स्थित हूं आप मनमें खेद मत करें वास्तव से ये बहु स्वरूप मेरे

नहीं हैं यह तो माया से बहुरूप कल्पित हैं। श्री शुकदेवजी कहते हैं। ऐसे गृहस्थाश्रमियों के कल्याण कारी पवित्र शुभ धर्मों को आचरण करते हुए तिस कृष्ण भगवान् को परमार्थ से एक अद्वय स्वरूप को तिस श्रीकृष्ण की योग माया के बल से सोलह हजार एक सो आठ सर्व गृहों मे नारद ने देखा।८।

अ० ७२ श्लो० २०-२१

योऽनित्येन शरीरेण सतां गेयं यशो ध्रुवम्।
नाचिनोति स्वयं कल्पः स वाच्यः शोच्य एव सः।९।
हरिश्चन्द्रो रन्तिदेव उञ्छवृत्तिः शिबिर्बलिः।
व्याधः कपोतो बहवो ह्यध्रुवेण ध्रुवं गताः॥१०॥

कृष्ण भगवान् युधिष्ठिर के यज्ञ साधन के लिये भीम अर्जुन के साथ ब्राह्मणों का रूप धारण कर जरा संध के पास गये। जरासंध को कहा कि हम अतिथि दूर से चल कर आये हैं। आप हमारे को जो मांगे सो दें। क्यों कि दानवीरों को संसार में क्या अदेय है, अर्थात् सर्व ही देय होता है। और संसार में जो नर स्वयं समर्थ हुआ अनित्य धन शरीरादि करके नित्य स्थायी श्रेष्ठ पुरुषों में कीर्तनीय यश को संपादन नहीं करता है। सो नर शोचनीय और निन्दनीय है ॥ ९ ॥ क्यों कि तिस यशकारी नित्य स्थायी

धर्म के लिये, विश्वामित्र से अर्थ का अनृणी होने के लिये राजा हरिश्चन्द्र स्त्री पुत्रादि सर्व को बेचकर स्वयं चांडालता को प्राप्त हुआ भी अनृणी होकर अयोध्या वासियों के सहित स्वर्ग को प्राप्त हो गया। और राजा रन्तिदेव भी सकुटुम्ब अड़तालीस दिन अलब्ध जल हुआ भी कदाचित प्राप्त अन्नजलादि को अतिथियों को देकर ब्रह्मलोक में प्राप्त हो गये। उञ्छवृत्ति जीवी मुद्‌गल ऋषि छै मास सकुटुम्ब पीड़ित हुआ भी अतिथि को दान देने से ब्रह्मलोक को प्राप्त हो गये। राजा शिवि शरणागत कपोत पक्षी की रक्षा के लिये,स्व मांस को बाज सम इन्द्र को देकर स्वर्ग को चले गये। राजा बलि ने ब्राह्मण वेष धारी वामन हरि के लिये सर्वस्व को देकर स्वात्म निवेदन कर दिया। कपोत पक्षी व्याध रूप अतिथि के लिये स्व स्त्री के सहित निज मांस को देकर विमान द्वारा स्वर्ग को प्राप्त हो गये और व्याध भी सस्त्री कपोत के अतिथि पूजन व दान को देखकर, स्वयं सर्व हिंसा से विरक्त हुआ महा मार्ग में प्रविष्ट हुआ वनाग्नि से दग्ध देह निष्पाप हुआ देव लोक को चला गया। हे राजन् ! इस प्रकार और भी दानवीर पुरुष बहुत से अनित्य धन शरीरादि के दान से चिर स्थायी लोक को प्राप्त हो गये हैं। ऐसे कृष्णादि के याचना करने पर जरासंध ने

शब्द, आकृति, चिन्हों से क्षत्रिय जानकर भी कहा कि याचना करने पर प्राण भी देऊंगा। तब श्रीकृष्ण भगवान् ने कहा कि हे राजन ! हमारे तीनों में से किसी भी एक के साथ द्वन्द युद्ध यदि आप देना स्वीकार करते हो तो देदें क्यों कि हमतो युद्धार्थी क्षत्रिय हैं। यह दोनों भीम अर्जुन हैं। और मैं तुम्हारा रिपु कृष्ण हूँ। ऐसा सुनकर जरासंध हंसता हुआ कहता है, कि युद्ध के भयसे मथुरा को त्याग कर समुद्र की शरणागत हुए तुम्हारे साथ तो मैं युद्ध करता नहीं और अर्जुन बालक है। युद्ध योग्य नहीं है। यह भीम मेरे समान बल वाला है। तब भीम ने गदा युद्ध कर लात पर लात रख कर फाड़ दिया। श्रीकृष्ण चन्द्र ने तब निरुद्ध किये राजाओं को मुक्त कर युधिष्ठिर का यज्ञपूर्ण किया ॥ १० ॥

अ० ७४ श्लो० ४-५-२०-२१

न ह्येकस्याद्वितीयस्य ब्रह्मणः परमात्मनः।
कर्मभिर्वर्धते तेजो ह्रसते च यथा रवेः ॥ ११ ॥
न वै तेऽजित भक्तानां ममाहमिति माधव।
त्वं तवेति च नानाधीः पशूनामिव वैकृता ॥१२॥
यदात्मकमिदं विश्वं क्रतवश्च यदात्मकाः।

अग्निराहुतयो मन्त्राः सांख्यं योगश्च यत्परः ।१३।
एक एवाद्वितीयोऽभावैनदात्म्यमिदं जगत् ।
आत्मनाऽऽत्माश्रयः सभ्याः सृजत्यवति हन्त्यजः ।१४।

श्रीकृष्णचन्द्र को जरासन्ध के वध निवेदन पूर्वक धर्म, पुत्र के चरणों में नमस्कार करते हुए को आनन्दित होकर युधिष्ठिर कहते हैं कि भो विभो जो त्रिलोकी गुरु सनत्कुमारादि हैं वो भी आपकी शासना को महान दुर्लभ के भाग्य से प्राप्त कर पालन करते हैं। सो आप अतिदीन अल्प नरेश मानियों की शासना को धारण करते हैं यह लोकों को अति मोहित करना है अथवा आप अद्वय पूर्ण ब्रह्म को भक्तों पर कृपा कर शासना पालन करने से भी कोई आप के तेज की हानि वृद्धि नहीं है। क्योंकि श्रुति कहती है कि आप परमात्म अद्वय पर ब्रह्म एक सर्व में पूर्ण के स्वरूप तेज की परानुग्रहार्थ शुभाशुभ कर्मों करके ह्रास और वृद्धि नहीं होती है। जैसे सूर्य की उदय अस्त रूप कर्मों करके वृद्धि और ह्रासता नहीं होती है ॥ ११ ॥ हे अजित, माधव, यदि प्रसिद्ध आपके भक्तों की भी अहं मम, त्वं तवादि नाना रूप भेद बुद्धि नहीं होती है। जैसे पशुओं के समान अज्ञानी जनों की देहादि में भेद मति होती है। तो आप पूर्ण ब्रह्म की भेद मति न होने में तो कहना ही क्या है

।१२। तब राजसूययज्ञ में ब्रह्मर्षियों को और राजर्षियों को बुलाकर युधिष्ठिर ने पूछा कि सर्व पूज्यपाद समाज में प्रथम किसकी पूजा की जाए। तब बहुतों के पूजनीय होने पर भी सहदेवने कहा कि जिसका स्वरूप भूत ये विश्व है। सर्व क्रतु यज्ञ-आदि जिसका स्वरूप है। और अग्नि आहुतियें, वेदमन्त्र, सांख्यरूप ब्रह्मात्म ज्ञान, योग रूप उपासना, जिस परमात्मा परक है ॥ १३ ॥ एक पूर्ण अद्वय स्वरूप यह श्रीकृष्ण भगवान् हैं। इसी कारण से इस ईश्वर का ही स्वरूप भूत यह दृश्यमान् प्रपञ्च है क्यों कि अन्य किसी की अपेक्षा न कर निजात्म स्वरूप से ही स्वात्मरूप जगत् का आश्रय है। और आपही आज परमात्मा इस जगत् की उत्पत्ति, लय, पालन कर्ता है। इस कारण से निज कल्याण के अभिलाषी जन को सर्व। पूज्यपाद श्रीकृष्ण भगवान् का ही पूजन करना योग्य है। तब सभ्य श्रेष्ठ पुरुष सहदेव के कथन की साधु साधु ऐसे शब्दों से प्रशंसा करने लगे। युधिष्ठिर ने सर्व का मत जान कर श्रीकृष्ण भगवान् की विधिपूर्वक पूजा की। और श्रीकृष्ण के चरणों के जल को भ्राता स्त्रियों के सहित शिर में धारण करके परमानन्द में मग्न हो गये ॥ १४ ॥

अ. ७५ श्लो. ५

गुरु शुश्रूषणे जिष्णुः कृष्णः पादावनेजने ।
परिवेषणे द्रुपदजाः कर्णो दाने महामनाः ॥१५॥

युधिष्ठिर के राजसूय यज्ञ में पाकशाला का अध्यक्ष भीम था। धनाध्यक्ष दुर्योधन था, सहदेव पूजा सन्मान करने में था। नकुल नाना वस्तुओं के संपादन में था। अर्जुन श्रेष्ठ गुरु आदि की चन्दन लेपनादि रूप सेवा में था। चराचर के पूजनीय श्रीकृष्ण भगवान् पाद प्रक्षालन रूप सेवा में थे यज्ञ में सत्कार से प्रवेश करवाना रूप सेवा में राजा द्रुपद के पुत्र धृष्टद्युम्नादि थे। दान वीर कर्ण दान करने में नियुक्त किये गये थे। यथा योग्य सर्व कुटुम्ब परिवार ही यज्ञ सेवा में नियुक्त था। जब चतुरंगनी सेना और बाजे गाजियों के साथ महान् समारोह से धर्म पुत्र युधिष्ठिर यज्ञ का अन्तिम अवभृथ स्नान करने को देव नदी गङ्गा में गये हैं। तब मानो देव गन्धर्वादि ने आनन्दित होकर दुंदुभी बाजे बजाते हुओं ने पुष्पों की वृष्टि की युधिष्ठिर के ऐसे राजसूय यज्ञ में दुर्योधन को छोड़कर, देव मनुष्यादि सब ही आनन्दित हुवे ॥१५॥

अ० ८० श्लो० ६-१८-३४-३५-४०-४१

कृष्णस्यासीत् सखा कश्चिद् ब्राह्मणो ब्रह्मवित्तमः ।

विरक्त इन्द्रियार्थेषु प्रशान्तात्मा जितेन्द्रियः ॥१६॥
तं विलोक्याच्युतो दूरात् प्रिया प्रर्यङ्कमास्थितः
सहसोत्थाय चाभेत्यदोर्भ्यां पर्यग्रहीन्मुदा ॥१७॥
नाहमिज्याप्रजातिभ्यां तपसोपशमेन वा ।
तुष्येयं सर्वभूतात्मा गुरुशुश्रूषया यथा ॥३४॥
अपि नः स्मर्यते ब्रह्मन् वृत्तं निवसतां गुरौ ।
गुरुदारैश्चोदितानामिन्धनानयने क्वचित् ॥३५॥
अहो हे पुत्रका युयमस्मदर्थेऽति दुःखिताः ।
आत्मा वै प्राणिनां प्रेष्ठस्तमनाहृत्यमत्पराः ॥४०॥
एतदेव हि सच्छिष्यैः कर्तव्यं गुरुनिष्कृतम् ।
यद् वै विशुद्ध भावेन सर्वात्मार्पणं गुरौ ॥४१॥

राजा परीक्षित् को श्री शुकदेव कहते हैं कि कोई सुदामा नाम का ब्राह्मण वेद और पर ब्रह्म का ज्ञाता, इन्द्रियों के विषयों में विरक्त, जितेन्द्रिय प्रशान्तात्मा श्री कृष्ण चन्द्र का परम मित्र था। यथा लाभ प्राप्त में सन्तोषी गृहस्थाश्रमी था। तिसकी पतिव्रता दरिद्र पीड़ित हुई स्त्री ने कहा भो प्राणनाथ। आपका सखा साक्षात् लक्ष्मीपति कृष्ण भगवान् ब्रह्मण्य द्वारका में विराजमान हैं। तिसके पास जाकर याचक धनाढ्य. हुए. मैंने देखे हैं। आप भी तिसके पास जाएं तो बहुत धन आपको देना मुक्ति के दाता

कृष्ण भगवान् का कोई आश्चर्य नहीं माना जाता है। सुदामा ने कहा हे प्रिये धनाशा का ग्रास होना श्रेय कारी नहीं है। अच्छा मेरी निराशा को तो श्रीकृष्ण सर्वज्ञ जान ही लेंगें। परन्तु जाने में श्रीकृष्ण के दर्शन का परम लाभ होगा। ऐसा विचार कर भार्या से कहा कि श्रीकृष्ण के लिये कुछ भेंट दो तो द्वारका में जाऊंगा। तव भार्या ने चार मुट्ठी टूटे चांवलों की मांगकर पति के वस्त्र में बान्ध दी ॥ १६ ॥ तव सुदामा द्वारका में गये। तिस परम मित्र को दूर से ही देखकर श्रीकृष्ण रुक्मणी के पलंग से शीघ्र ही उठकर दो भुजों से पकड़ कर छाती से लगा कर अति आनन्दित हुए। और अपने पर्यङ्क पर विठाकर सुदामा के चरण धोये तिस जल को स्त्रीयों सहित शिरपर धारण किया और धूपदीप फूलादि से पूजन कर श्रीकृष्ण पूछते हैं कि भो मित्र! कुछ गुरुकुल वास को भी याद करते हो। क्यों कि इस संसार में तीन गुरु मुख्य माने हैं। एक तो जन्म दाता पिता गुरु है। दूसरा द्विजाती पुरुष को उपनयन करा कर वेदाध्यापक गुरु है। तीसरा सर्वाश्रमियों का अद्वय ब्रह्मात्मज्ञान दाता गुरु है जैसे ज्ञानदाता मैं सर्व का गुरु हूं। क्यों कि ज्ञानदाता गुरु से अधिक पूज्य संसार में और कोई नहीं है ॥ १७ ॥ मैं ईश्वर. गृहस्थाश्रम के धर्म यज्ञादि

और उत्कृष्ट जन्म उपनयन ब्रह्मचारी का धर्म तिन दोनो से सन्तुष्ट नहीं होता हूँ। और तप रूप वानप्रस्थ के धर्म से, मन निरोधादि यति के धर्म से भी मैं ऐसे सन्तुष्ट नहीं होता हूं। जैसे सर्व प्राणियों के आत्मा स्वरूप ब्रह्म श्रोत्रिय ब्रह्म निष्ठ गुरु की सेवा से सन्तुष्ट होता हूं। ॥ १८ ॥ किं च हमारे लोगों की करी हुई गुरु सेवा देवयोग भाग्य से सफल सम्पन्न हुई को आप स्मरण करते हो। जो हमारा गुरुकुल में वास करते हुओं का वृतान्त है, हे ब्रह्मन् सो स्मरण होता है ॥ १९ ॥ किसी काल में ईन्धन काष्ठ लाने के लिये गुरु पत्नी से प्रेरित हम लोगों को महारण्य में प्रविष्टों को महान् सवायु वर्षा हुई थी। तब सूर्यास्त होने पर पूर्ण अंधेरी रात्री में जलपूर्ण भूमि में ऊंचा नीचा नहीं दिख पड़ता था। इतने में हमारे को काष्ठार्थ वन में गये ज़ानकर सूर्य उदय होने पर हमारे पूज्यपाद सांदीपनि गुरु खोजते हुए हम शिष्यों को वात वर्षा शीत पीड़ित काष्ठ भार युक्तों को प्राप्त हुए। और पूज्य पाद गुरुजी ने कृपा से कहा कि अहो आश्चर्य है हे पुत्रों आप लोग हमारे लिये अती दुःख पीड़ित हुए। लोक में प्रसिद्ध सर्व प्राणियों को अपना देह अति प्रिय है। तिस देह का निरादर करके आपने हमारे सुख के लिये महान् कष्ठ पाया ॥ २० ॥

निश्चित ये ही श्रेष्ठ शिष्यों करके कर्त्तव्य है जो कि गुरु सेवा कर गुरु ऋण से मुक्त होना। और जो कपट रहित अति शुद्ध भाव से सर्व अर्थ धनों को, शरीर को गुरु प्रसन्नता निमित्त समर्पण कर देना। अर्थात् स्त्री धनादि को त्यागकर चार साधन युक्त ब्रह्मात्मस्वरूप ज्ञान के अर्थ ब्रह्म श्रोत्रिय, ब्रह्मनिष्ठ गुरुकी शरणको प्राप्त होना है। ऐसे प्रसन्न होकर सांदीपनि गुरु ने कहा कि मैं सन्तुष्ट हूँ आप सर्व विद्या युक्त हुए सफल मनोरथ होएं। सुदामाने कहा भो देव देव! जद्गुरो हमारे को क्या संसार में अब सम्पादन करना रहा है। जो हमने आप सत्यकाम ईश्वर के साथ गुरु कुल में वास किया है। पूर्ण काम सुदामा की धनाशा न होने पर भी कृष्णचन्द्र निज भक्त को कुछ लौकिकानन्द भोगाने की इच्छा से हंसते हुए कहते है कि मेरे लिये आप पहिले कुछ वस्तु दिया करते थे अब भी कुछ वस्तु देनी चाहिये। ॥ २१ ॥

अ० ८१ श्लो० ३-४-२०

किमुपायनमानीतं ब्रह्मन् मे भवता गृहात्।
अण्वप्युपाहृतं भक्तैः प्रेम्णा भूर्येव मे भवेत् ॥
भूर्यप्यभक्तोपहृतं न मे तोषाय कल्पते ॥ २२ ॥

पत्रं पुष्पं फलं तोयं यो मे भक्त्या प्रयच्छति ।
तदहं भक्त्युपहृतं मश्नामि प्रयतात्मनः ॥२३॥
अधनोऽयं धनं प्राप्य माद्यन्नुच्चैर्न मां स्मरेत् ।
इति कारुणिको नूनं धनं मेऽभूरि नाददात् ॥२४॥

टूटे चांवल लज्जा से न देते हुए सुदामा से श्रीकृष्ण हंसते हुए बलात्कार से छीनते हैं। और कहते हैं कि ब्रह्मन घरसे आप मेरे लिये क्या भेंट लाये हो। यदि कहें कि अल्प वस्तु आपको क्या दें। तो श्रीकृष्ण ने कहा कि जो भक्तों करके श्रद्धा प्रेम से अणु मात्र भी मेरे लिये समर्पण किया जाता है। सो निश्चित ही मुझको महान् आनन्द कारी होता है। और अभक्तों करके मेरे लिये बहुत भेट समर्पण की हुई, सो अधिक भेट मुझको सन्तोष कारी नहीं होती है॥२२।

हे परम मित्र जो प्राणि मुझको पत्र, पुष्प, फल अथवा अति सुलभ जल भी भक्ति से देता है। तिसको भी श्रद्धालु के श्रद्धा भक्ति से दिये हुए को मैं ईश्वर आनन्दित होकर खाता हूँ स्वीकार करता हूँ॥ २३ ॥ ऐसा कहकर टूटे चांवल खोस कर एक मुट्ठी चाब गये दूसरी मुट्ठी चाबने पर रुकमणी ने हाथ पकड़कर कहा कि एक मुट्ठी से इसको मुझ लक्ष्मी का बहुतसा भाग दिया गया। दूसरी मुट्ठी चाब

कर क्या मुझको सर्वथा ही त्यागते हो। कृष्ण भगवान् ने संकल्प से निज भक्त के सुख भोग के लिये सुखकारी पुरी रचदी। सुदामा श्री कृष्ण से आज्ञा लेकर निजगृह को चल दिये मार्ग में श्रीकृष्ण की स्तुति करते हुए श्रीकृष्ण के अंग स्पर्श से तथा पूजित हुए अपने अहो भाग्य मानते हैं। और विचारते हैं कि परम कृपालु श्रीकृष्ण यह जानकर यह सुदामा निर्धन है, धन को प्राप्त होकर मद वाला हुआ आपको उच्च मानता हुआ मुझ ईश्वर को स्मरण नहीं करेगा इस कारण से दयालु ने मुझको अल्प धन भी न दिया। अहो भगवान् की भक्तों पर कितनी महात्कृपा है। ऐसा विचारता हुआ, ईश्वर संकल्प रचित सुखकारी पुरी को प्राप्त होकर कहा कि मुझको भक्ती हीन जानकर श्रीकृष्ण ने यह विभूति दी है। भक्तों को ज्ञान देते हैं ऐसा जानकर किंचित् मात्र भी राग मदादि को न प्राप्त हुआ और अधिक ईश्वर में अनुरक्त हो गये॥ २४॥

अ. ८२ श्लो. ३४-३५-४८

वसुदेवः परिष्वज्य सम्प्रीतः प्रेमविह्वलः।
स्मरन् कंस कृतान् क्लेशान् पुत्रन्यासं च गोकुले॥२५॥
कृष्णरामौ परिष्वज्य पितरावभिवाद्यच।

न किञ्चनोचतुः प्रेम्णा साश्रु कण्ठौ कुरुद्वह ॥२६॥
अध्यात्मशिक्षया गोप्य एवं कृष्णेन शिक्षिताः।
तदनुस्मरणध्वस्त जीवकोशास्तमध्यगन् ॥ २७ ॥

एक समय सूर्य ग्रहण के महा पर्व काल में वसुदेवादि राम कृष्ण के सहित सर्व यादव कुरुक्षेत्र में गए। वहां निज सम्बन्धी युधिष्ठिरादि राजोंसे मिलकर अति आनन्दित हुए। तब नन्दजी भी राम कृष्ण सहित तथा सर्व यादवों के सहित वसुदेव को कुरुक्षेत्र में आयों को सुनकर सपरिवार गोपों सहित आये। तिस नन्द को आया देखकर वसुदेवादि यादव रोमांच युक्त आनन्दि हुए मिलने को ऐसे उठे कि जैसे मृत्यु हुवा जन्तु प्राणों के प्राप्त होने पर उठता है। चिरकाल से दर्शन की लालसा वाले भुजाओं से पकड़ पकड़ अतिगाढ़ प्रेम से मिले। और वसुदेव कंस कृत क्लेशों को तथा गोकुल में नन्द से आपत्ति काल में पुत्रों की रक्षा करी हुई को स्मरण करते हुए नन्द को भुजाओं में ले मिलकर अति प्रसन्न हुए आनन्द में मग्न हो गये॥२५॥

श्री शुकदेवजी ने कहा हे राजन्। प्रेम से कण्ठ तक आंसुओं की धारा युक्त हुए नन्द यशोदा दोंनो राम कृष्ण को गोद में लेकर चुम्बन करते हुए वियोग जन्य शोक को

त्यागते हुये प्रेम से रुद्ध कण्ठ हुए कुछ न बोले राम और कृष्ण माता पिता के चरणों में नमस्कार कर आनन्दित हुए ॥ २६ ॥ सर्व यथा योग्य मिलकर आनन्दित हुवे गोप गोपियें श्रीकृष्ण के दर्शन करने में व्यवधान कारी नेत्रों की पलकों की निन्दा करते हुए। एक रस दृष्टि से कृष्णचन्द्र को ही देखते हैं। तब विरह कातर गोपियों को देखकर श्रीकृष्ण बोले हे गोपियों मैं सर्व भूत प्राणियों में पाञ्च भूतों के समान व्यापक हूं ऐसे सर्व के आत्मा स्वरूप अद्वयपरमानन्द मुझ में मन लगाने वाला जीवन्मुक्त हो जाता है। श्री शुकदेवजी कहते हैं कि हे राजन्। इस प्रकार ब्रह्मात्माद्वयस्वरूप अध्यात्मविद्या के उपदेश करके श्रीकृष्ण से शिक्षित हुई गोपियां पूर्व उक्त तिस ब्रह्मात्म तत्त्व के स्मरण से नष्ट हो गया है अज्ञान सहित पञ्च कोश जीव की उपाधि रूप जिनो का वे गोपियां श्रीकृष्ण के वाक्यों के पूर्ण विचार से मानो साक्षात् परमानन्द कृष्ण भगवान् को ही प्राप्त हो गई। ऐसे भगवान् की अमृत रूप कल्याण कारी लीला है। दुर्जनों को अभाग्य वश से अविचार से दुर्गतिकारी हो जाती है ॥२७॥

अ० ८४ श्लो० ९-१०-१२-१३-३७-३८-६४

अहो वयं जन्मभृतो लब्धं कार्त्स्न्येन तत्फलम्।

देवानामपि दुष्प्रापं यद् योगेश्वरदर्शनम् ॥२८॥
किं स्वल्पतपसां नृणामर्चायां देवचक्षुषाम् ।
दर्शनस्पर्शनप्रश्नप्रह्वपादार्चनादिकम् ॥ २९ ॥
नाग्निर्न सूर्यो न च चन्द्रतारका न भूर्जलं खं श्वसनोऽथ वाङ् मनः । उपासिता भेदकृतो हरन्त्यघं विपश्चितो घ्नन्ति मुहूर्तसेवया ॥ ३० ॥
यस्यात्मबुद्धिः कुणपे त्रिधातुके स्वधीः कलत्रादिषु भौम इज्यधीः । यत्तीर्थबुद्धिः सलिले न कर्हिचिज्जनेष्वभिज्ञेषु स एव गोखरः ॥ ३१ ॥
अयं स्वस्त्ययनः पन्था द्विजातेर्गृहमेधिनः ।
यच्छ्रद्धयाऽऽप्तवित्तेन शुक्लेनेज्येत पूरुषः ॥ ३२॥
आत्मलोकैषणां देव कालेन विसृजेद् बुधः ।
ग्रामे त्यक्तैषणाः सर्वे ययुर्धीरास्तपोवनम् ॥ ३३ ॥
मा राज्यश्रीरभूत् पुंसः श्रेयस्कामस्य मानदः ।
स्वजनानुत बन्धून् वा न पश्यति ययान्धदृक् ॥३४॥

कुरुक्षेत्र में श्रीराम कृष्ण को आये सुनकर तिनके दर्शन की इच्छा से वेद व्यास, नारद, च्यवन, देवल, असितादि ऋषि कुरुक्षेत्र में चलकर आये। तिन ब्रह्मवेत्ता मुनियों

को दूरसे देखकर राजा, पांडव, राम कृष्ण ने शीघ्र ही स्व स्वासनों से उठकर नमस्कार किया। तिन मुनियों का स्वागत, आसन, पाद्यार्घ्यादि करके रामसहित श्रीकृष्ण ने प्रेम से पूजन किया। सत्कार से मुनियों को उच्चासनों पर बिठाकर श्रीकृष्ण भगवान् युधिष्ठिरादि राज समाज सहित सर्व सभा को सुनाते हुए बोले। कि अहो भाग्य है आज हम सफल जन्म हो गये। आज हमने मानव जन्म का फल पूर्ण रीति से प्राप्त कर लिया है। क्यों कि देवताओं को भी प्राप्त होना दुर्लभ जो ब्रह्मनिष्ठ योगेश्वरों का दर्शन है सो हमने प्राप्त कर लिया है ॥ २८ ॥ अल्प तपवाले पुरुषों को मूर्ति प्रतिमादि में देव दृष्टि वालों को तिन योगेश्वर ब्रह्मवेत्ता मुनियों के दर्शन, स्पर्श, प्रश्न बहु प्रकार पादार्चनादिक क्या प्राप्त हो सकते है? अर्थात् नहीं प्राप्त होते हैं ॥ २९ ॥ क्योंकि केवल जल रूप ही तीर्थ नहीं है। और केवल मृत्तिका, शिलादि रूप ही देवता नहीं है। किन्तु जंगम तीर्थ साधुमहात्मा अति श्रेष्ठ तीर्थ होते हैं। क्योंकि वो जल रूप तीर्थ, और मृत्तिका शिलादि रूप देवता पूजे हुए बहुत काल पाकर पवित्र करते हैं। और जंगम तीर्थ साधु महात्मा दर्शन से पापों को, प्रश्न से संशय रूप ताप को, संतोष से दरिद्रता को दूरकर शीघ्र ही पवित्र

कर देते हैं ॥ ३० ॥ अग्नि, सूर्य, चन्द्रमा, तारागण, भूमि, जल, आकाश वायु, वाणि, मन यह सर्व पूजे हुए भी भेद कारी होने से पापों को नहीं हरते हैं, अथवा भेद बुद्धिवाले पुरुषों के पापों को नहीं हरते हैं। और भेद रहित बुद्धि वाले निष्प्रही विद्वान् महात्मा एक मुहुर्त मात्र की सेवा से पापों को नष्ट कर देते हैं। ॥ ३१ ॥ इस हेतु से वीतराग विद्वान् साधुमहात्मा को छोड़कर केवल अन्य तीर्थ मूर्ति में देवादि बुद्धि से जो आसक्त हैं वे अतिमन्द हैं। क्योंकि जिसकी शव समदेह में वात, पित्त, कफ,तीनों के विकार में ही आत्म बुद्धि है। और स्त्री पुत्रादि में ही सर्वस्व बुद्धि है जिसकी भूमि के विकार मूर्ति आदि में ही है देवता बुद्धि जिसकी। और जलादि में ही है तीर्थ बुद्धि जिसकी। अद्वय ब्रह्मात्म वेत्ता वीतराग साधुमहात्माओं में पूज्य बुद्धि नहीं है जिनकी वे भारवाही बैल हैं। अथवा निश्चित् ही भारवाही खर हैं। क्योंकि पशुओं में अति विवेकहीन खर होता है। इस कथन से श्रीकृष्ण ने तीर्थ और देव मूर्ति का निषेध नहीं किय। किन्तु शास्त्र ज्ञाता ब्रह्मवेत्ता वीतराग साधु महात्माओं का सत्कार पूजन अवश्यही कर्त्तव्य है यह कहा है ॥ ३२ ॥ राम और श्रीकृष्ण के दर्शन कर मुनियों के जाने काल में वसुदेव हाथ जोड़ कर मुनियों से पूछते

हैं ? कि हमारा कल्याण कैसे होगा सो कहो। तब नारद बोले कि यह कोई आश्चर्य नहीं जो वसुदेव, कृष्ण को पुत्र मानकर उनसे न पूछते हुए, हमारे से कल्याण का मार्ग पूछते हैं। अति समीपवास ही अनादर का हेतु है। जैसे गङ्गा तटवासी गङ्गा जल में अति आदर नहीं करते हैं। नारद ने कहा कि द्विजाति गृहस्थाश्रमी को ये ही मोक्ष का मार्ग है कि जो न्याय धर्म से प्राप्तशुक्ल धन से निष्काम होकर श्रद्धा करके पूर्ण परमात्मा का ही यजन पूजन करना ॥ ३३ ॥ यज्ञ दान करके धन की इच्छा त्यागे। गृह उचित भोगों करके दारा पुत्र की इच्छा त्यागे। और स्वर्गादि की इच्छा को ब्रह्म से भिन्न सर्व नश्वर स्वभाव हैं ऐसे विचार कर बुद्धिमान त्यागे। द्विजाति तीन ऋणों सहित जन्म लेता है। ब्रह्म चर्य करके ऋषि ऋण से यज्ञ करके देव ऋण से, पुत्र करके पितृ ऋण से मुक्त होता है। ऐसे तीन ऋणो से मुक्त होकर और विषयों में त्याग इषणा वाले बुद्धिमान जन बहुत से तपोवन को चले गये। तीन ऋणों से निस्तीर्ण न होकर गृह को त्यागता हुआ अधो पतन होता है ॥ ३४ ॥ दो ऋणों से तो आप मुक्त हो, यज्ञ करके तीसरे देव ऋण से भी मुक्त होना योग्य है। ऐसा नारद से सुनकर वसुदेव तिस ऋषि समाज को यज्ञ

में ऋत्विज वर्ण कर यज्ञ कराते भये। महान् दक्षिणा देकर सर्व को यथा योग्य वस्तुओं का दान देकर सन्तुष्ट करते भये। ऐसे सर्व को आनन्द कुशल से विदा करके, अति प्रेम से नन्द के हाथ को निज हाथ में पकड़कर वसुदेव कहते हैं कि हे भ्रातः पूर्व काल में तो हम असमर्थ हुए आपका कुशल प्रिय न कर सके। और अब श्रीमद से अन्ध चक्षु हुए हम आपको आगे खड़े को भी नहीं देखते हैं। हे मान योग्य इस कारण से मोक्ष की कामना वाले पुरुष को, मदसे अन्ध करने वाली राज्य लक्ष्मी न प्राप्त होवे। क्योंकि स्वजनों को और मित्र सुहृद् बान्धवों को जैसे अन्ध चक्षु पुरुष नहीं देख सकता है। तैसे ही लक्ष्मीमद अन्ध पुरुष किसी को भी पूज्य वर्ग को नहीं देखता है। ऐसे पूर्व कृत उपकार मैत्री को स्मरण करते हुए रुदन करने लगे तब नन्द मित्र के प्रेम से तीन मास तक कुरुक्षेत्र में रहे वर्षा काल समीप आने पर स्व स्व राजधानी को चले गये॥२४॥

अ० ८५ श्लो० २४

आत्मा ह्येकः स्वयंज्योतिर्नित्योऽन्यो निर्गुणोगुणैः।
आत्मसृष्टैस्तत्कृतेषु भूतेषु बहुधेयते॥ २५॥

किसी काल में वसुदेव कुरुक्षेत्र में कहे हुए नारदादि

मुनियों के वचनो को श्री कृष्ण पूर्ण ब्रह्म है ऐसों को स्मरण कर राम कृष्ण को प्रेम से बोले। भो संसार की उत्पत्ति पालन लय कर्त्ता पूर्ण प्रधान पुरुष! मैं संसार से भय भीत हुआ आपकी शरण हूं। मैं आपकी माया से पूर्ण प्रीति से वञ्चित हो चुका हूं। इन्द्रियों के विषय सुख की लालसा से मरणशाली इस शरीर में आत्म वुद्धि वाला हूँ। और पूर्ण परमेश्वर आप में पुत्र बुद्धि वाला हूँ। ऐसे वञ्चन करने वाली माया से अधिक भी कोई माया बाकी आपकी रखी हुइ है। अब मुझ पर कृपा करो जिससे मैं दुःख संसार से मुक्त हो जाऊं। तब श्रीकृष्ण भगवान् हंस कर बोले भो तात! आत्मा एक अद्वितीय स्वयं ज्योति प्रकाश स्वरूप है आत्मा माया रचित गुणों से भिन्न है, निर्गुण है, और सर्वदा नित्य है। जैसे तिन मृत्तिकादि पंञ्चभूतों के कृत नाना घटकशूरादि कार्यों में मृत्तिकादि भी नाना रूप वाले प्रतीत होते हैं। तैसे ही आत्मा भी आत्मकृत देव मनुष्यादि नाना भूत प्राणियों में उपाधि के वस से नाना रूप प्रकारों का प्रतीत होता है। वास्तव में नाना नहीं है। श्रीकृष्ण भगवान् से ऐसा सुनकर वसुदेव नाना रूप भेद बुद्धि को त्यागकर एक अद्वय ब्रह्मात्म स्वरूप को निश्चय कर तूष्णी भाव से स्थिर हो गये ॥ ३६ ॥

अ. ८८ श्लो. ८-९-१०-११

यस्याहमनुगृह्णामि हरिष्ये तद्धनं शनैः।
ततोऽधनं त्यजन्त्यस्य स्वजनाद् दुःखदुःखितम् ॥३६॥
स यदा वितथोद्योगो निर्विण्णः स्याद् धनेहया।
मत्परैः कृतमैत्रस्य करिष्ये मदनुग्रहम् ॥ ३७॥
तद् ब्रह्म परमं सूक्ष्मं चिन्मात्रं सदनन्तकम्।
अतो मां सुदुराराध्यं हित्वान्यान् भजते जनः ॥३८॥
ततस्त आशुतोषेभ्यो लब्धराज्यश्रियोद्धताः।
मत्ताः प्रमत्ता वरदान् विस्मरन्त्यवजानते ॥३९॥

परिक्षित् ने पूछा भो भगवन् सर्व विभूतियों से रहित विरक्त शिवको भजकर धन विभूति के सहित हो जाते हैं। और सब विभूति रूप लक्ष्मी के पति विष्णु को भजकर धन विभूति हीन हुए देखे जाते हैं। यह विरुद्ध घटना कैसे शुकदेव ने कहा कि अश्वमेध यज्ञों के सम्पूर्ण होने पर येही प्रश्न आपके पितामह युधिष्ठिर ने भगवत् सम्बन्धी धर्मों को सुनते हुए ने भगवान् से किया था। तिसका उत्तर भगवान् ने यह दिया कि जिस भक्त पर मैं ईश्वर अति कृपा करता हूँ। तिसका प्रथम धीरे धीरे धन हरण कर लेता हूँ।

जो भक्त विषय त्याग की इच्छा करता हुआ भी कदाचित प्राप्त विषयों में रागकर क्लेश पाता है तिस क्लेश युक्त का धन विषय हरण कर देना ही मेरी कृपा है। क्योंकि मेरे में प्रविष्ट बुद्धि वालों को विषयों के लिये कामना होनी योग्य नहीं है। तब धन हरण पश्चात् तिस धन हीन को अति दुःखी से भी दुःखी हुए को इसके स्वजन बान्धव घृणा कर त्याग देते हैं। ॥ ३७ ॥ सो जब बान्धवों के कहने से धन की इच्छा करके किसी कार्य में प्रवृत्त होता है। तब मेरी कृपा से निष्चल उद्यम हुआ विरक्त हो जाता है यह मेरी ही कृपा है फिर मुझ ईश्वर परायण महात्माओं के साथ मैत्री करने वाले पर मैं अति कृपा करता हूँ ॥ ३८ ॥ तो भी सत्य ज्ञान, आनन्द चेतन मात्र स्वरूप परब्रह्म, सो अति सूक्ष्म है। इस कारण से मुझको अल्प साधनों से न प्रसन्न हुए को अति दुराराध्य जानकर, मेरी शरण को त्याग करके दूसरे देवताओं को प्राणी जन भजता है ॥ ३९ ॥ तिन शीघ्र तोष होने वाले ब्रह्मादि देवताओं से लब्ध राज्य लक्ष्मी होने से अहंकार युक्त हुए आपको उच्च मानते हैं। तब धन विभूति के मदसे युक्त हुए निज कल्याणार्थ मुझ परमानन्द की प्राप्ति में प्रमादी हुए। राज्य लक्ष्मी आदिवरों के देनेवाले ब्रह्माशिवादि का भी विस्मरण कर, उलटा ब्रह्मा-

शिवादि की निन्दा करते हैं। कि देवताओं के पूजन से क्या लाभ होता है। अर्थात् कुछ लाभ नहीं होता है। ब्राह्मणों ने लुटने खाने के लिये शास्त्रों में झूठे गपौड़े लिख दिये हैं। ऐसा कहते है। उपाधियों के भेद से ब्रह्मा विष्णु शिवको शीघ्र या विलम्बसे वर, शाप देने की विलक्षणता है। और ब्रह्मा विष्णु शिव में वास्तव से भेद द्रष्टा को नरक गामी कहा है॥ ४० ॥

यज्ञैर्देवत्वमाप्नोति तपोभिर्ब्रह्मणःपदम्। दानेन विविधान्भोगाञ्ज्ञानान्मोक्षमवाप्नुयात्॥ वैराग्यं पुष्कलं न स्यान्निष्फलं ब्रह्मदर्शनम्। तस्माद्दृढेच्च विरतिं बुधो यत्नेन सर्वदा॥ वैराग्यस्य फलं बोधो बोधस्योपरतिफलम्। स्वानन्दानुभवाच्छान्तिरेषैवोपरतेः फलम्। आदौच मध्येच तथैव चान्ततो भवं विदित्वाभयशोक कारणं। हित्वा समस्तं विधिवाद चोदितं भजेत् स्वमात्मानमथाखिलात्मनाम्। दम्भन्यास मिसेन वञ्चितजनं भोगैकचिन्तातुरं। मोहभ्रान्त महर्निशं विरचितोद्योगक्लमैराकुलम् आज्ञालङ्घिनमज्ञमज्ञजनिता सन्माननग्रभदं दीननाथ दयानिधान परमानन्द प्रभो पाहिमाम्॥

इति श्रीभागवतसारबिन्दौ सारार्थदीपिका भाषाटीकाया उत्तरार्धे दशम स्कन्धः

॥ अथैकादश स्कन्धः प्रारम्भः ११ ॥

अ० १ श्लो० १५-१६

प्रष्टुं विलज्जतीसाक्षात् प्रभूतामोघ दर्शनाः ।
प्रसोष्यन्ती पुत्रकामा किं स्वित् संजनयिष्यति ।१।
एवं प्रलब्धा मुनयस्तानूचुः कुपिता नृप ।
जनयिष्यति वो मन्दा मुसलं कुलनाशनम् ॥२॥

किसी काल में किसी शुभ कर्म करने की संमति लेने के लिये श्रीकृष्ण ने अत्रि दुर्वासादि सप्त ऋषियों को द्वारका बुलाया था । तब सम्मति लेकर ऋषियों को विदाकर दिया ऋषि जाकर पिण्डारक नाम तीर्थ स्थान में निवास कर ठहरे हुए थे । किसी दिन यादवों के नव युवक पुत्र क्रीड़ा करते हुए तिन सप्त ऋषियों के पास जाकर वास्तव नम्र भाव शिक्षा से रहित हुए भी शिक्षितों के समान ऋषियों के चरणो को पकड़कर पूछते हैं । जांबवंती के पुत्र साम्ब का स्त्री वेश बनाकर कहते हैं कि यह पुत्र कामा गर्भवती स्त्री आप लोगों को साक्षात् पूछने में लज्जा करती हुई हमारे द्वारा पूछती है कि प्रसव दिनों के अति समीप प्राप्त हुई यह अब क्या पुत्र को उत्पन्न करेगी अथवा कन्या को

उत्पन्न करेगी सो आप सर्वज्ञ ऋषि कहें। इस प्रकार यादवों के पुत्रों से वंचित किये कुपित हुए मुनि विचार कर तिनको कहते हैं कि हे मन्द बुद्धियों यह तुम्हारे कुल को नाश करने वाले मूसल को उत्पन्न करेगी। क्योंकि तुम ऐसे पुण्यशाली कुल में उत्पन्न होकर भी मुनि महात्माओं से अति कुटिल भाव का हास करते हो। कैमुत्तक न्याय से ऐसे उच्च कुल सम्पूर्ण सुख सामग्री को प्राप्त होकर भी महान् पुरुषों की हासादियों से भी अवज्ञा तिरस्कार करने से कुल नाश रूप दुर्गति को प्राप्त होगये, तो अल्प बुद्धि नीच कुल वालों की तो महान् पुरुषों की अवज्ञा करने में दुर्गति का कहना ही क्या हैं। अवश्य ही दुर्गति के भागी होते हैं। तब साम्ब के पेट के वस्त्र खोलने से निकले हुए मूसल को लेकर सब ही सांबादि भयभीत हुए द्वारका में जाकर राजा उग्रसेन से सत्र कहकर मूसल दे दिया। तब त्रस्त हुवे उग्रसेन ने चूर्ण कराकर समुद्र में डलवादिया तिसके निमित्त से श्रीकृष्ण पर्यंत सब यादवों का लय होगया। यादव नाश के निवारण करने में समर्थ होते हुवे भी श्रीकृष्ण भगवान मुनि श्रापको सत्य करने के लिये यादवों के नाश को अनुमोदन करते हुए स्वीकार कर लिया तिस मुनि श्राप से ही प्रभास क्षेत्र में सर्व यादवों का संहार होगया ॥ १ ॥

अ० २ श्लो० १६-२०-३०-४५-४६-४७-५१

तेषां नव नव द्वीपपतयोऽस्य समन्ततः ।
कर्म तन्त्र प्रणेतार एकाशीति द्विजातयः ॥ ३ ॥
नवाभवन् महाभागा मुनयो ह्यर्थशंसिनः ।
श्रमणा वातरशना आत्मविद्याविशारदाः ॥ ४ ॥
अत आत्यन्तिकं क्षेमं पृच्छामो भवतोऽनघाः ।
संसारेऽस्मिन्क्षणार्धोऽपि सत्सङ्गः शेवधिर्नृणाम् ॥५॥
सर्व भूतेषु यः पश्येद्भगवद्भावमात्मनः ।
भूतानि भगवत्यात्मन्येष भागवतोत्तमः ॥ ६ ॥
ईश्वरे तदधीनेषु बालिशेषु द्विषत्सु च ।
प्रेम मैत्री कृपोपेक्षा यः करोति स मध्यमः ॥७॥
अर्चायामेव हरये पूजां यः श्रद्धयेहते ।
न तद्भक्तेषु चान्येषु स भक्तः प्राकृतः स्मृतः ॥८॥
न यस्य जन्मकर्मभ्यां न वर्णाश्रम जातिभिः ।
सज्जतेऽस्मिन्नहं भावो देहे वै स हरेः प्रियः ॥९॥

कुरुक्षेत्र में प्रथम नारद से अद्वय ब्रह्मात्म विद्या के उपदेश से शिक्षित हुए भी वसुदेव बहुकाल विषय भोगों के सम्बन्ध से विस्मृति युक्त हुए, और ऋषियों के चलेजाने

पर श्रीकृष्ण के दर्शन की लालसा से रहे हुए ये नारद से पूछते हैं कि भो भगवन् ! आप जैसे महात्मा लोक हित के लिये विचरते हैं इससे मैं आपसे संसार के जन्म मरण दुःखों से मुक्त होने का मार्ग पूछता हूँ सो आप कहें। नारद ने प्रसन्न होकर कहा कि मनु के प्रियव्रत, तिसके आग्नीध्र, तिस के नाभि, तिसके ईश्वर की अंशरूप ऋषभदेव तिसके सो पुत्र हुए। तिनमें ज्येष्ठ भरत धर्म ज्ञान निष्ठ हुआ और तिन में नव पुत्र भारत वर्ष के नव खण्डों के पति हुए। नवखण्ड ये हैंः—१ ब्रह्मावर्त २ कुशावर्त ३ इलावर्त ४ मलय ५ केतु ६ भद्रसेन ७ इन्द्रस्पृक ८ विदर्भ ९ कीकट इन एक एक के पति हुए और एकाशी ८१ पुत्र कर्म मार्ग प्रवर्तक कर्म शास्त्रों के कर्ता ब्राह्मण हुवे ॥ ३ ॥ नव पुत्र महाभाग्यशील ब्रह्मात्मा द्वैत रूप परमार्थ विद्या के वक्ता आत्माभ्यास में किया है परिश्रम जिन्होंने, वीतराग दिगम्बर ब्रह्मात्म विद्या में कुशल परमहंस मुनि हुए तिन नवों के नामः—१ कवि २ हरि ३ अंतरिक्ष ४ प्रबुद्ध ५ पिप्पलायन ६ आविर्होत्र ७ द्रुमिल ८ चमस ९ करभाजन यह नव सर्व विश्व को स्वात्मा से अभिन्न एक अद्वय भगवत स्वरूप देखते हुए जीवन्मुक्त होकर भूमि पर विचरते हुए राजा निमि विदेह के यज्ञ में चले गये ॥ ४ ॥ तब राजा निमि ब्राह्मणों के

सहित उठकर तिनको ब्रह्म पुत्र सनत्कुमारादि के समान प्रकाशशीलों को नमस्कार करके सुखासनों पर बिठाकर नम्र भाव से पूछते हैं कि भो भगवन महात्माओं आप दया-निधियों को मैं पूछता हूँ कि इस संसार से मुक्त होने का, अत्यन्त कल्याणकारी मोक्ष का मार्ग क्या है। क्योंकि जिस हेतु से इस संसार में निर्धन पुरुषों को निधि लाभ से परमानन्द सम आनन्द होता है तैसे ही वीतराग श्रेष्ठ जनों के साथ क्षणार्ध मात्र के सत्सङ्ग करने से महान् परमानन्द प्राप्त होता है ॥ ५ ॥ तब कवि आदि मुनियोंने राजा निमि से कहा कि हे राजन् भगवत् हरि का भजन करने वाले पुरुष को हरि में प्रेम भक्ति, संसारी विषयों से विरक्तता, स्वात्म रूप से परमात्मा का ज्ञान, यह तीनों भक्त को एक समकाल में ही प्राप्त होते हैं जैसे भोजन करने वाले पुरुष को सुख पेट पूर्ति, क्षुधा की निवृत्ति यह तीनों एक काल में प्राप्त होते हैं। निमि राजा ने पूछा कि भगवन् भगवत् भजन करने वाले भागवत पुरुष का स्वरूप कहो कि किस किस धर्म वाला होता है, किस स्वभाव वाला होता है। किस आचरण वाला, कैसे कथन वाला, किन लिङ्ग गुणों से हरि को प्रिय होता है सो कहो। तब हरि बोले कि जो पुरुष निजात्मा को सर्व चराचर भूत प्राणियों में एक सम

ब्रह्म रूप से देखता है तथा ब्रह्मस्वरूप निजात्मा में सर्व भूत प्राणियों को स्थित देखता है, न्यूनाधिक तारतम्य रूप से नहीं देखता है सो सर्वत्र परिपूर्णाद्वय भगवत्तत्व को देखने वाला भागवत्तोत्तम कहा जाता है॥ ६ ॥ और जो पुरुष ईश्वर में प्रेम भक्ति वाला है, ईश्वर भक्तों में मैत्री करने वाला है, अज्ञानी दीन जनों पर शुभ शिक्षा देकर कृपाकारी है, और जो नीच ईश्वर निन्दकों, दुष्ट स्वभाव वालों विषे बुरा भला न कहकर उपेक्षा करनें वाला है सोविष्णुका भागवत भक्त मध्यम कहा जाता है। क्योंकि तिस को भेद दर्शी होने से मध्यमता है॥ ७ ॥ और जो पुरुष हरि के लिये मूर्ति प्रतिमा में ही ईश्वर मानकर पूजा करने की इच्छा करता है, न ईश्वर परायण साधु भक्त पुरुषों में मैत्री सत्कार करता है और न किसी पर दया कृपादि करता है सो निकृष्ट भक्त है या साधारण भक्त है अथवा सो प्राकृत इसी काल में भक्ति का आरम्भ करने वाला नवीन भक्त है। धीरे धीरे सर्व में अभेद दर्शी होकर उत्तम भागवत भी कभी हो ही जाएगा ॥ ८ ॥ और जिस पुरुष को श्रेष्ठ कुल में जन्म का, तपादि शुभ कर्म का अभिमान नहीं है और ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य शूद्र चार वर्ण, ब्रह्मचारी, गृहस्थ, वानप्रस्थ, सन्यास चार आश्रम जाति आदि करके जो लिपायमान नहीं है। इस

पञ्च भौतिक देह में जिसका अहंभाव अहंता बुद्धि नहीं है। अहंकारादि लिङ्गो करके रहित होने से ही पुरुष हरि को प्रिय होता है ॥ ६ ॥

अ० ३ श्लो० १९-२०-२१-२५-२६

नित्यार्दितेन वित्तेन दुर्लभेनात्ममृत्युना ।
गृहापत्याप्तपशुभिः का प्रीतिः साधितैश्चलैः ॥१०॥
एवं लोकं परं विद्यान्नश्वरं कर्म निर्मितम् ।
सतुल्यातिशयध्वंसं यथा मण्डल वर्तिनाम् ॥११॥
तस्माद् गुरु मपद्येत जिज्ञासुः श्रेय उत्तमम् ।
शाब्दे परे च निष्णातं ब्रह्मण्युपशमाश्रयम् ॥१२॥
सर्वतो मनसोऽसङ्गमादौ सङ्गं च साधुषु ।
दयां मैत्रीं प्रश्रयं च भूतेष्वद्धा यथोचितम् ॥ १३ ॥
श्रद्धां भागवते शास्त्रेऽनिन्दामन्यत्रचापि हि ।
मनोवाक्कर्मदण्ड च सत्यं शमदमावपि ॥१४॥

राजा निमि ने पूछा कि साधन हीनों से दुस्तर माया है। तिस माया को जैसे स्थूल बुद्धि वाले पुरुष भी तरजाएं सो मार्ग आप कहो। तब प्रबुद्ध बोले कि दुःख के नाशार्थ सुख के लाभार्थ कर्मो को करते हुए स्त्री पुरुष रूपी मिथुनी

बनो को उलटा दुःख ही प्राप्त होता है। ये ही ईश्वर की माया है। तिसका तरना ऐसे होता है कि कर्मों करके प्राप्त धनादि को सुखका कारण न जाने। क्यों कि अति दुःख से प्राप्त सर्वदा दुःखकारी धनसे पुनः निजकी मृत्युकारी से प्रीति करने वाले को क्या सुख प्राप्त हो सकता है। और स्त्री पुत्र पशु गृहादि के स्थिर न रहने वालों के साथ भी प्रीति करने से क्या लाभ होता है। दुःख के बिना और कुछ भी लाभ नहीं होता ॥ १० ॥

इसी प्रकार परलोक स्वर्गादि के भोगों को निजकर्मों करके रचितों को भी दुःख रूप नाशशील जाने जैसे खण्ड मण्डलों के प्रति राजाओं को परस्पर स्पर्द्धादि होते हैं। तैसे ही स्वर्ग वासियों को भी दूसरे की तुल्य विभूति होने पर स्पर्द्धा होती है। अधिक विभूति देखने पर असूया होती है। निज भोग विषयों के नाश का विचार होने पर भयादि बने ही रहते हैं ॥११॥ तिस कारण से उत्तम श्रेय रूप मोक्ष का जिज्ञासु चार साधन से युक्त बुद्धिमान् विवेकी वेदमें और अद्वय पर ब्रह्म में निष्णात् पूर्ण तत्त्व ज्ञाता, ब्रह्मश्रोत्रिय ब्रह्म निष्ठ गुरु की शरण को प्राप्त होवे। शास्त्र वेद का ज्ञाता श्रोत्रिय न होने पर संशय निवारण नहीं कर सकता है। अद्वय पर ब्रह्म में अपरोक्षानुभव युक्त ब्रह्म निष्ठ न हो तो अद्वय ब्रह्म-

त्मस्वरूप बोध कराने के योग्य नहीं होता है । ब्रह्मज्ञाता का सूचक, संसारिक विषयों से वैराग्य और चित्त वृत्तियों का निरोध युक्त होना है ॥१२॥ तब ऐसे गुरु से निष्कपट होकर भागवत धर्मों को सीखे । जिन धर्मों से सर्वका आत्मा हरि सन्तुष्ट होये सर्वत्र सच्चिदानन्द ब्रह्म कैवल्य विचार शीलता को गृहादि अभिमान रहितता को एकान्त वास करने को, खण्ड वस्त्रों का धारण करना, जैसे कैसे वस्त्र भोजन प्राप्ति से सन्तुष्ट रहना । इससे आदि लेकर शुभ गुणों को गुरु से सीखे ॥ १३ ॥ अन्य शास्त्रों विषे निन्दा न करे क्योंकि शैव, सौर, गाणेश, शाक्तादि पुराणों का निन्दाकारी भगवद्धर्मों का अति द्वेषी है । भगवत् प्रतिपादक शास्त्र में श्रद्धा युक्त हुआ और मन का दण्ड प्राणायाम, वाणि का दण्ड प्रमित भाषण अथवा मौन, देह का दण्ड भोग इच्छा रहितता यह तीनों दण्डों से युक्त हुआ सत्य भाषी, मन इन्द्रियों के निग्रह रूप शम दमों से युक्त होना, हरि के वास्तव सच्चिदानन्द स्वरूप के श्रवण कीर्तन ध्यानादियों को गुरु से सीखे । ऐसे अनन्य चित्त से हरि परायण हुआ माया को तर जाता है । इत्यादि मुनियों के अमृतमय वचनों को सुनकर राजा निमि ऋषभदेव के पुत्रों की श्रद्धा भक्ति से पूजा की । ऐसे शुभ व्याख्यान को देव ऋषि

नारद से सुनकर वसुदेव देवकी संसार कष्टकारी मोह, अविद्या जाल को त्याग कर शांत चित्त होकर सच्चिदानन्द ब्रह्मात्म स्वरूप में स्थित होगये। अहो आश्चर्य है ईश्वर कृष्ण को पुत्र रूप से प्राप्त करके भी मोह, अविद्या की निवृत्ति वीतराग नारद महा ऋषि के उपदेश से ही हुई ॥१४॥

अ० ६ श्लो० ४७

वातरशना य ऋषयः श्रमणा ऊर्ध्वमन्थिनः।
ब्रह्माख्यं धाम ते यान्ति शान्ताःसंन्यासिनोऽमलाः ।१५।

श्रीकृष्ण भगवान ने सर्व यादवों से कहा कि इस द्वारका में मुनियों से शापित स्थान में अब वास नहीं करना चाहिये। चलो महा पुण्यकारी प्रभास क्षेत्र में वास करेंगे। उद्धव ने कृष्ण की कुल संहार करनेकी चेष्टा को जानकर एकांत में कृष्ण भगवान से कहा कि भो भगवन् आप कुल संहार कर भू भार निवारण कर निज धाम को जाना चाहते हो। मैं आपको अर्ध क्षण भी त्यागना नहीं चाहता हूँ। इस हेतु से मुझ आपके भक्त को साथ ले चलो। क्योंकि सर्व भोग त्यागी सन्यासी, प्राणायाम परायण हुए, परमानन्द में शांत स्वरूप हुए, ब्रह्मचर्यादि साधनों के क्लेशों को सहन करते हुए निष्पाप हुए मुनि लोक आपके सच्चिदानन्दाद्वय

आत्म ब्रह्म स्वरूप को प्राप्त होते हैं। हम भक्त लोग आपके परमानन्द शुद्ध स्वरूप की वार्ता श्रवण कर कीर्तनादि से सुख पूर्वक ही संसार से तर जाएंगे ॥ १५ ॥

अ० ७ श्लो० ५-६-७-२८-२९-७४

न वस्तव्यं त्वयैवेह मया त्यक्ते महीतले ।
जनोऽधर्म रुचिर्भद्र भविष्यति कलौ युगे ॥१६॥
त्वं तु सर्वं परित्यज्य स्नेहं स्वजन बन्धुषु ।
मय्यावेश्य मनः सम्यक् समदृग्विचरस्व गाम् ॥१७॥
यदिदं मनसावाचा चक्षुर्भ्यां श्रवणादिभिः ।
नश्वरं गृह्यमाणं च विद्धि मायामनोमयम् ॥१८॥
त्वं तु कल्पः कविर्दक्षः सुभगोऽमृतभाषणः ।
न कर्ता नेहसे किंचिज्जडोन्मत्त पिशाचवत् ॥१९॥
जनेषु दह्यमानेषु काम लोभ दवाग्निना ।
न तप्यसेऽग्निनामुक्तो गङ्गाम्भः स्थ इव द्विपः ॥२०॥
यः प्राप्य मानुषं लोकं मुक्तिद्वारमपावृतम् ।
गृहेषु खगवत्सक्तस्तमारूढच्युतं विदुः ॥२१॥

श्रीकृष्ण भगवान ने कहा कि हे उद्धव आपका कथन सत्य ही है। क्योंकि मुनि शाप दग्ध कुल परस्पर कलह

कर नष्ट हो जाएंगे। और आज से सप्त में दिन यह द्वारका पुरी समुद्र में निमग्न हो जायगी। मेरे से त्यागे हुए इस भू लोक में तुमने इस द्वारका में वास नहीं करना। हे कल्याणरूप! कलियुग में सर्व जन अधर्म रुचि वाले हो जाएंगे ॥१६॥ आप तो स्वजन बान्धवों में राग रहित हुआ सर्व को त्याग कर, मुझ ईश्वर में सम्यक् मन को लगाकर सर्व सम दृष्टि हुआ, निर्मान मोह होकर भूमि पर विचरो ॥ १७ ॥ यदि कहो गुण दोषों करके विषम रूप लोक में मैं कैसे सम दृष्टि होसकता हूँ। तिसका यह उत्तर है कि जो यह संसार मन, वाणी, नेत्र, श्रोत्रादि इन्द्रियों से ग्रहण होता है तिस सर्व को मनोराज्य मात्र होनेसे मिथ्या जानो। सो भी स्थिर नहीं, शीघ्रही विनश्वर जान ॥ १८ ॥ श्रीकृष्णचन्द्र ने उद्धव से जीवन्मुक्ति, के सुख प्राप्ति के लिये जीवन्मुक्त दत्तात्रेय का राजा यदु के साथ संवाद हुआ सो सब कहा कि हे उद्धव निर्भय अवधूत दत्तात्रेय को निर्जन वन में देखकर श्रद्धा सत्कार से राजा यदु ने पूछा कि भो भगवन् आप निष्कर्त्तव्य को कैसे ऐसी बुद्धि प्राप्त हुई। जिस अति निपुण बुद्धि को प्राप्त हुए भी लोक में बालकों के समान विचरते हो। विशेष कर मनुष्य धर्मार्थकाम विषे कुछ ज्ञान की इच्छा

होने में आयु, यश, धन की इच्छा करते हुए नाना साधनों में प्रवृत्त होते हैं। आप तो किसी कार्य को भी करते नहीं देखे जाते हैं। न कुछ इच्छा करते दिखते हो। यदि कहो कि हम अयोग्य होने के कारण से किसी कार्य के करने में समर्थ नहीं हैं। सो नहीं क्योंकि आप तो समर्थ हो, सर्व ज्ञान युक्त कवि हो, निपुण हो रूप, तेज, सुभाग्य युक्त हो अमृत सम मधुर भाषी हो परन्तु तो भी न कुछ कार्य ही करते हो न कुछ इच्छा ही प्रकट करते हो। उलटा अज्ञानियों को जड़, उन्मत्त पिशाच के समान प्रतीत होते हो ॥ १६ ॥ सर्व जनों को विषयों की इच्छा कर काम लोभादि दावाग्नि से दग्ध होते हुये भी आप कामादि अग्नि से तप्त होते नहीं देखे जाते हैं। जैसे शीतल गङ्गाजल के प्रवाह में स्थित हुआ हस्ती आनन्दित होता है। तैसे ही आप आनन्दित हुए देख पड़ते हो। सो ब्रह्मन् सर्व विषय भोग सामग्री रहित आपके आनन्दका कारण क्या है। सो आप हमारे से कहिये ॥२०॥ तब दत्तात्रेय बोले कि हे राजन्! मेरे शिक्षक भूमि आदि चौवीस गुरु हैं। गुण ग्राही स्वबुद्धि से ही गुरु स्वीकार किये हैं। साक्षात् उपदेश सुनकर गुरु नहीं किये जिनों से ज्ञान बुद्धि को लेकर इस भूमि पर जीवनमुक्त हुआ मैं विचरता हूँ। इनमें विशेष सुखकारी शिक्षा कपोत की है

एक कपोत पक्षी अपनी कपोती भार्या के साथ वन में रहता था। परस्पर अति राग बद्ध हुओं के काल पाकर बच्चे हुए तिनके लालन पालन में युक्त हुए, राग मोह बद्ध हुए चोगा लाने के लिये दूर वन में चले गये। पीछे से किसी पक्षी घातक ने आकर तिन बच्चों को जाल में फांद लिया। तब कपोत कपोतीने आकर जाल बद्ध बच्चों को देखकर मोह पाश बद्धों ने अति विलाप किये। कपोती अतिमोह पाश बद्ध हुई बच्चों के पास गई। व्याधने तिसकों भी बांध लिया कपोत, बच्चे और आज्ञाकारी भार्या को बन्धे हुए देखकर असमर्थ हुए ने अति विलाप किये। अहो हा मुझ दुर्मति हत पुण्य विषय सुख में अतृप्त का धर्मार्थ काम रूप त्रिवर्ग सर्व-गृह ही नष्ट होगया। शून्य गृह में मेरे को त्यागकर प्रिया भार्या सुन्दर पुत्रों के साथ स्वर्ग को चली गई। अब मैं मृत दारा पुत्र शून्य गृह में जीकर क्या अर्थ सिद्ध करूंगा। ऐसे मोहकर विलाप करता हुआ बोधहीन कपोत आप भी जाल में जाकर पड़ गया। क्रूर वृत्ति लुब्धक व्याध सब को बांधकर चल दिया तैसे ही परमार्थ विचार हीन अशांत चित्त कुटुम्ब पोषी कुटुम्ब सहित नष्ट होजाता है। जो भारत वर्ष में मनुष्य देह को प्राप्त होकर, तिसमें भी खुले मोक्ष के द्वार रूप अङ्गभङ्गादि से रहित सुन्दर शरीर को पाकर भी

कपोत पक्षी के समान स्त्री पुत्र गृहादि में ही आसक्त है॥ मोक्ष के साधन विवेक वैराग्यादि का कभी भी विचार नहीं करता है तिस जन को मोक्ष प्राप्ति के साधन रूप मनुष्य देह को प्राप्त होकर भी मोक्ष प्राप्ति का प्रयत्न न करते को ऋषि मुनि लोक आरूढ़ होकर पतित हुआ कहते हैं। यदि गृहासक्ति तिर्यग् पशु पक्षियों को भी अति अनर्थ का हेतु है। तो धर्मार्थ काम मोक्ष रूप चार पुरुपार्थों की प्राप्ति के पात्र मनुष्य देह धारी को गृहासक्ति कहो अनर्थकारी कैसे नहीं होगी ? अर्थात् अवश्य ही अनर्थकारी होगी। ऐसा बिचार कर कुटुम्ब सहित बुद्धिमान को नष्ट होना उचित नहीं है ॥ २१ ॥

अ० ८ श्लो० १६-३०-३१-४१-४२-४४

सुदुःखोपार्जितैर्वित्तैराशासानां गृहाशिषः।
मधुहेवाग्रतो भुंक्ते यतिर्वै गृहमेधीनाम् ॥२२॥
अहो मे मोहवितर्ती पश्यताविजितात्मनः।
या कान्तादसतः कामं कामये येन बालिशाः ॥२३॥
सन्तं समीपे रमणं रतिप्रदं वित्तप्रदं नित्यमिमं विहाय। अकामदं दुःखभयाधिशोकमोहप्रदं तुच्छ-महं भजेऽज्ञा ॥२४॥

संसारकूपे पतितं विषयैर्मुषितेत्त्वणम् ।
ग्रस्तं कालाहिनाऽऽत्मानं कोन्यस्त्रातुमधीश्वरः॥२५॥
आत्मैवह्यात्मनो गोप्ता निर्विद्येन यदाखिलात् ।
अप्रमत्त इदं पश्येद् ग्रस्तं कालाहिना जगत् ॥२६॥
आशा हि परमं दुःखं नैराश्यं परमं सुखम् ।
यथा संछिद्य कान्ताशां सुखं सुष्वाप पिङ्गला ॥२७॥

और संचय करने में नाश पर्यन्त कष्ट की शिक्षा मक्षिकादि से ली है। दान भोग हीन लोभियों के धन संग्रह का मधुहारी के समान कोई दूसरा ही भागी होता है। महान दुःख कष्टों से उपार्जित धनों करके नाना मनोराज रूप इच्छा करते हुए गृहस्थाश्रमियों के गृह में तिन गृहस्थों के भोजन करने से पूर्व ही भिक्षु यति भोजन कर लेता है। जैसे कष्ट से संग्रह करे हुए मक्षिका के मधु को तिनके खाने से पूर्व ही मधुहारी तोड़कर खाजाता है। क्यों कि कहा है:—यतिश्च ब्रह्मचारीच पक्कान्नस्वामिनावुभौ। तयोरन्नमदत्वा तु भुक्त्वा चान्द्रायणं चरेत् ॥ पक्कान्न के भागी यति और ब्रह्मचारी को पक्कान्न की भिक्षा न देकर खाने वाले गृही को पाप निवृत्ति अर्थ चान्द्रायण व्रत करना कहा है। इस कारण से गृही को अवश्य ही दान

का विधान है ॥ २२ ॥ दत्तात्रेय ने राजा यदु से कहा कि मिथिलापुरी में एक पिङ्गला नाम की गणिका थी तिससे जो शिक्षा मैंने ली सो सुनो। वो रति गृह में शृङ्गार से सुन्दर रूप बनाकर भोग धन कामुका गणिका आते जाते पुरुष को पति बुद्धि कर देखती थी। कि कोई भी बहुत सा धन देने वाला पति मेरे पास आएगा। ऐसे दुराशा से जागरण करती हुई रति गृह के अन्तर बाहिर जाती आती थी। तब अर्द्ध रात्रि होने पर किसी के भी न आने पर तिसको सुख कारी पुण्य वश से सर्व आशा पाशों का छेदन कारी वैराग्य उत्पन्न हुआ। हे राजन् कोई भी पुरुष वैराग्य से विना सर्व देह बन्धनों का छेदन नहीं कर सकता है पिंङ्गला कहती है कि अहो खेद है मुझ अजितेन्द्रिय मुर्खा के मोह विस्तार को देखो। जिस मोह के कारण से जो मैं निकृष्ट तुच्छ नर पति से कामनीय भोग धनों की इच्छा कर रही हूं। इसी से मैं मूढ़ वाला अति दुःखी हूँ॥२३॥ क्योंकि आत्मास्वरूप अन्तर्यामी होने से अति समीप हुए को सर्व रमण, रति आदि आनन्द तथा सब धन दाता को सर्वदा अपरोक्ष रूप इस ईश्वर को त्याग कर। अहो मैं मूढ़ अज्ञा पूर्ण कामना न करने वाले को दुःख भय शोक मोहादि के दाता तुच्छ की प्रतीक्षा करती हुई प्रेम से भजती हूँ। अहो

अति निन्दनीय भोग धनों की आशा से मुझ मूढ़ ने वृथा ही अपनी आत्मा को पीड़ित किया। अहो मलमूत्र से पूर्ण क्रूर देह में मुझ मूढ़ से अन्य कोन स्त्री प्रीति कर सरती है। एक मैं ही मिथिला पुरी में मूढ़ बुद्धि वाली हूं ॥२४॥

अहो संसार रूप कूप में पतित को शब्द स्पर्शादि विषयों करके नष्ट नेत्र वाली को कालरूप सर्प से ग्रस्त हुई मुझको अपने पुरुषार्थ विचार से विना अन्य कौन संसार कूप से निकालकर निज परमानन्द में स्थितिरूप रक्षा कर सकता है। ।२५॥ इसीसे प्राणी अपना आपही आपका रक्षक है। क्योंकि जब ऐसे आत्म विचार में प्रमाद रहित हुवा इसलोक तथा परलोक के विषय भोगों से विरक्त होता है तब इस जगत् समूह को कालरूप सर्प से ग्रस्त हुआ देखता है अर्थात् :आत्म स्वरूप ब्रह्म से भिन्न सर्व जगत् अनित्य मिथ्या है सत्य नहीं है ॥२६॥

दत्तात्रेयजी कहते हैं कि पुरुष को आशा करना ही एक महान् दुःख है और अनात्म जाल से निराश होना ही एक परम सुख है। जैसे विषय भोग धनादि सांसारिक तुच्छ सुख के देने वाले पति की आशा को त्याग कर पिंगला नाम की गणिका सन्तुष्ट होकर सुख पूर्वक सोगई। जो सर्व आशा रहित विरक्त को सुख होता है सो सुखभोग धनादिकी

आशा वाले तृषालु को नहीं हो सकता है और धनादि की आशा वाले के अन्तः करण में भक्ति विवेक वैराग्य श्रवण मननादि नहीं हो सकते हैं मोक्ष की तो क्या आशा है ॥२७॥

अ०९ श्लो०१-२-३-४-१०-१४-१५-३१

परिग्रहो हि दुःखाय यद् यत् प्रियतमं नृणाम् ।
अनन्तं सुखमाप्नोति तद् विद्वान् यस्त्वकिञ्चनः ॥२८॥
सामिषं कुररं जघ्नुर्बलिनो ये निरामिषाः ।
तदामिषं परित्यज्य स सुखं समविन्दत ॥२९॥
न मे मानावमानौ स्तो न चिन्ता गेहपुत्रिणाम् ।
आत्मक्रीड आत्मरतिर्विचरामीह बालवत् ॥ ३०॥
द्वावेव चिन्तया मुक्तो परमानन्द आप्लुतौ ।
यो विमुग्धो जडो बालो यो गुणेभ्यः परं गतः ॥३१॥
वासे बहूनां कलहो भवेद् वार्ता द्वयोरपि ।
एक एव चरेत् तस्मात् कुमार्या इव कङ्कणः ॥३२॥
एकचार्यनिकेतः स्यादप्रमत्तो गुहाशयः ।
अलक्ष्यमाण आचारैर्मुनिरेकोऽल्पभाषणः ॥३३॥
गृहारम्भोऽतिदुःखाय विफलश्चाध्रुवात्मनः ।
सर्पः परकृतं वेश्म प्रविश्य सुखमेधते ॥ ३४ ॥

न ह्येकस्माद्गुरोर्ज्ञानं सुस्थिरं स्यात्सुपुष्कलम् ।
ब्रह्मैतदद्वितीयं वै गीयते बहुधर्षिभिः ॥ ३५ ॥

कुरर पक्षि से जो शिक्षा ली वो सुनो । जो जो वस्तु पुरुषों को अति प्रिय है तिस तिस वस्तु का संग्रह करना आत्मविचारशील को केवल दुःख के लिये ही होता है । जो पुरुष विद्वान् हुआ भी वस्तु का परिग्रह नहीं करता है सो त्यागी जन ही अनन्त परमानन्द को प्राप्त होता है ॥ २८ ॥ जैसे मांस संग्रहकारी कुरर पक्षी को जो मांस संग्रह से रहित बलवान पक्षी बलात्कार से घात करते हैं तब तिस मांस को परित्याग करके ही वह पक्षी सुख पासकता है बिना त्यागे सुख नहीं पासकता है ॥२९॥ बालक से शिक्षा ली वो सुनो कि न तो मुझको किसी के मान पूजा करने से हर्ष होता है न अपमान करने से शोक होता है । स्त्री, पुत्र, गृहवानों को जैसे नाना चिंता होती है, वो मुझको चिंता नहीं है । क्यों कि आत्मस्वरूप ब्रह्मानन्द के साथ क्रीड़ा वाला हूँ । और तिस ब्रह्मात्म स्वरूप परमानन्द में ही प्रीति वाला हूं । ऐसा होकर संसार में बालक के समान निर्मान मोह हुआ विचरता हूं ॥ ३० ॥

शंका:—क्या अज्ञानी और सर्व ज्ञाता विद्वान् इन दोनों को निश्चित ही परम सुख समान ही है ?

उत्तरः—दो पुरुष ही इस संसार में चिन्ता रहित हैं और परमानन्द में मग्न हैं। एक तो जो निरुद्यम अज्ञ बालक दूसरा त्रिगुण मय माया से पर, सच्चिदानन्दात्मब्रह्म को जो प्राप्त है, ये दो सुख पाते हैं।३१।

कुमारी कन्या से जो शिक्षा ली वो सुनोः-एक कन्या स्व बन्धुओं के कहीं जाने पर निज को वरणे अर्थ आये हुओ का धर्म शिक्षित स्वयं आतिथ्य सत्कार करने के लिये तिनके भोजनार्थ धान कूटने लगी तब हाथ की चूड़िया शब्द करने लगी; कन्या ने लज्जा कर एक एक चूड़ी निकालदी तब दो शेष रहीं। तिनका भी आपस में शब्द हुआ तिनमें एक को निकाल दिया। एक चूड़ी रहने पर कोई शब्द न हुआ। यह शिक्षा लोक में प्राणियों के तत्व जानने की इच्छा से विचरते ने ली कि बहुतों के इकट्ठा वास करने में निश्चित ही कलह होता है। और दो के साथ वास करने में भिक्षादि की अथवा देश देशान्तरों की वार्ता होती हैं तिस कारण से जीवनमुक्ति के आनन्द लेने वाला विद्वान् विरक्त महात्मा अकेला ही विचरे। क्योंकि कुमारी के एक कंकण समान एकाकी विचरने में कोई भी शब्दादि की कलह नहीं होता है॥३२॥

सर्प से जो शिक्षा ली वो सुनो—कि जैसे सर्प जन

समूह से शंका वाला हुआ अकेला विचरता है और नियत गृह रहित हुआ सदा अप्रमत्त होकर एकान्त में वास करता है। गमनादि से भी सविष है अथवा निर्विष है । ऐसा लक्षित नहीं होता हैं। गुप्ताशय, दूसरे की सहायता से रहित मित भाषी होकर रहता है तैसे ही विद्वान् विरक्त मुनि ऐसी सर्प की वृत्ति से विचरे ॥ ३३ ॥ क्योंकि गृह बांधने का आरंभ विनश्वर देह वालों को दुःख के लिये ही होता है। गृह बांधकर दूसरे दिन ही शरीर न भी सत्य होजाय तो भी निष्फल ही हैं। सर्प जैसे परकृत गृह में निवास कर सुख पूर्वक वृद्धि को प्राप्त होता है तैसे ही भिक्षु को भी गृहादि का आरम्भ न करना चाहिये ३४ ॥ असंख्यात जन्मों के अन्त में प्राप्त इस दुर्लभ मनुष्य देह को प्राप्त कर नाशशील हुआ भी चार पुरुषार्थों का साधन रूप है। तिस मनुष्य देह में जब तक मृत्यु न आये तब तक शीघ्र ही मोक्ष के लिये प्रयत्न करे। ऐसे विवेक विचार से वैराग्य युक्त हुआ आत्मनिष्ठ होकर मुक्तसंग हुआ भूमि पर विचरता हूँ। यदि कहें कि बहुत से गुरुओं करके क्या लाभ है। तिसमें कहते हैं कि एक गुरु से स्थिर, पुष्ट, सम्यक् अद्वय ब्रह्मात्म स्वरूप ज्ञान नहीं होता है। क्योंकि यह अद्वितीय ब्रह्म ऋषि मुनियों करके बहुत प्रकार संक्षेप विस्तार से

कथन किया गया है इस कारण से अति गम्भीर परमानन्द परब्रह्म के सम्यक् ज्ञानार्थ बहुत गुरु करने युक्त ही हैं। श्री कृष्ण भगवान उद्धव से कहते हैं कि दत्तात्रेय अवधूत ऐसे राजा यदु को वास्तव ब्रह्मात्मतत्त्व कहकर राजा से वंदित, पूजित हुए निर्मान मोह जित संग दोष होकर चले गये। ऐसे अवधूत ब्रह्मनिष्ठ, ब्रह्मश्रोत्रिय के अमृत सार वचनों को सुनकर हमारे पूर्वज राजा यदु सर्व संग मुक्त समचित्त ब्रह्म निष्ट हो गये ॥ ३५ ॥

अ० १० श्लो० ४-७-८

निवृत्तं कर्म सेवेत प्रवृत्तं मत्परस्त्यजेत् ।
जिज्ञासायां संप्रवृत्तो नाद्रियेत्कर्म चोदनाम् ॥३६॥
जाया पत्य गृहक्षेत्र स्वजन द्रविणादिषु ।
उदासीनः समं पश्यन् सर्वेष्वर्थ मिवात्मनः ॥३७॥
विलक्षणः स्थूलसूक्ष्माद्देहादात्मेक्षिता स्वदृक् ।
यथाग्निर्दारुणो दाह्याद्दाहकोऽन्य प्रकाशकः ॥३८॥

भगवान कहते हैं कि हे उद्धव मोक्षार्थी जिज्ञासु जन निवृत्ति मार्ग रूप विवेक वैराग्यादि कर्मों का सेवन करे। मुझ ईश्वर परायण हुआ प्रवृत्ति मार्ग का त्याग करे आत्म विचार में, उत्कृष्ट जिज्ञासा में सम्यक् प्रवृत्त हुआ निवृत्ति

मार्ग के कर्मों की विधियों का भी न आदर करे। आत्म-विचार को त्याग कर अति शौचादि विधियों का किंकर न होए।' ३६ ॥ गुरु सेवा मान मत्सरादि रहित होकर करे। सर्वदा शिष्य को सत्य प्रिय भाषी होना चाहिये। और स्त्री पुत्र गृह क्षेत्र स्वजन धनादि में उदासीन ममताहीन होना चाहिये। आत्मा को सर्व में सम देखता हुआ समदृष्टि होए क्यों कि सर्व में आत्म रूप समदृष्टि होने को परम प्रयोजन के समान ही कहा है। सर्व देहों में आत्मा को एक होने से ममतादि से रहित उदासीन हुआ गुरु की शरण को प्राप्त होए॥ ३७ ॥ आत्मा स्थूल देह से और सूक्ष्म देह से विलक्षण है। क्योंकि दृष्टा और स्वप्रकाश होने से। दृष्टा दृश्य से विलक्षण होता है और स्वप्रकाश जड़ से विलक्षण होता है। जैसे अग्नि दाहकारी, प्रकाशक दाह्य प्रकाश्य काष्ठादि से अन्य होता है। तैसे ही आत्मा भी दृष्टा, प्रकाशक, दृश्य प्रकाश्य रूप प्रपञ्च से भिन्न विलक्षण है॥ जैसे अग्नि काष्ठ में प्रविष्ठ हुआ काष्ठ की उपाधि से उत्पत्ति नाशादि गुणों को धारण करता है वास्तव से नहीं। तैसे ही आत्मा देह में प्रविष्ठ हुआ देह के नाशादि गुणों को देह की उपाधि से प्राप्त होता है स्वतः नहीं। और जो यह ईश्वर की माया के गुणों से रचित जीव

का देह है। येही संसार है। सो आत्मा के ज्ञान से छेदन होता है। आत्मज्ञान, साधनयुक्त शिष्य को ब्रह्मश्रोत्रिय, ब्रह्मनिष्ठ गुरु से प्राप्त होता है गुरु से लब्ध आत्म ज्ञान करके ही अविद्या का नाश होता ॥ ३८ ॥

अ० ११ श्लो० १-२-४-७-३२

बद्धो मुक्त इति व्याख्या गुणतो मे न वस्तुतः।
गुणस्य मायामूलत्वान्न मे मोक्षो न बन्धनम् ॥३९॥
शोकमोहौ सुखं दुःखं देहापत्तिश्च मायया।
स्वप्नो यथाऽऽत्मनः ख्यातिः संसृतिर्न तु वास्तवी ॥४०
एकस्यैव ममांशस्य जीवस्यैव महामते।
बन्धोऽस्याविद्ययानादिर्विद्यया च तथेतरः ॥४१॥
आत्मानमन्यं च स वेद विद्वानपिप्पलादो न तु पिप्पलादः। योऽविद्यया युक् स तु नित्यबद्धो विद्यामयो यः स तु नित्यमुक्तः ॥४२॥
आज्ञायैवं गुणान् दोषान् मयाऽऽदिष्टानपि स्वकान्।
धर्मान् संत्यज्य यः सर्वान् मां भजेत स सत्तमः ॥४३

हे उद्धव जो आपने कहा कि एक ही आत्मा कैसे बद्ध है, कैसे मुक्त है। सो ऐसे है कि बन्ध मोक्ष दोनो का

कथन वास्तव से नहीं है। मुझ ईश्वर के अधीन सत्वादि गुणों की उपाधियों से एकही आत्मा बद्ध मुक्त कहा जाता है। गुणों को माया मूलक मिथ्या होने से। इस कारण से बन्ध, मोक्ष दोनो वास्तव से नहीं हैं॥ ३९ । ऐसे ही कारण रूप गुणों को मायामय मिथ्या होने से। तिनके कार्य संसार को भी मायामय मिथ्या कहते हैं। जैसे स्वप्न प्रपञ्च बुद्धि का ही विवर्त कार्य है। वास्तव सत्य नहीं है। तैसे ही शोक मोह, सुख, दुःख, देह की उत्पत्ति आदि मेरी माया करके ही किये जाते हैं। वास्व नहीं हैं॥ ४० ॥ बन्ध मोक्ष की व्यवस्था यह है कि हे महाबुद्धे । उद्धव विम्ब रूप मुझ पर ब्रह्म का अविद्या में प्रति विम्ब रूप एक ही जीव को निश्चित मुझ अंश स्वरूप को अनादि अविद्या करके बन्ध होता है। जैसे एक आकाश के एक देश में रज धूमादि का सम्बन्ध होता हैं। आकाश के सर्व देशों में सम्बन्ध नहीं होता है। इस रहस्य को स्वबुद्धि से ही निश्चय करो। और। ब्रह्म श्रोत्रिय, ब्रह्मनिष्ठ गुरु की कृपा से प्राप्त अद्वितिय ब्रह्मात्मविद्या करके कैवल्य मोक्ष प्राप्त होता है॥ ४१ ॥ ईश्वर स्वरूप को देहादि प्रपञ्च से भिन्न जान कर सर्वज्ञ माया के वशीभूत नहीं है ऐसा जाने और कर्मों का फल भोक्ता नहीं है। शुद्ध सत्वगुण प्रधानमाया का

आश्रय होने से भी मोहित नहीं है नित्य मुक्त है। जो अविद्या युक्त है, सो कर्मों का फल भोक्ता है। और नित्य बद्ध है अविद्या के वशीभूत है ॥ ४२ ॥ मुझ ईश्वर के वेद रूप से कथन किए स्वधर्मों को तथा स्वर्ग, नरककारी पुण्य, पाप, गुण दोषों को सम्यक् जानकर सर्व धर्मों को त्यागकर, मुझ अद्वय सच्चिदानन्द विभु पर ब्रह्म को जो भजता है सो सर्व से श्रेष्ठ है। क्यों कि बहुत से वेद शास्त्र विहित भी ईश्वर भक्ति और ज्ञान के उपवास व्रतादि प्रतिबन्धक ही कहे हैं। निवृत्ति मार्ग में स्थित मुझ परमेश्वर परायण को विधि का किंकर न होना चाहिये ॥ ४३ ॥

अ० १२ श्लो० ५-६-७

बहवो मत्पदं प्राप्तास्त्वाष्ट्रकायाधवादयः ।
वृषपर्वा बलिर्बाणो मयश्चाथ विभीषणः ॥ ४४ ॥
सुग्रीवो हनुमानृक्षो गजो गृध्रो वणिक्पथः ।
व्याधः कुब्जा व्रजे गोप्यो यज्ञपत्न्यस्तथापरे ॥४५॥
ते नाधीतश्रुतिगणा नोपासितमहत्तमाः ।
अव्रतातप्ततपसः सत्सङ्गान्मामुपागताः ॥ ४६ ॥

श्रीकृष्ण भगवान् कहते हैं। कि हे उद्धव सांख्य योग, धर्म वेद जप, तप, त्याग, इष्ट, पूर्त, कर्म, व्रत तीर्थादि

सेवन किये हुए मुझ ईश्वर को वस नहीं कर सकते हैं। जैसे सर्व संगों को त्याग कर सन्त महात्माओं का संङ्ग रूप सत्संग वश में करता है ऐसे और कोई मुझको वश में नहीं कर सकता है। क्यों कि सत्संग करके बहुत से मुझ ईश्वर के स्वरूप को प्राप्त हो चुके हैं। तिन के नाम यह हैं वृत्रासुर प्रह्लाद, वृषपर्वा, बलि बाणासुर, मयनाम असुर, विभीषण ॥ ४४ । सुग्रीव हनुमान, ऋक्ष जाम्बवान् गृधराज जटायू तुलाधार वैश्य, धम व्याध दीक्षित ब्राह्मणों की भार्या, व्रज निवासी कुब्जा तथा गोपियें, और भी गजेन्द्र, यमलार्जुनादि जड़ वृक्षों में उत्पन्न हुए भी केवल सत्संग करने मात्र से ही मुझ ईश्वर को प्राप्त हो चुके हैं ॥ ४५ ॥

इतने पूर्वोक्त न तो वेद अर्थात थे। न वेद पाठ अर्थ गुरुकुल में वास कर ब्रह्मचर्य पूर्वक गुरु सेवा करी है न व्रत तपादि ही किये हैं। केवल श्रेष्ठ महात्माओं के सत्संग मात्र से ही मुझ परमानन्द को प्राप्त हो गये हैं। हे उद्धव तिस मेरे भजन के श्रेष्ठता के कारण से प्रवृत्ति निवृत्ति, रूप मार्ग की श्रुति स्मृतियों की विधीयों को त्यागकर सर्वात्मा अद्वय ब्रह्मस्वरूप मुझ का ही एक शरण हो॥४६॥

अ० १३ श्लो० २२-२३-२४

वस्तुनो यद्यनानात्वमात्मनः प्रश्न ईदृशः ।

कथं घटेत वो विप्रा वक्तुर्वा मे क आश्रयः ॥४७॥
पञ्चात्मकेषु भूतेषु समानेषु च वस्तुतः ।
को भवानिति वः प्रश्नो वाचारम्भो ह्यनर्थकः॥४८॥
मनसा वचसा दृष्टया गृह्यतेऽन्यैरपीन्द्रियैः ।
अहमेव न मत्तोऽन्यादिति बुध्यध्वमञ्जसा ॥४९॥

श्रीकृष्ण बोले हे उद्धव किसी काल में सनत्कुमारादि ब्रह्मा के पुत्रों ने ब्रह्मा से पूछा कि भो भगवन विषयों में चित्त प्रविष्ट होता है। और वासना रूप से विषय चित्त में प्रविष्ट होते हैं। संसार से तरने की इच्छा वाले मुमुक्षु को इनका परस्पर त्याग कैसे करना चाहिये। कर्म निष्ठ विक्षिप्त बुद्धि वाले ब्रह्मा को प्रश्न के उत्तर का न ज्ञान होने पर मुझको स्मरण किया तब मैं अनात्मात्म रूप नीर क्षीर को भिन्न करने में समर्थ हंस रूप धारण कर तिनके पास गया। तिन ने नमस्कार कर पूछा कि आप कोन हो। ऐसे पूछने पर मैंने हे उद्धव तिन ब्रह्मादि से जो कहा है सो सुनो। भो विप्रो। देहादि से आत्मा के भिन्न ज्ञान होने पर तिस ज्ञान निष्ठ को रागादी का अभाव होने से स्वयं ही विषयों के साथ चित्त के सम्बन्ध का त्याग हो जाता है। इस अर्थ के कथन के लिये। आप कोन हो इस प्रश्न को

खण्डन के मिस से प्रथम आत्मानात्म के विवेक को कहते हैं। आप कोन हो यह प्रश्न आत्मा के विषे है। अथवा आत्मा के उपाधि रूप पञ्चभूतों के संघात विषे है। यदि कहोकि आत्मा विषे है तो तिस परमार्थ स्वरूप आत्मा को एकाद्वितीय होने पर हे विप्रो आप लोगों का किया हुआ प्रश्न बहुतो मे एक का निश्चय करना रूप कैसे घटित हो सकता है। और उत्तर ाता मुझको भी किस आश्रय पर उत्तर देना वन सकता हैं, अर्थात् नहीं वन सकता है। क्यों कि जाति गुणादि विषेषणों से रहित शुद्धात्मा विषे किस जाति गुणाद विशेषण को आश्रय लेकर मैं उत्तर कह सकता हूँ अर्थात् नहीं कह सकता हूँ ॥ ४७ । यदि कहो कि पञ्चभूतों के संघात विषे प्रश्न है तो भी आप कोन हो यह प्रश्न आप लोकों का वाणी से कथन मात्र का आरम्भ रूप अनर्थक निष्फलही है क्यों अनर्थक है। सो ऐसे है कि पञ्चभूतों के संघात रूप देव मनुष्यादि देहों में पञ्चभूत रूपता सर्व में एक समान होने पर पञ्चीकरण रूप से एकता है। श्रुति कहती है कि घट कुड्य कशूलादि विकार वाणी का आरम्भ मात्र है। सर्व में मृत्तिका ही एक सत्य है। ऐसे ही देव मनुष्यादि यावत प्रपञ्च विकार रूप है। सो सर्व वाणी का कथन मात्र मिथ्या आरंभ रूप

है । अद्वय ब्रह्मस्वरूप आत्मा ही एक सत्य हैं ॥ ४८ ॥

और प्रत्यक्ष प्रमाणादि प्रसिद्ध पञ्चभूत सृष्टि का परम कारण रूप ब्रह्मात्मा के साथ अभेद कहते हैं । कि भो विप्रो मन वाणी नेत्र से तथा अन्य श्रोत्रादि इन्द्रियों से जो जो वस्तु निश्चित तत्व विचार से ग्रहण करी जाती है सो सर्वात्मस्वरूप मैं ही हूं । मुझ आत्मस्वरूप से भिन्न कुछ वस्तु नहीं है । ऐसा निश्चित जानो । इस कथन से आप लोगों के प्रश्न का उत्तर कहा गया है । और ब्रह्मा से जो प्रश्न का उत्तर नहीं कहा गया है तिसका उत्तर यह है कि विषयों में चित्त प्रविष्ट है । चित्त में वासना रूप से विषय प्रविष्ट है । तिन विषय चित्त दोनों का प्रवेश मुझ ब्रह्म स्वरूप जीव के देह में प्रविष्ट है । मुझ ब्रह्म स्वरूप जीव में प्रविष्ट नहीं है । यदि बुद्धि - चित्तादि शब्दों का वाच्य जीव का स्वरूप होता तो विषय चित्तादि का वियोग न घटता । तिस जीव का स्वरूप तो मैं ब्रह्म हूँ चित्तादियों में अहं बुद्धि भ्रम से होती थी । इस कारण से निज को ब्रह्म रूप से निश्चय कर और विषय चित्तादि को मिथ्या निश्चय कर सर्व से विरक्त होकर जीवन्मुक्त हुए विचरो । हे उद्धव ऐसे मुझ हंस रूप के उपदेश करके छिन्न संशय हुए ब्रह्मा सहित सनकादि मुनि मुझ ईश्वर की श्रद्धा भक्ति से पूजा स्तुति

कर आनन्दित हुए चले गये मैं भी तिनों से पूजित हुआ निज धाम वैकुण्ठ को चला गया ॥ ४६ ॥

अ० १५ श्लो० १७

निर्गुणे ब्रह्मणि मयि धारयन विशदं मनः ।
परमानन्दमाप्नोति यत्र कामोऽवसीयते ॥५०॥

हे उद्धव ! अणिमा, महिमादि योग सिद्धियों को ब्रह्मात्म स्वरूप ज्ञान का प्रति बन्धक जानकर तिनका दूरसे त्याग करे विवेकी जन सत्य, ज्ञान, आनन्द स्वरूप निर्गुण पर ब्रह्म रूप मुझ में शुद्ध मन को धारण करता हुआ, सच्चित परमानन्द कैवल्य मोक्ष को प्राप्त होता है । जिस सच्चिदानन्द पर ब्रह्म को प्राप्त होने पर, सर्व कामना तिस निर्गुण पर ब्रह्म की एक षोडषी अंश में ही समाप्त हो जाती है । इस से परे अन्य कुछ प्राप्त करने के योग्य शेष नहीं रहता है ॥ ५० ॥

अ० १७ श्लो० १६-१७-१८-१९-२०-२१-२२

शमो दम स्तपः शौचं संतोषः क्षांतिरार्जवम् ।
मद्भक्तिश्च दया सत्यं ब्रह्म प्रकृतयस्त्विमाः ॥५१॥
तेजो बलं धृतिः शौर्यं तितिक्षौदार्यमुद्यमः ।
स्थैर्यं ब्रह्मण्यतैश्वर्यं क्षत्र प्रकृतयस्त्विमाः ॥ ५२ ॥

आस्तिक्यं दाननिष्ठा च अदंम्भो ब्रह्मसेवनम् ।
अतुष्टिरर्थोपचयैर्वैश्य प्रकृतयस्त्विमाः ॥ ५३ ॥
शुश्रूषणं द्विजगवां देवानां चाप्यमायया ।
तत्र लब्धेन सन्तोषः शूद्र प्रकृतयस्त्विमाः ॥ ५४ ॥
अशौचमनृतं स्तेयं नास्तिक्यं शुष्कविग्रह ।
काम क्रोधश्च तर्षश्च स्वभावोऽन्तेवसायिनाम् ॥ ५५॥
अहिंसा सत्यमस्तेयमकाम क्रोध लोभता ।
भूतप्रिय हितेहा च धर्मोऽयं सार्ववर्णिकः ॥ ५६ ॥
द्वितीयं प्राप्यानु पूर्व्याज्जन्मोपनयनं द्विजः ।
वसन्गुरु कुले दान्तो ब्रह्माधीयीत चाहूतः ॥ ५७ ॥

उद्धव ने श्री भगवान् से कहा कि भो प्रभो यथावत् संसार से मोक्षकारी वर्णाश्रमों के धर्मों का वक्ता, कर्त्ता, अविता आप से भिन्न मुझको कोई देखने में नहीं आता है। सो आप कृपा कर कहें। ऐसे प्रश्न से निज भक्त उद्धव को सर्व का हितकारी जानकर भगवान् प्रसन्न होकर बोले कि हे उद्धव मुझ ईश्वर के मुख से ब्राह्मण उत्पन्न हुआ। भुजों से क्षत्रिय, उरू से वैश्य पाद से शूद्र उत्पन्न हुआ है। और गृहस्थाश्रम जंघों से उत्पन्न हुआ नैष्ठिक ब्रह्म-

चर्याश्रम हृदय से, हुआ, वानप्रस्थाश्रम वक्षस्थल से हुआ, संयासाश्रम शिरसे उत्पन्न हुआ है। तिन वर्णाश्रमों के अनुसार पुरुषों के स्वभाव हैं। जैसे शम मन का निरोध, दम बाह्य इन्द्रियों का निरोध तप, वेद शास्त्र विचार, शौच; मन देह की शुद्धि, सन्तोष, यथा लाभ से तृप्ति, क्षमाशीलता आर्जव, कपट रहितता, ईश्वर भक्ति, सर्व प्राणियों पर दया, सत्यवादी यह स्वभाविक ब्राह्मणों की प्रकृतियें हैं ॥ ५१ ॥ तेज, प्रताप, बलशाली, धृति संताप सहनता, शूरवीरता, तितिक्षा दीनों का अपराध सहनता, औदार्य, दान में उत्साह. उद्यमशीलता, स्थैर्य, सत्य संकल्पता यथा शक्ति नित्य वेद पाठ, ब्राह्मण सेवी। ऐश्वर्य. नियन्ता, यह क्षत्रिय की स्वाभाविक प्रकृतियें हैं ॥ ५२॥ आस्तिक्य गुरु शास्त्रों में विश्वास, दान में निष्ठा. अदम्भ, परवंचना रहितता, यथाशक्ती नीत्य वेद पाठ और ब्राह्मण सेवा, धन वृद्धि में तुष्टी रहितता, यह वैश्य की स्वभाविक प्रकृतयें हैं॥ ५३ ॥ कपट से रहित द्विजातीयों की गौओं की देवताओं की सेवा पूजा करनी, तिन द्विजातियों से दिये हुवे में यथा लाभ से सन्तोष कर्ना यह स्वाभाविक शूद्रों की प्रकृतिये हैं ॥५४॥ शुद्धि हीनता, मिथ्यावादी, चोरिता, नास्तिकपना, बिना कारण कलह, तृषालुता, काम, क्रोध,

यह अन्त्यजों की स्वाभाविक प्रकृतिये हैं ॥५५॥ मन वाणी शरीर से हिंसा करना, यथा दृष्ट, यथा श्रुत सत्य भाषण, चोरी रहितता, काम क्रोध लोभ से रहित होना, सर्व भूत प्राणियों से प्रिय भाषण करना, सर्व के हित की इच्छा करनी यह सर्व वर्णों के साधारण धर्म हैं ये चार वर्णों के धर्म कहे ॥५६॥ अब चार आश्रमों के प्रथम ब्रह्मचारियों के धर्म कहते हैं। ब्रह्मचारी दो प्रकार के हैं। एक उप कुर्वाण दूसरा नैष्ठिक तिनमें उपकुर्वाण के ये धर्म हैं। :- गर्भाधानादि संस्कारों के अनुक्रम से दूसरे उपनयन नामक द्विज जन्म को प्राप्त होकर गुरु कुल में वास करता हुवा आचार्य से बुलाया हुआ आचार्य से वेद को पढे और तिस वेद के अर्थ को विचारे अग्नि आचार्यादि की विधि पूर्वक पूजा करे गुरु की जो सेवा पूजा है सो मुझ ईश्वर की ही सेवा पूजा है। सायं प्रातः काल भिक्षा लाकर गुरु को समर्पण करदे। जब तक विद्याध्ययन की समाप्ति न हो तब तक गुरुकुल में वास करे। यदि ब्रह्मलोक की इच्छा वाला हो तो नैष्ठिक ब्रह्मचारी हुआ गुरु की सेवा में देह समर्पण करदे। मरण पर्यन्त गुरु सेवी हुआ वेद पढ़े। यदि भोगों की कामना हो तो समावर्तन कर गुरु दक्षिणा देकर यथा योग्य जाति कुलानुसार भार्या को ग्रहण कर गृहस्थाश्रम के धर्मों को

विधी पूर्वक करें। वनवास की इच्छा हो तो वानप्रस्थ हो जाएं। यदि अति तीव्र वैराग्य हो तो सर्व का त्यागकर मोक्षाश्रमी सन्यासी हो जाए॥ ५७॥

अ० १७ श्लो० ५३-५४-५६

पुत्रदाराप्तबन्धूनां सङ्गमः पान्थसङ्गमः।
अनुदेहं वियन्त्येते स्वप्नो निद्रानुगो यथा॥ ५८॥
इत्थं परिमृशन्मुक्तो गृहेष्वतिथिवद्वसन्।
न गृहैरनुबध्येत निर्ममो निरहंकृतः॥ ५९॥
गृहस्वासक्तमतिर्गेहे पुत्रवित्तैषणातुरः।
स्त्रैणः कृपणधी मूढो ममाहमिति बध्यते॥ ६०॥

गृही पुरुष भी गृह में विचार से वर्तता हुआ मोक्ष का भागी हो जाता है। सो ऐसे है कि पुत्र दारादि सर्व बन्धुओं का सम्बन्ध मार्ग में चलने वाले पथिकों के समान अनित्य है। देहके नाश हो जाने पर सम्बन्ध नाश हो जाता है। जैसे जल पीने वाले लोग प्याउ पर एकत्र हो जाते हैं। जल पीकर स्व स्व स्थान को चले जाते हैं। तैसे ही यह सम्बन्धी निज निज कर्मों का सुख दुःख भोगना रूप जल पीकर यम लोक के पथिक हो जाते हैं। और जैसे स्वप्न में

प्रति दिन पुत्र दारादि बान्धव प्रतीत होते हैं जागने पर नष्ट हो जाते हैं ।५८। ऐसा विचार करता हुआ, गृहों में अतिथि के समान बसता हुआ सो गृही भी मुक्त ही है । क्यों कि पुत्र दारादि में ममता रहित है । देह में वर्णाभिमान् रूप अहंता से रहित है । इस कारण से गृह सम्बन्धी पुत्र दारा धनादि के मोह करके बन्धन को प्राप्त नहीं होता है ॥ ५९ ॥ जो पुरुष गृह में तथा सम्बन्धियों में आसक्त मति है । और स्त्री पुत्र धनादि की इच्छा कर दुःखी दीन है । स्त्री जित है । कृपण बुद्धिवाला मूढ़ पुत्रदारादि में ममता और देह में अहंता बुद्धि कर बन्धन को प्राप्त होता है । अहो मेरे माता पिता वृद्ध है । स्त्री मेरी बालक पुत्रों वाली है । यह अनाथ दीन मेरे से बिना अति दुःखी हुए कैसे जीएगें । ऐसे मोह रूप बेड़ीं से बन्धा हुआ गृह रूप कारागार से कभी भी नहीं मुक्त हो सकता हैं ॥ ६० ॥

अ० १८ श्लो० १-१२-१६-१७-१८-२८-४२

वनं विविक्षुः पुत्रेषु भार्यां न्यस्य सहैव वा ।
वन एव वसेच्छान्त स्तृतीयं भागमायुषः ॥६१॥
यदा कर्म विपाकेषु लोकेषु निरयात्मसु ।
विरागो जायते सम्यङ् न्यस्ताग्निः प्रव्रजेत्ततः॥६२॥

दृष्टिपूतं न्यसेत्पादं वस्त्रपूतं पिबेज्जलम् ।
सत्यपूतां वदेद्वाचं मनः पूतं समाचरेत् ॥६३॥
मौनानीहानिलायामा दण्डा वाग्देहचेतसाम् ।
नह्येते यस्य संत्यङ्ग वेणुभिर्न भवेद्यतिः ॥६४॥
भिक्षां चतुर्षु वर्णेषु विगर्ह्यान्विवर्जयंश्चरेत् ।
सप्तागारानसंक्लृप्तांस्तुष्येल्लब्धेन तावता ॥६५॥
ज्ञाननिष्ठो विरक्तो वा मद्भक्तो वानपेक्षकः ।
सलिङ्गानाश्रमांस्त्यक्त्वा चरेदविधि गोचरः ॥६६॥
भिक्षोर्धर्मः शमोऽहिंसा तप ईक्षा वनौकसः ।
गृहिणो भूतरक्षेज्या द्विजस्याचार्य सेवनम् ।६७॥

अब श्री भगवान् वनस्थों के धर्म कहते हैं कि हे उद्धव आयु का तृतीय भाग पचास वर्ष से पश्चात पच्चहत्तर वर्ष पर्यन्त होता है। तिससे परे क्षीण इन्द्रिय शक्ति पुरुष का अल्प वैराग्य हुए भी सन्यास में अधिकार है तिस आयु के तीसरे भाग को प्राप्त हुआ त्रिवर्णिक द्विज ईश्वर आराधन के लिये वनमें जाकर निवास करने की इच्छा वाला शान्त चित्त हुआ बन में ही निश्चित वास करे। स्वभार्या को सुपात्र पुत्रों विषे समर्पण कर गृह में छोड़ जाए।

अथवा भार्या पति सेवानुरक्त हो पति को त्यागना नहीं चाहती हो तो निज भार्या को भी साथ ही ले जाय। केश रोमादि को न छेदन कर विशेपता से तप तितिक्षादी करता हुआ ईश्वर आराधन करे। हल से जुती भूमि मे न उत्पन्न हुवे कन्द मूल फल आदि से जीवन करना कहा है। अग्नि होत्र, दर्श, पूर्ण मासादि यज्ञ पूर्व के समान ही करने ऋषियों ने कहे हैं। ६१ ॥

यदि अति विरक्त हो तिसका कर्त्तव्य कहते हैं। जिस काल में वनस्थ को कर्म जन्य फलों में, आत्मब्रह्मनिष्ठ ज्ञानि की दृष्टि से नरक रूप स्वर्गादि लोकों में सम्यक् तीव्र वैराग्य उत्पन्न हो जाय। तब कर्मों के साधन रूप अग्नि को त्याग कर तिस दुःख फल जनक से सन्यास लेकर अद्वय ब्रह्मात्म स्वरूप का चिन्तन करे। तिसको सन्यास करते को देवता स्त्री, पुत्रादि रूप से विघ्न करते हैं। क्यों कि यह अब हम देवताओं का अति क्रमण कर पर ब्रह्म को प्राप्त होना चाहता है ॥६२॥

सन्यासी के नियम यह हैं। नेत्र से जन्तु रहित शुद्ध भूमि देखकर पाद रखे। वस्त्र से छानकर पवित्र जल पान करे। सत्य और प्रिय शुद्ध वाणी बोले। मन से सम्यक् विचार कर जो निर्दोष शुद्ध कार्य हो तिसका आचरण

करे ॥ ६३ ॥ हे उद्धव ! प्रमित भाषण रूप मौन वाणी का दण्ड है । काम्य कर्मों का त्याग रूप देह का दण्ड है प्राणायाम से चित्त का निरोध रूप मन का दण्ड है यह तीन दण्ड अन्तर में धारण किये हुए जिसके नहीं हैं । सो बाह्य के वेणु दण्डों के धारण से यति नहीं हो सकता है ॥ ६४ ॥ पूर्व पूर्व ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य के न लाभ होने पर भिक्षु चारों वर्णों में निन्दनीयों को छोड़कर भिक्षा का आचरण करे । सप्त गृहों की जिनमें आज गये हों तिन में दूसरे दिन न जाके संकल्प से रहित अन्य गृहों की भिक्षा लेकर यथा लाभ से तावत् मात्र से ही संतोष करे । निज उदर पूर्ति से अधिक यति भिक्षा गृहण न करे जितेन्द्रिय एकाकी सर्व सङ्गों से रहित आत्म रत समदर्शी हुआ भूमि पर विचरे ॥ ६५ ॥

संन्यासो० अ० १ चतुरो मासान्वार्षिकान्ग्रामे वा नगरे वापि वसेत् । पक्षो वै मासो इति द्वौ मासौ वा वसेत् ॥
एकोभिक्षु र्यथोक्तस्यात् द्वावेव मिथुनं स्मृतम् । त्रयो ग्रामः समाख्यातः उर्ध्वं तु नगरायते ।

ऐसे बहुदकादि यतियों के धर्मों को कह कर अब परमहंसों के धर्मों को कहते हैं । सर्व वस्तु से विरक्त मुमुक्षु हुआ अथवा ब्रह्मात्मा के एकता अद्वय स्वरूप ज्ञान में निष्ठा

वाला हुआ जीवन्मुक्त, अथवा मुक्त सच्चिदानन्द में अभेद भक्ति वाला मेरा भक्त लिङ्ग चिन्हों के सहित आश्रमों को तथा आश्रम धर्मों को त्याग कर आसक्ति रहित हुआ यथा योग्य जीवन्मुक्ति के धर्मों का आचरण करे। पूर्वोक्त बहुदकादि यतियों से विलक्षणता परमहंसों में यह है कि विधि का किंकर न होए। अ० १८ श्लोक ३६ में कहा है। शौचमाचमनं स्नानं न तु चोदनया चरेत्। तिस विधि की किंकरता को ज्ञाननिष्ठा का विरोधी होने से। कैसे आचरण करे विवेक युक्त हुआ भी बालक के समान माना-पमान शून्य। विचार निपुण भी जड़ के समान। पण्डित भी उन्मत सम लोक रंजनादि से रहित। श्रुति स्मृति से विरुद्ध धर्मों का अनुष्ठानकारी पाखण्डी न हुआ। लोकों को उद्विग्न खेद कारी न हो, और लोगों से आप उद्विग्न खेद युक्त न हो। शुष्क वाद विवाद से किसी का पक्ष ग्रहण न करे। देह अभिमानी हुआ पशु के समान किसी के साथ वैर भाव न करे. क्यों कि सर्व को अपना आत्मा होने से। ऐसे प्राण धारणार्थ भिक्षा वस्त्र ग्रहण करके ब्रह्मात्म अद्वैत तत्त्व का विचार करे तिस विचार से ब्रह्मात्म एक तत्त्व स्वरूप को जानकर मुक्त हो जाता है। हे उद्धव यह परमहंसो के धर्म है। जो ब्रह्मात्माद्वय तत्त्व के

ज्ञान से और विषय पदार्थों के वैराग्य से रहित होकर भिक्षा वृत्ति से जो जीवन पूरा करता है। सो यति आत्म हा, धर्मंहा हुआ उभय लोक से पतित कहा जाता है यह निश्चित् ही है। भेदाभेदौ सपदिगलितौ पुण्यपापे विशिर्णे, मायामोहौ क्षयमधिगतौ नष्टसंदेहवृत्तिः । शब्दातीतं त्रिगुणरहितं प्राप्य तत्त्वावबोधं, निस्त्रैगुण्ये पथि विचरतः को विधिः को निषेधः ॥ शुकोक्तिः ॥ ६६ ॥ अब चारों आश्रमों के सामान्य से धर्म कहते हैं। भिक्षु यतिका धर्म, मन का निरोध, और मन वाणी देह से किसी भी जन्तु को हिंसा न करनी। वानप्रस्थ का धर्म पञ्चाग्नि तापादि तप, ब्रह्मात्म तत्त्व का विचार करना। गृही का धर्म सर्व भूत प्राणियों को अन्नवस्त्रादि से रक्षा करना। स्वाध्याय ब्रह्मयज्ञ १ पितृ तर्पण पितृयज्ञ २ अग्नि होत्र देव यज्ञ ३ भूत बली देना भूतयज्ञ ४ अतिथि पूजन करना नृयज्ञ ५ ब्रह्मचारी का धर्म गुरु से उपनयन संस्कार कराकर द्विज हुए का गुरु की निष्कपट होकर सेवाकरते हुए वेद पढ़ना ॥ ६७ ॥

अ० १९ श्लो० १

यो विद्याश्रुतसंपन्न आत्मवान्नानुमानिकः ।
मायामात्रमिदं ज्ञात्वा ज्ञानं च मयि सन्यसेत् ॥६८॥

हे उद्धव ! जिसको अपरोक्षात्मानुभव से प्रपंच सुषुप्ति के समान प्रायः लीन हो गया है तिसको संसार में कोई कर्त्तव्य नहीं है। यह कहते हैं जो पुरुष वेद शास्त्र के पूर्ण ज्ञान पर्यन्त श्रवण से विद्या सम्पन्न है। इसी हेतु से ब्रह्मात्म तत्त्व की प्राप्ति वाला है। केवल अनुमान से परोक्ष ज्ञानी नहीं है। किन्तु पूर्व श्रुति अनुकूल तर्कों से निर्णीतार्थ रूप ब्रह्मात्मतत्त्व का अपरोक्ष ज्ञानी है। सो ज्ञानी इस द्वैत प्रपंच को तिस प्रपंच के निवृत्तिकारी साधनों को मुझ ब्रह्मात्म स्वरूप में माया मात्र मिथ्या कल्पित है। ऐसा निश्चित जानकर सर्व का संन्यास रूप त्याग करदे। यह विद्वत्संन्यास है। आत्मज्ञानी मुझको प्रिय है। आत्म ज्ञानी को मैं परमानन्द ब्रह्म प्रिय हूँ ॥ ६८ ॥

अ० १६ श्लो० ३३-३४-३६-३७-३८-३६-४०४१-४२-४४

अहिंसा सत्यमस्तेयमसङ्गो ह्रीरसंचयः।
आस्तिक्यं ब्रह्मचर्यं च मौनं स्थैर्यं क्षमाभयम् ॥६९॥
शौचं जपस्तपोहोमः श्रद्धातिथ्यं मदर्चनम्।
तीर्थाटनं परार्थेहा तुष्टिराचार्य सेवनम् ॥७०॥
शमो मन्निष्ठता बुद्धेर्दम इन्द्रिय संयमः।

तितिक्षा दुःखसंमर्षो जिह्वोपस्थजयो धृतिः ॥७१॥
दण्डन्यासः परं दानं कामत्यागस्तपः स्मृतम् ।
स्वभावविजयः शौर्यं सत्यं च समदर्शनम् ॥७२॥
ऋतं च सूनृतावाणी कविभिः परिकीर्तिता ।
कर्मस्वसङ्गमः शौचं त्यागः सन्यास उच्यते ॥७३॥
धर्म इष्टं धनं नृणां यज्ञोऽहं भगवत्तमः ।
दक्षिणा ज्ञान संदेशः प्राणायामः परं बलम् ॥७४॥
भगो म ऐश्वरो भावो लाभो मद्भक्तिरुत्तमः ।
विद्यात्मनि भिधाबाधो जुगुप्सा ह्रीरकर्मसु ॥७५॥
श्रीर्गुणा नैरपेक्ष्याद्याः सुखं दुःखसुखात्ययः ।
दुःखं काम सुखापेक्षा पण्डितो बन्ध मोक्षवित् ॥७६॥
मूर्खो देहाद्यहंबुद्धिः पन्थामन्निगमः स्मृतः ।
उत्पथश्चित्तविक्षेपः स्वर्गः सत्व गुणोदयः ॥७७॥
दरिद्रो यस्त्वसंतुष्टः कृपणो योऽजितेन्द्रियः ।
गुणेष्वसक्त धीरीशो गुणसंगो विपर्ययः ॥ ७८ ॥

अब श्रीकृष्ण भगवान, यम नियमादि के स्वरूप बतलाने के लिये उद्धव के लिये प्रश्नों का अनुक्रम से उत्तर कहते हैं । मन वाणी देह से हिंसा न करना यथा दृष्ट यथा

श्रुत सत्य भाषण। पर धनका अग्रहण। सङ्ग रहित। शास्त्र निषिद्ध कार्य में लज्जा। विषय ग्रहण का असंकल्प। गुरु शास्त्रोक्त धर्म में श्रद्धा विश्वास। अष्ट प्रकार के मैथुन का त्याग ब्रह्मचर्य। प्रमित भाषण मौन। आपद् में स्थिर बुद्धि दीनापराध सहनता क्षमा। सर्व प्राणियों को अभय दान।६६।

मन देह की शुद्धि। गायत्री आदि मन्त्रों का जप। तितिक्षादि सहते हुए विचार शीलता, अग्निहोत्र। धर्म में आदर श्रद्धा। अतिथि पूजन। मुझ ईश्वर देव की पूजा। पुण्य तीर्थ सेवन। परहित की इच्छा सन्तोष। गुरु सेवा। यह यम नियम कहे ॥७०॥ मुमुक्षु को उपादेय शमादियों को तथा हेय दुखकारी कार्यों को कहते हैं बुद्धि का मुझ परमानन्द निष्ठता होना शम है। शमादि से वीपरीत अशमादि त्याज्य जानने। इन्द्रियों का विषयों से निरोध दम है। शास्त्रविहित दुःख सहन तितिक्षा। जिह्वा उपस्थ दोनो का जय धृति ॥७१॥ प्राणि मात्र से द्रोह रूप दण्ड का त्याग ही परम दान है। भोगों की कामना का त्याग ही तप कहा है। वासना स्वभाव का जय करना ही शूरवीरता है। सत्य ज्ञानानन्द स्वरूप ब्रह्म का विचार ही सत्य है ॥७२॥ सर्वज्ञ मुनियों ने सत्य प्रिय भाषणी वाणी कही है। कर्मों के फलों में अनासक्ति ही शौचता है। त्याग का नाम सन्यास कहा

है ॥७३॥ पुरुषों का धर्म ही इष्ट तम धन है। पशु आदि धन नहीं है। यज्ञादि कर्म रूप में परमेश्वर हूं। मुझ-गीता उक्त ब्रह्म बुद्धि से ही कर्म करना योग्य है। यज्ञार्थ दान दक्षिणा देना मुझपर पर ब्रह्म का ज्ञान-उपदेश देना ही दान दक्षिणाहैं हिरण्यादि दान दक्षिणा नहीं है। तिन ज्ञान रूप उपदेश से ही यज्ञ विष्णु प्राप्त होता है। प्राणायाम ही मन को वशकारी महान् बल हैं ॥७४॥ मुझ ईश्वर स्वरूप भावना ही भाग्य है मुझ परमानन्द में प्रेमा भक्ति होना ही संसार मे उत्तम लाभ हैं पुत्रादियों में प्रेमाभक्ति होना उत्तम लाभ नहीं है विद्या नाम ब्रह्मात्म स्वरूप में भेद प्रतीति का बाध होना केवल ज्ञान मात्र नहीं। निषिद्ध कर्मों में लज्जा हेय विचार लज्जा मात्र ही नहीं ॥७५॥ शुभ गुण ही भूषण रूप शोभा श्री हैं। किरीटादि नहीं। सुख दुःख दोनों का अतिक्रमण, विचार ही न करना निरपेक्षता ही सुख है। विषय भोग नहीं विषय सुखापेक्षा ही दुःख है। बन्ध मोक्ष दोनों का जो ज्ञाता है सो पण्डित है केवल शास्त्र का विद्वान् नहीं ॥७६॥ देह गेहादि में अहंता ममता का अभिमान वाला ही मूर्ख है। मुझ परमानन्द ब्रह्म को जो सर्वदा बोधन कर प्राप्त कराए सो वेद का निवृत्ति पथ नाम ही श्रेष्ठ मार्ग है कण्टकादि रहित राजमार्ग नहीं। चित्त विक्षेपकारी प्रवृत्ति

मार्ग ही कुमार्ग है चौरादि युक्त नहीं। सत्वगुण की वृद्धि होना ही स्वर्ग है, इन्द्रादि लोक नहीं ॥७७॥ तमोगुण की वृद्धि होना ही नरक है। तामिस्रादि नहीं। ब्रह्मात्म स्वरूप का ज्ञानदाता गुरु ही बन्धु है भ्रातादि नहीं। हे सखे उद्धव जैसे व्यासादि अवतार धारण कर वेदों की शिक्षा उपदेश प्रचार कर्ता मैं ईश्वर जगद्गुरु हूँ धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष रूप चार पुरुषार्थों का तथा साधन सहित सर्व भोगों का गृह ये मनुष्य शरीर है। मकानादि नहीं। असन्तोषी ही दरिद्री है निर्धन नहीं जो अजितेन्द्रिय है सो ही कृपण है। दीन नहीं तीन गुणों के कार्य त्रिपयों में सक्ति रहित बुद्धि वाला ही ईश्वर है। तथा स्वतन्त्र है। राजादि नहीं। तीन गुणों के कार्य विषयों में सक्त बुद्धि वाला ही अनीश्वर जीव है। यह गुण दोषों के विवेक के लिये किये उद्धव के प्रश्नों के संक्षेप से श्री भगवान् ने गुण दोषों के लक्षण कथन पूर्वक उत्तर कहे। हे उद्धव क्या है अधिक कथन से। गुण दोषों के एतावन्मात्र ही लक्षण स्वरूप हैं अधिक नहीं ॥७८॥

अ. २० श्लो. ६-७-८

योगास्त्रयो मया प्रोक्ता नृणां श्रेयोविधित्सया।
ज्ञानं कर्म च भक्तिश्च नोपायोऽन्योऽस्ति कुत्रचित्॥७॥

निर्विण्णानां ज्ञानयोगो न्यासिनामिह कर्मसु ।
तेष्वनिर्विण्णचित्तानां कर्मयोगस्तु कामिनाम् ॥८०॥
यदृच्छया मत्कथादौ जातश्रद्धस्तु यः पुमान् ।
न निर्विण्णो नाति सक्तो भक्तियोगोऽस्य सिद्धिदः ॥८१॥

उद्धव पूछते हैं कि भो भगवन् अप्राप्त कैवल्य मोक्ष में तथा स्वर्गादि में और साध्य साधना में कैवल्य मोक्ष के प्राप्ति के लिये । तथा स्वर्गादि प्राप्ति के लिये । साध्य साधनों के ज्ञान के लिये । पितृ देव मनुष्यों का एक आपका श्याम रूप वेद ही प्रकाशक श्रेष्ठ चक्षु है । यह इसका साध्य है, यह इसका साधन है । ऐसी दशा में गुण दोष दृष्टि के अभाव होने पर मोक्षादि कैसे घटित हो सकते हैं इस मेरे भ्रम को आप निवृत्त करें । श्रीकृष्ण भगवान बोले कि विषय रूप ब्रह्म के भेद न होने पर भी अधिकारियों के भेद से कोई विरोध नहीं है । ऐसा कहने के लिये प्रथम तीन योग कहते हैं । कैवल्य मोक्ष प्राप्ति के तथा स्वर्गादि प्राप्ति के लिये । उपाय रूप तीन योग नाम ब्रह्मकाण्ड । कर्म काण्ड । देवता काण्ड रूप से मुझ ईश्वर ने कहे हैं । कर्म और भक्ति निष्काम करते हुए नरों को मोक्ष के साधनों के विधान की इच्छा से कहे हैं । ब्रह्मात्मज्ञान मोक्ष का साधन है । काम्य कर्म स्वर्गादि का साधन है । सकाम भक्ति

ब्रह्मलोक वैकुण्ठादि का साधन है । इन तीन साधनों से अन्य साधन किसी स्थान में भी प्राप्त नहीं हो सकता है ॥ ७६ ॥

तिन ब्रह्म काण्ड, कर्म काण्ड, देवता काण्ड, तीनों में ज्ञान के अधिकारियों के भेद को कहते हैं । इन तीनों में अधिकारियों को कर्मों मे दुःख बुद्धि से कर्मों के फलों में नाश बुद्धि से विरक्तों को स्वर्गादिफल, यज्ञादि साधन कर्मों के त्यागियों को ज्ञान योग ही मोक्ष सिद्धि प्र. है । और वैराग्य हीनोको तिन कर्मों में दुःख बुद्धि रहितों को कर्मों के फलों में नाश बुद्धि रहितों को इसी कारण से स्वर्गादि फलों में कामना वालों को कर्म अधिकारियों को कर्म योग ही स्वर्गादिफल रूप सिद्धि देने वाला है । निष्काम कर्म चित्त शुद्धि पूर्वक ज्ञान द्वारा मोक्ष फल सिद्धि को देने वाला है ॥ ८० ॥ दैव इच्छा से किसी भी पुण्य भाग्य उदय होने से शुभ भगवत् परमानन्द ब्रह्म बोधक शास्त्र की कथा श्रवणादि में उत्पन्न तीव्र श्रद्धा वाला जो पुरुष है । जो न तो निष्काम कर्मों से विरक्त ही है । न कर्मों में अति सक्त बुद्धि वाला है । ऐसे शुभ प्रकाश रूप देव में प्रेम भक्ति युक्त को देवता काण्ड रूप भक्ति योग ही ब्रह्मलोक वैकुण्ठ फल प्राप्ति रूप सिद्धि देने वाला है ।

निष्काम रूप परा भक्ति विरक्त को कैवल्य मोक्ष रूप सिद्धि देने वाली है ॥ ८१ ॥

अ० २० श्लो० १७

नृदेहमाद्यं सुलभं सुदुर्लभं प्लवं सुकल्पं गुरुकर्णधारम्
मयानुकूलेन नभस्वतेरितं पुमान् भवाब्धिं न तरेत् स आत्महा ॥८२॥

हे उद्धव ऐसे कर्म, भक्ति, ज्ञान, तीनो काण्डों के अधिकारी मनुष्य देह को नौका रूप को प्राप्त होकर जो भव सागर को न तरे। सो नर आत्म हत्यारा है। तिसमें हेतु कहते हैं। कैसा नरदेह है धर्मार्थ काम मोक्ष रूप सर्व फलों की प्राप्ति का कारण है। नरदेह में उपार्जित कर्मों करके सर्व फलों कि प्राप्ति होने से। कोटि उद्यमों से भी न प्राप्त होने से दुर्लभ है दैव इच्छा से लब्ध होने से सुलभ है। सर्व कार्य में समर्थ निपुण है। गुरु शरण मात्र ही भयानक कर्ण धारा से पार कर्ता रूप नेता है। जिसका तिस नर देह रूप नाव को। और मुझ ईश्वर के स्मरण मात्र अनुकूल वायु से प्रेरित को। ऐसी नौका को प्राप्त होकर जो संसार सागर से पार न तरा। तिस नर से अधिक कौन आत्म घाती हो सकता है ॥ ८२ ॥

अ० २१ श्लो० ३५

वेदा ब्रह्मात्मविषयास्त्रिकाण्डविषया इमे
परोक्षवादा ऋषयः परोक्षं मम च प्रियम् ॥८२॥

श्री कृष्ण भगवान् कहते हैं कि हे उद्धव कर्म, ब्रह्म, देवता, रूप तीन काण्ड विषय के प्रतिपादक जो यह वेद हैं ब्रह्म ही निश्चित् आत्मा है। संसारी जीव नहीं। इस अर्थ कथन परक वेद हैं। स्वर्गादि आवान्तर फलों की बोधक श्रुति नरों को मोक्ष का बोध नहीं करती हैं। किन्तु मोक्ष के कथन की इच्छा से रोचन परक है। जैसे बालक को कटु निम्बादि औषधी पिलाने के लिये कहा जाता है निम्ब पीओ तो तुम्हारे का लड्डु पेड़ा देंगे। ऋषि मन्त्र अथवा मन्त्र वक्ता ऋषि परोक्ष अर्थ के कथन कर्ता हैं। जैसे परोक्ष प्रिया हि देवा। ऐसे ही परोक्ष मुझ ईश्वर को प्रिय है। यह भावार्थ शुद्धांतःकरण वालों करके जानने योग्य है॥ ८३ ॥ ॥ अथ भिक्षु गीता ॥

अ.२३श्लो.३-६-७-११-१४-१५-१७-१८-१९-२२-२४-२८-६०

न तथा तप्यते विद्धः पुमान् बाणैः सुमर्मगैः।
यथा तुदन्ति मर्मस्था ह्यसतां परुषेषवः ॥८४॥
अवन्तिषु द्विजः कश्चिदासीदाढ्यतमः श्रिया।

वार्तावृत्तिः कदर्यस्तु कामी लुब्धोऽतिकोपनः ॥८५॥
ज्ञातयोऽतिथयस्तस्य वाङ्मात्रेणापि नार्चिताः ।
शून्यावसथ आत्मापि काले कामैरनर्चितः ॥८६॥
ज्ञातयो जगृहुः किञ्चित् किञ्चिद् दस्यव उद्धव ।
दैवतः कालतः किञ्चिद् ब्रह्मबन्धोर्नृपार्थिवात् ॥८७
स चाहेदमहो कष्टं वृथाऽऽत्मा मेऽनुतापितः ।
न धर्माय न कामाय यस्यार्थायास ईदृशः ॥८८॥
प्रायेणार्थाः कदर्याणां न सुखाय कदाचन ।
इह चात्मोपतापाय मृतस्य नरकाय च ॥८९
अर्थस्य साधने सिद्धे उत्कर्षे रक्षणे व्यये ।
नाशोपभोग आयासस्त्रासश्चिन्ता भ्रमो नृणाम् ॥९०
स्तेयं हिंसानृतं दम्भः कामः क्रोधः स्मयो मदः ।
भेदो वैरमविश्वासः संस्पर्धा व्यसनानि च ॥९१॥
एते पञ्चदशानर्था ह्यर्थमूला मता नृणाम् ।
तस्मादनर्थमर्थाख्यं श्रेयोऽर्थी दूरतस्त्यजेत् ॥९२॥
लब्ध्वा जन्मामरप्रार्थ्यं मानुष्यं तद् द्विजाग्र्यताम् ।
तदनादृत्य ये स्वार्थं घ्नन्ति यान्त्यशुभां गतिम् ॥९३॥
देवर्षिपितृभूतानि ज्ञातीन् बन्धूंश्च भागिनः ।
असंविभज्य चात्मानं यक्षवित्तः पतत्यधः ॥९४॥

नूनं मे भगवांस्तुष्टः सर्वदेवमयो हरिः।
येन नीतो दशामेतां निर्वेदश्चात्मनः प्लवः ॥१५॥
सुखदुःखप्रदो नान्यः पुरुषस्यात्मविभ्रमः।
मित्रोदासीनरिपवः संसारस्तमसः कृतः ॥१६॥

श्री कृष्ण भगवान बोले कि हे उद्धव अज्ञ मूर्ख जनों करके नाना प्रकार से अपमानित दूषित ताड़ित हुआ भी मोक्ष काम यति साधुमहात्मा धैर्य शान्ति कर निज का संसार कष्ट गति से उद्धार करे उद्धवबोले कि भो भगवंन आप भगवत के शान्ति क्षमादि धर्म में रत पुरुषों से बिना अज्ञ मूढ़ जनों करके किये अपमानापराधादि का सहन करना विद्वानों को भी दुःसह्य होता है। विद्याहीनों की तो क्या कथा है। श्री भगवान बोले कि हे बृहस्पति के शिष्य उद्धव इस लोक में ऐसा साधु महात्मा मिलना दुर्लभ है। कि जो महात्मा दुर्जनों के असह्य दुष्ट कथन दुरुक्तियों से क्षुभित मनको शान्त करने में समर्थ होए। ऐसा शान्त क्षमादि शील साधु महात्मा नहीं है। किस कारण से कि। जैसे मर्मस्थानों में स्थित हुए दुर्जनों के कठोर दुरुक्ति रूप बाण व्यथा करते हैं। तैसे दूसरे मर्म भेदी बाणों करके विद्ध हुआ पुरुष तप्त नहीं होता है ॥ ८४ ॥ तो भी मेरे कहे हुए उपायों से सर्व

अपराध सहन करने को समर्थ हो सकता है। इसमें एक अति पुण्य इतिहास रूप भिक्षु गीता को कहते हैं। कि भृति युक्त निज कर्मों के फलको स्मरण करते हुए ने दुर्जनों से अति तिरस्कृत हुए ने कही है। पूर्व काल में मालवे देश में अवन्तिका पुरी में कोई एक अति श्रीमान् धनाढ्य द्विज था। कृषि वणिजादि वैश्य वृत्ति से धन संग्रह करता था। जैसे स्मृति में कहा है कि जो निजको, धर्म कार्य को, दारा-पुत्र देवता अतिथि भृतादि वर्ग को पीड़ित कर धन संग्रह करे सो कदर्य नाम का कृपण, कहा है। सो द्विज ऐसा कृपण था। तथा कामी, अति क्रोधी, लोभी था ॥ ८५ ॥ तिसके जो जाति के वान्धव थे और जो अतिथि पथिक आते थे। तिनका वाणी मात्र से भी धर्म कर्म हीन गृह में पूजा सत्कार न किया और आपको भी किसी काल में काम भोग पदार्थों से तृप्त न किया है। ॥ ८६ ॥ दुष्ट शील कृपण पुत्र के दारा वान्धवादि दुःखी हुए अनिष्ट करना चाहते हैं। धर्म काम भोग से हीन तिस यक्षों के समान संचित धन के पाञ्च यज्ञ देवता भागी क्रुद्ध होते हैं। तिसी से अति कष्टोपार्जित तिस ब्राह्मण वन्धु का धन नष्ट हो गया। कुछ तो जाति सम्बन्धियों ने छीनकर ले लिया कुछ धन चोर डाकूओं ने लूट लिया। हे उद्धव !

कुछ दैव कर गृहदाहादि से नष्ट हो गया। कुछ काल पाकर धान्यादि सड़ गये। कुछ राजाओं के परस्पर द्वंदों से नष्ट हो गया। ऐसे धन के नष्ट होने पर धर्म, काम भोगों से हीन का स्वजनों ने त्याग कर दिया। तब तिस धन हीन को दीन दुःखी को तीव्र वैराग्य हो गया ॥८७॥ सो भिक्षु ऐसे कहता है कि अहोकष्ट है मैंने खानपानादियों के संकोच से देह को तपाया। मुझ मन्द भाग्य का कष्ट से उपार्जित धन न धर्म के लिये न काम भोगों के लिये हुआ। ऐसा धन केवल मुझको महान् कष्ट परिश्रमकारी ही हुआ ॥८८॥ बहुलता से कृपण जनों को धन किसी काल में भी सुख के लिये नहीं होता है। इस लोकमें काम भोगों से रहित कृपण को धन केवल देह के संताप के लिये ही होता है। और धर्म कर्म न करने से मरे हुऐ कृपण को परलोक में कष्टकारी नरक के लिये होता है। जैसे अल्प श्वेत कुष्ठ अति सुन्दर रूप को नष्टकारी होता है। तैसे ही यशस्वी गुणियोंके महान् यश गुणों को अल्प लोभ नष्ट कर देता है ॥८९॥ नरों को प्रथम नाना नीच जनों की शासना सहकर धन प्राप्ति में कष्ट और कष्टों करके प्राप्त धन में भी तिसकी वृद्धि करने में दुःख होता है। वृद्धि हुए में रक्षा करने का दुःख। रक्षित धन में व्यय खरच हुवे का दुःख। धन के चौरादि से नष्ट होने पर

दुःख। स्त्र के भोग सुखसे भोगने में कष्ट, प्राप्त वृद्धियों में परिश्रम का कष्ट। सर्वदा त्रास भय कष्ट। किसी को दिये धन के आने की चिन्ता का कष्ट। नाश हुए भ्रम पगला होने का कष्ट। अथवा अधर्म में धर्म बुद्धि भ्रम॥६०॥

चोरता, हिंसकता, मिथ्यावादिता, दम्भपना, कामी होना क्रोधी होना, स्तम्भ हंकारी होना, अभिमानी होना, सर्व से भेद रखना, वैर करना, विद्वान् साधु ब्राह्मणादि किसी में भी विश्वास न करना, स्त्र समान धनियों से स्पर्धा करनी, स्त्री, द्यूत, सुरापान का व्यसनी होना, धन का प्राप्ति निमित्त चोरी, हिंसा, झूठ दम्भ, काम, क्रोध, ये छै अनर्थ होते हैं, धन के प्राप्त होजाने पर स्मय स्तम्भ हंकारादि व्यसनों सहित नवानर्थ होते हैं॥६१॥ इतने पन्द्रह अनर्थ पुरुषों को अर्थ रूप धन मूलक माने गये हैं। तिस कारण से मोक्षाभिलाषी बुद्धिमान् जन, अर्थ नामक अनर्थ मूलक अर्थ रूप धन को दूरसे ही त्याग कर दे। क्योंकि भ्राता, पुत्र, स्त्री, माता, पिता सुहृद बान्धवादि काकणी रूप धन की इच्छा करके स्नेह प्रेम को त्यागकर प्राण हारी शत्रु होजाते हैं॥६२॥ इतने अनर्थ धनियों को इस लोक में होते हैं। परलोक में भी निश्चित अनर्थों को कहते हैं कि इस भारत वर्ष भूमि में देवताओं से प्रार्थनीय दुर्लभ मनुष्य जन्म को प्राप्त होकर

तिस में भी द्विजों में अग्रगण्य ब्राह्मणता को प्राप्त होकर, तिस दुर्लभ जन्म का निरादर कर स्वहित मोक्ष पुरुषार्थ को जो नर प्राप्त नहीं करते हैं। वे नर स्वार्थ का घात कर नीच नारकी अशुभ गति को प्राप्त होते हैं। स्वर्ग और मोक्ष के द्वार रूप मनुष्य जन्म को लेकर कौन बुद्धिमान् अनर्थों के धाम धन में राग करेगा ॥ ६३ ॥

देव, ऋषि, पितृ, पञ्चभूत, मनुष्य, पांञ्च यज्ञों से इन पांञ्चों को जातिवालों का यथा योग्य बान्धवों को तथा काम भोगों से निज को यथा योग्य सर्व भागियों को धन का विभाग न करके जो धन संग्रह करता है। वह यक्षों के समान धनकी रक्षा मात्र करने वाला यक्षवित्त हुआ नर अधम नीच नरको में प्राप्त होता है ॥ ६४ ॥ धनो से और धनियों से, काम काम भोगों से कर्मों से मृत्युग्रस्त जनो को क्या प्रयोजन है। अब विवेक युक्त प्रसन्न हुआ भिक्षु कहता कि सर्व देवताओं का रूप पाप अनिष्ट हारी हरि भगवान आज मेरे पर निश्चत ही प्रसन्न हुए हैं। क्यों कि जिस हरि की प्रसन्नता से मुझको भवाब्धि पार तारी नौका रूप सर्व से वैराग्य हुआ है। जिस कृपालु हरि ने इस पुण्य रूप वैराग्य दशा को मुझे प्राप्त कर दिया है अब यदि मेरे जीने का काल शेष होगा तो अखिल स्वरूप निजान-

न्द्रात्मा में अप्रमत्त होकर-सर्व अविद्या जाल को आत्म विद्या करके नाश कर डालूंगा। दैव कृपा से वृद्ध हुआ भी मैं मुक्ति को प्राप्त कर सकता हूं। क्योंकि देव कृपा से राजा खट्वांग एक मुहूर्त शेष आयु से ब्रह्म लोक को प्राप्त हो गया श्री भगवान् उद्धव से बोले कि ऐसा विचार कर अविन्तकापुरी का द्विज श्रेष्ठ संशय ग्रन्थी से मुक्त मुनि भिक्षु असंग होकर विचरता था। नाना दुर्जनों की दुरुक्तियों से तृस्कृत हुआ ताड़ित हुआ भी निर्मान मोह जित संग दोप निवृत्त काम विरक्त रूप से विचरता था॥ ६५॥

यदि कहे कि प्राणी जन दुःख देने वाले है यह नहीं यावत् भी शुभ कार्य कर्त्तव्य है। सो सर्व मन के निग्रह पर्यन्त है। मन का निग्रह करना ही परम समाधि है। जिसका मन निगृहीत है। तिसको दानादि से क्या प्रयोजन है। जो दुर्जय मन शत्रु को वश में न कर और प्राणि जनों को मित्र शत्रु उदासीनादि मानकर शुष्क कलह करते हैं वे मूढ़ हैं। विचार करने पर यदि निज आत्मा से भिन्न हो तो शत्रुमित्रादि दुःख सुखादि देने वाले हों। विचार कर निजात्मा से भिन्न कोई दिखता नहीं है। जैसे स्व जिह्वा के निज दान्तों से कट जाने पर तो निज दान्तो से क्या द्वेष क्रोध किया जासकता है। तैसे ही सर्व प्राणी अपना ही

अंग रूप होने से क्या, द्वेष क्रोध किया जा सकता है। वैसे ही सर्व प्राणी अपना ही अंग रूप होने से क्या द्वेष क्रोध करें। श्री भगवान उद्धव से कहते हैं कि, ऐसे स्वात्म निष्ठा रूप निज धर्म में दुर्जनों के तिरस्कार करके अकम्पित हुए मुनि इस गाथा को गाते हुए भूमिपर रटते हैं। कि पुरुष को सुख दुःख दाता मन से भिन्न कोई नहीं है। जिस हेतु से शत्रु मित्रोदासीनादि सब संसार यह एक मन का ही भ्रम मात्र है। वास्तव सत्य नहीं है ब्रह्मात्म स्वरूप के अज्ञान कृत हैं। जो रज्जु में सर्प के समान अज्ञान से प्रतीत होता है। सो तिसके यथार्थ ज्ञान से निवृत हो जाता है। इस कारण से हे उद्धव सर्व रूप से मन बुद्धि को मुझ परमानन्द में लगाकर इस भिक्षु उक्त योग को ग्रहण करके फिर दुर्जनों के तिरस्कार द्वन्दों करके तिरस्कृत हुए भी खेद युक्त न होंगे। यह द्वन्द सहन करने का साधन रूप विचार भिक्षु गीता है ॥ ६६ ॥

अ० २५ श्लो० २२

सत्वे प्रलीनाः स्वर्यान्ति नरलोकं रजोलयाः।
तमोलयास्तु निरयं यान्ति मामेव निर्गुणाः ॥६७॥

हे उद्धव सत्व गुण की वृद्धि होने पर मरकर सत्वगुण

प्रधान स्वर्ग लोक को जाते हैं। रजोगुण की वृद्धि होने पर मरकर रजोगुण प्रधान मनुष्य लोक को जाते हैं। तमो गुण की वृद्धि होने पर मरकर तमो गुण प्रधान नरक को प्राप्त होते हैं। और तीनों गुणों के कार्य में रागादि अभिमान से रहित अनन्य भक्ति योग से निर्गुण सच्चिदानन्द परब्रह्म में स्थिति हुए जीते हा नर मुक्त निर्गुण परमानन्द पर ब्रह्म को प्राप्त होते हैं ऐसे परा भक्ति रूप ज्ञान निष्ठा से तीन गुणों गुणों से मुक्त हुआ, अविद्या उपाधिकृत जीव भाव को त्याग कर जीवात्मा मुक्त परमानन्द स्वरूप पर ब्रह्म रूप हो जाता है ॥ ६७ ॥

अ० २६ श्लो० १३-३२

स्वार्थस्याकोविदं धिङ्मां मूर्खं पण्डितमानिनम्
योऽहमीश्वरतां प्राप्य स्त्रीभिर्गोखरवज्जितः ॥६८।

निमज्ज्योन्मज्जतां घोरे भवाब्धौ परमायनम्
सन्तो ब्रह्मविदः शान्ता नौर्दृढेवाप्सु मज्जताम्॥६९॥

हे उद्धव दुर्जनों के संग से नीच संसार गति की प्राप्त होतीहै और सज्जनों, वीतराग ब्रह्मविदों की संङ्गति से कैवल्य मोक्ष की प्राप्ति होती है। इसके निर्णय के लिये राजा चक्रवर्ती एल का आख्यान कहते हैं। राजा एल उर्वशी के संग से

विषयों में सक्त हुआ बहुत से दिन रात्रि वर्षों को व्यतीत हुओं को न जानता भया। किसी काल में चक्रवर्ती राज्य के सहित के सहित एल राजा को तृण के समान तुच्छ जानकर उर्वशी ने त्याग दिया। उर्वशी के त्याग कर चली जाने पर राजा एल स्त्रीजित हुए उन्मत्त नग्न रोते हुए उर्वशी के पीछे भागते हैं जब पुण्य पुञ्ज प्रभाव से कुछ विवेक हुआ तब यह गाथा कही कि अहो खेद है कि जो मैं चक्रवर्ती राजा राजों का शिरोमणि हुआ, स्त्रीयों का क्रीड़ा मृग हो गया हूँ। ऐसे अनुतप्त हुआ अपने को निन्दता है। कि धिक् है मुझ मूर्ख को कैसे मूर्ख को धिक्कार है, स्वार्थ मोक्ष के अज्ञाता को मूर्ख होकर पण्डिता के अभिमान कर्त्ता को धिक् है। क्यों कि जो मैं चक्रवर्ती राजा रूप ईश्वरताको प्राप्त होकर स्त्रियों से ऐसे जीता गया हूँ कि जसे गौ गर्दभियों करके लातों से ताड़ित हुए भी बैल और खर निर्लज्ज होकर लातां खाते गौ, गर्दभियों के पीछे पीछे ही भागते हैं। ऐसा मैं हूँ। विवेक विचार कर पुरुरवा राजा कहते हैं कि जैसे अग्नि आहुतियों के समूह से बहुत काल तक पड़ने पर भी तृप्त नहीं होता है। तैसे ही उर्वशी के साथ बहुत वर्षों तक विषयभोगने पर मेरी तृप्ति न हुई। तो बिना सन्तोष वैराग्य विषयभोगों से तृप्ति चाहना महा मूर्खता ही

सिद्ध होती है। राजा एल सर्व संसारियों का संग त्यागकर एक वीत राग ब्रह्मनिष्ठ सन्तों का सत्संग कर ब्रह्मात्म ज्ञान निष्ठ हुआ निर्मान मोह जित संग दोष निवृत काम होकर भूमिपर विचरते थे ॥ ६८ ॥ हे उद्धव तीर्थ देवादि के सेवन से भी सत्संग श्रेष्ठ है। जिनके साथ संग करने से सत्संग कहा जाता है वे सन्त कैसे होते हैं। तिन सन्तों का लक्षण कहते हैं। सर्व सहायता अपेक्षा से रहित १ मुक्त परमानन्द ब्रह्म में चित्त की स्थिति वाले २ नम्रभाव युक्त ३ सब में सम रूप ब्रह्म दर्शी ४ स्त्री पुत्रादि ममता से रहित निर्मम ५ देह में वर्णाश्रमादि अहंताभिमान से रहित निरहंकार होना ६ रागद्वेषादि द्वन्दों से रहित होना निर्द्वन्द ७ क्षुधा निवारक भोजन, शीत निवारक वस्त्र से अतिरिक्त अधिक वस्तु संग्रह न करना नाम निष्परिग्रह है ८ इन आठ लक्षण युक्त सन्त कहे जाते हैं। जैसे तरङ्गों में भयानक घोर समुद्र में नीचे डूबतों को ऊपर आतों को अति दुःख पीड़ितों को गम्भीर जलों में डूबतों को दृढ़ नौका निपुण मल्लाह से प्राप्त की हुई ही रक्षाकारी हो सकती है। तैसे ही देव मनुष्यादि ऊचनीच योनि-रूप तरंगों से भयभीत घोर भवसागर में डूबना रूप नाना जन्म मरण को प्राप्त होतो को जिज्ञासु जनों को परमाश्रय रूप नौका शान्त ब्रह्मविद् सन्त महात्मा

ही हैं। अन्न ही प्राणियों का रक्षक प्राण है। आर्त दीनों को मैं ईश्वर ही एक शरण हूँ। जैसे पुण्य जनों का धर्म ही परम धन है तैसे ही संसार में पतन के भय युक्त पुरुष को मोक्ष शिक्षाकारी सन्त महात्मा ही शरण रूप आश्रय हैं। सूर्य बाहर नेत्रों का सहकारी हुआ, बाहर घटादि विषयों का प्रकाशक है और ब्रह्मविद् सन्त महात्मा ब्रह्मात्म स्वरूप ज्ञान निष्ठा का उपदेश कर बाह्य अनात्मा अन्तरआत्मा का अविद्या तम निवृत्त कर प्रकाश कर देते हैं जैसे सूर्य केवल अन्धकार का नाशकर विद्यमान घटादि वस्तु का प्रकाशक है। तैसे ब्रह्मनिष्ठ सन्तो द्वारा बोधित किया हुआ ब्रह्मात्म ज्ञान अविद्या रूप तम नाशकर विद्यमान सत्य वस्तु मात्र का प्रकाशक है। 'क्योंकि ब्रह्म स्वरूप आत्मा पूर्व ही विद्यमान है।' ९९ ॥

अ० २८ श्लो० १

परस्वभावकर्माणि न प्रशंसेन्न गर्हयेत ।
विश्वमेकात्मकं पश्यन् प्रकृत्या पुरुषेण च ॥१००॥

पूर्ण पुरुष प्रकृति के सहित सर्व संसार को एक आत्मा रूप देखता हुवा परके स्वभाविक कर्मों की न निन्दा करे न प्रसंसा करे ।

अ. २९ श्लो.१२-१४

मामेव सर्व भूतेषु बहिरन्तरपावृतम् ।

इच्छेतात्मनि चात्मानं यथा खममलाशयः ॥१०१॥

ब्राह्मणे पुल्कसे स्तेने ब्रह्मण्येऽर्के स्फुलिङ्गके ।

अक्रूरे क्रूरके चैव समदृक्पण्डितो मतः ॥१०२॥

श्री कृष्ण भगवान् प्रिय निज भक्त को आनन्दित होकर शुखायन मोक्ष का मार्ग कहते हैं कि हे उद्धव मुझ ईश्वर के अनन्य भक्त साधुमहात्माओं करके सेवित पुण्य तीर्थ स्थान देशों का सेवन करे । तथा देवासुर मनुष्यों में जो मुझ परमात्मा के नारद प्रह्लादादि श्रेष्ठ भक्त हैं तिनके जो भक्ति भाव के आचरण है तिन शुभ चरित्रों को सेवन करे। अन्तरंग ज्ञान रूप परा भक्ति को कहते है कि निश्चित सर्व भूत प्राणियों में तथा निज स्वरूप में मुझ ब्रह्मात्म स्वरूप को ही स्थित शुद्ध चित्त वाला जिज्ञासु देखे । यदि कहे कि एक आपका सर्व चराचर में वर्तना कैसे है । तिसका उत्तर यह है । वाहिर अन्तर सर्व चराचर में मैं पूर्ण को । पुनः कैसे को अज्ञान से अनावृत स्वरूप को देखे । जैसे आकाश सर्व चराचर में असंग निर्लेप रूप से व्यापक देखा जाता है । हे महा प्राज्ञ इस प्रकार से केवल ज्ञान दृष्टि वाला हुआ

सर्व भूत प्राणियों को मुझ ईश्वर रूप मानकर सत्कार करता है सो पुरुष पण्डित माना गया है ॥ १०० ॥ उत्तम मध्यमों अधमों में समदृष्टि से सत्कार कर्त्ता को अपण्डित हो माना जावेगा नहीं कि दूसरा दूसरादि का व्यतिक्रमादिदोष प्राप्त होने से ? तिन ज्ञान दृष्टि को लेकर कहते हैं । विषमता चार प्रकार की है एक तो ब्राह्मण में और पुल्कस क्रूर चाण्डाल में जाति से विषमता है । दूसरा चोर में और ब्राह्मण सेवक में कर्म कृत से विषमता है । तीसरा पशु में और अग्नि के चिनगारों में गुण से विषमता है । चौथा शान्त पुरुष में और क्रूर जन में स्वभाव कृत विषमता है इन सर्व विषयों में समदर्शी पुरुष सबको मुझ ब्रह्म को देखने वाला पण्डित माना है । सर्व नरों में सम ब्रह्म दृष्टि करने वाले को शीघ्र ही यह ज्ञान होता है कि सब उत्तम हीनों में स्पर्धा निन्दा, तिरस्कारादि अहंकार के सहित निश्चित ही नाश हो जाते हैं । हे उद्धव आत्म विद्या से सर्व को ब्रह्मात्म स्वरूप देखते हुए छिन्न संशय पुरुष सर्व क्रिया मात्र से निष्कर्त्तव्य हो जाता है । हे उद्धव ? अब आप इसअमृत को पान करते हुओं पवित्र बदरिकाश्रम को चले जाएं । क्योंकि, मुझ ईश्वर से त्यागी हुई इस भूमीपर अधर्म कपटादि युक्त जनों में वास करना

योग्य नहीं है। ऐसी श्री कृष्ण भगवान् की आज्ञा मानकर उद्धव बदरीकाश्रम को चले गये ॥ १०१ ॥

योगेच्छामात्रयोपन्न स्तत्त्यागो योग उच्यते। यानं चैव सुरापानं योगं चोरैरिवम्। प्रतिष्ठा शूकरी विष्ठा त्रयं त्यक्त्वा सुखी भवेत् ॥ सत्यात्प्रवर्धते धर्मो दयादानं विवर्धते। क्षमया तिष्ठति धर्मः क्रोधाद्धर्मो विनश्यति ॥ न सा सभा यत्र न सन्ति वृद्धा, वृद्धा न ते ये न वदन्ति धर्मम्। धर्मः स नो यत्र न सत्यमस्ति, न तत्सत्यं यच्छलेनानुविद्धम् ॥

सङ्गत्यागं विदुर्मोक्षं सङ्गत्यागादजन्मता। सङ्गं त्यज त्वं मनसां जीवन्मुक्तो भवानघ ॥ सङ्गो हि बाध्यते लोके निःसङ्गः सुखमश्नुते। तेन सङ्गः परित्याज्यः सर्वदा सुखमिच्छता ॥

अथ नित्यो नारायणः। ब्रह्मा नारायणः। शिवश्च नारायणः। शक्रश्च नारायणः। कालश्च नारायणः। दिशाश्च नारायणः। विदिशाश्च नारायणः। ऊर्ध्वं च नारायणः। अधश्च नारायणः। अन्तर्बहिश्च नारायणः। नारायण एवेदं सर्वं यद्भूतं यच्च भव्यम्। निष्कलङ्को निरञ्जनो निर्विकल्पो निराख्यातः शुद्धो देव एको नारायणो न द्वितीयोऽस्ति कश्चित्। य एवं वेद स विष्णुरेव भवति स विष्णुरेव भवति। एतद्यजुर्वेद शिरोऽधीते ॥

इति श्रीभागवतसारबिन्दौ सारार्थदीपिकायां भाषाटीकायामेकादश स्कन्धः 卐 हरिःॐ तत्सत् 卐

॥ अथ द्वादश स्कन्धः प्रारम्भः १२ ॥

अ० ३ श्लो० ३३-५१-५२

अव्रता बटवोऽशौचा भिक्षवश्च कुटुम्बिनः ।
तपस्विनो ग्रामवासा न्यासिनोऽत्यर्थलोलुपाः॥१॥
कलेर्दोषनिधे राजन्नस्ति ह्येकोमहान् गुणः ।
कीर्तनादेव कृष्णस्य मुक्तसङ्ग परं व्रजेत ॥ २ ॥
कृते यद् ध्यायतो विष्णु त्रेतायां यजतो मखैः ।
द्वापरे परिचर्यायां कलौ तद्धरिकीर्तनात् ॥ ३ ॥

शुकदेवजी राजा परीक्षित् से, चार युगों के पुरुषों का वर्ताव कहते हैं सतयुग में सत्व गुण की वृद्धि होने पर पुरुषों के मन बुद्धि इन्द्रिय शुभ सात्विकी कार्यों में प्रवृत्त होते थे। ज्ञान तपादि में जब रुची होती हैं तब कृतयुग जानना चाहिये । और जब कर्मों में पुरुषों की भक्ति प्रीति होती है । तब रजोगुणवृत्ति प्रधान रूप त्रेतायुग जानना जब लोभ, असन्तोष, मान, दम्भ पूर्वक काम्य कर्मों में पुरुषों की प्रीति होती है तब रजः तमो गुण प्रधान द्वापर जानना । जब झूंठ, हिंसा, विषाद शोक मोह भय दीनता आदि कार्य युक्त पुरुष होते हैं । तब तमो गुण प्रधान कलि-

युग जानना पूर्ण कलियुग के सूचक पतित अपवित्र दर्शन मात्र से पाप-जनक यह है। वेद शास्त्र विहित आचार शौच व्रतादि से, तथा गुरु सेवादि रहित ब्रह्मचारी होजायगें ब्रह्म-चर्य-व्रत न रक्खेंगे और कुटुम्बवाले गृहस्थाश्रमी किसी न किसी प्रकार की याचना भिक्षा मांगने परायण होजायगें भिक्षा देने वाले न होगें। वान प्रस्थ तपस्वी वनवास को त्यागकर ग्रामों में वास करने वाले होजएगें। और सन्यासी यति त्याग वृत्ति को तिल्लाञ्जली देकर धनके अति लोलुप लोभी धन संग्रह करने वाले होजाएगें। यह कलियुग के स्वागत करने के पूर्ण चिन्ह हैं। सर्व ही वर्णाश्रमी स्व स्व मोक्षकारी शुभ कृत्यों का त्याग कर। जिन अशुभ कृत्यों के करने से यहां निन्दा परलोक में दुर्गति निश्चित होएगी तिन अशुभ कृत्यों के करते हुए शुभ मोक्ष की प्राप्ति के मिथ्या अभिमानी होगें। ऐसे जन कलियुग के स्वागत का नगारा बजाने वाले निश्चित् ही है ॥१॥ परीक्षित् ने कहा भो भगवन्। ऐसे कलि के स्वागत करने-वाले जनों का कैसे उद्धार होगा। श्री शुकदेवजी बोले कि हे राजन १ दोषों के निधि कलियुग में एक महान् कल्याणकारी गुण यह है कि सर्व संसारी सङ्गों से मुक्त होकर राग द्वेष रहित शुद्ध चित्त

से परमानन्द, "श्रीकृष्ण गोविन्द, माधव, मुकुन्द, हरे, मुरारे। शम्भो, शिवेश, शशि शेखर, शूलपाणे, दामोदर अच्युत, जनार्दन, वासुदेव, ऐसे नाम कीर्तन करने से निश्चित शुद्ध चित्त हुआ ज्ञान द्वारा मनुष्य प्राणी परमानन्द परब्रह्म को प्राप्त होजाता है ॥२॥ सो यह सर्व हरि के कीर्तन से कलियुग में ही प्राप्त होता है अन्य युगों में नहीं। क्योंकि कहा है, कि जो कृत युग में हरि व्यापक विष्णु का ध्यान करने से फल होता था। और त्रेता युग में जो विष्णु का यज्ञों करके यजन करने से फल था। और द्वापर में जो विष्णु की प्रतिमा मूर्तियों का पूजन करने से फल होता था। कलि-युग में सो सर्व फल मुक्त सङ्ग विरक्त के पापविद्याहारी हरि के नाम कीर्तन करने से प्राप्त होता है। इस कारण से हे राजन् सर्व सङ्गों त्यागकर समाहित चित्त हुआ तिस परमानन्द केशव को हृदय में स्थापित करो। तिस सच्चिदा-नन्द कृष्ण को मन में स्थिर करने से परमानन्द पर ब्रह्म को प्राप्त हो जाओगे ॥ ३ ॥

अ० ५ श्लो० २-४-५-११-१२

त्वं तु राजन् मरिष्येति पशुबुद्धिमिमां जहि।
न जातः प्रागभूतोऽद्य देहवत्त्वं न नङ्क्ष्यसि ॥४॥

स्वप्ने यथा शिरश्छेदं पञ्चत्वाद्यात्मनः स्वयम् ।
यस्मात् पश्यति देहस्य तत आत्मा ह्यजोऽमरः ॥५॥
घटे भिन्ने यथाऽऽकाश आकाशः स्याद् यथा पुरा ।
एवं देहे मृते जीवो ब्रह्म सम्पद्यते पुनः ॥६॥
अहं ब्रह्म परं धाम ब्रह्माहं परमं पदम् ।
एवं समीक्षन्नात्मानमात्मन्याधाय निष्कले ॥७॥
दशन्तं तक्षकं पादे लेलिहानं विषाननैः ।
न द्रक्ष्यसि शरीरं च विश्वं च पृथगात्मनः ॥८॥

हे राजन् आप इस परमहंस संहिता रूप श्री भागवत को सुनकर कृत कृत्य हो चुके हो। इस अर्थ को स्मरण कराते हुए शुकदेवजी कहते हैं कि हे राजन्! आप जो कहते हैं कि मैं मर जाऊंगा। इस अविवेक रूप पशु बुद्धि को त्याग देवें। इस अविवेक रूप पशु बुद्धि के त्याग के कारण आप नष्ट न होओगे। क्यों कि जैसे देह पूर्व उत्पन्न हुआ आज निश्चित ही नष्ट हो जाएगा। तैसे आत्म स्वरूप न तो पूर्व काल में उत्पन्न हुए हैं। और न आज देह के समान आप नष्ट ही होओगे क्योंकि जो उत्पत्ति वाला होता है सो ही नाशवाला होता है और आप एसे नहीं हो ॥ ४ ॥ देह के

धर्म जन्मादि को दृष्टान्त से कहते हैं। स्वप्न में जैसे अपने शिर छेदन को और निज मरण को आप स्वयं देखता है तैसे जाग्रत में भी बाल, युवावस्थाओंके अपने देहों को नष्ट होते स्वयं देखता है। जिस कारण से देह की बाल युवा जरादि सर्वावस्थाओं का दृष्टा आत्म स्वरूप आप हो। यह बालादि अवस्था आत्मा में भ्रम मात्र है। तिस कारण से आत्माब्रह्म स्वरूप अजर अमर हैं॥ ५ ॥ जिस कारण से देहोपाधि के निमत्त से ही आत्मा को यह जन्मादि संसार भ्रम रूप है। तिन देहादि उपाधियों के निवृत हुए आत्मा मुक्त कहा जाता। दृष्टान्त जैसे घटोपाधि से पूर्व आकाश था। तैसे घटके फूटने पर घटांतरवर्ति अवकाश महाकाश रूप ही हो जाता है। ऐसे ही ब्रह्मात्म ऐक्य तत्व ज्ञान से कारणादि देहों के नाश हुए त्वं पद का लक्ष्यार्थ जीवात्मा ततपद के लक्ष्यार्थ सच्चिदानन्द पर ब्रह्म स्वरूप को प्राप्त हो जाता है॥ ६ ॥ ब्रह्मात्म स्वरूप के अभेद रूप से विचार करने का प्रकार कहते हैं। कि जो परमानन्द परम धाम मैं हूं, सो ही निश्चित परमानन्द परमधाम ब्रह्म है। जो सच्चिदानन्द पर ब्रह्म है। सो ही निश्चित सच्चिदानन्द मैं हूं। तिसमें अहं ब्रह्म इस निश्चित भावना से जीव के शोक, मोहादि

की निवृत्ति हो जाती है। और ब्रह्माहं इस निश्चित भावना से परब्रह्म के परोक्षता की निवृत्ति हो जाती है। यह ब्रह्म जीवात्मा का परस्पर ओत प्रोत दिखला दिया। ऐसे विचार करता हुआ हे राजन्। निरुपाधिक ब्रह्मात्म स्वरूप में मन को स्थापित करे॥ ७॥ ऐसे ब्रह्मात्म स्वरूप में अभेद रूप से मन लगाने पर। विष युक्त जिह्वा के लपालप करते हुए मुखों करके पाद में काटते हुए तक्षक सर्प को तथा संसार को, और निजदेह को ब्रह्मात्म स्वरूप से भिन्न न देखोगे। दयालु शुकदेवजी शुद्ध शिष्य के कृतकृत्यता की परीक्षा करने के लिये फिर पूछते हैं। कि हे तात प्रिय, जो आपने, चराचर के आत्मा हरि की लीला चेष्टा पूछी थी तिनका कथन कर दिया। अब आप क्या सुनना चाहते हो। यहां शुकोक्ति की उपसंहार रूप समाप्ति हो गई। जन्माद्यस्य यतः। कि जिस परब्रह्म से इस प्रपञ्च के जन्म स्थिति, लय होते हैं। सो परब्रह्म सर्व का अधिष्ठान है। यहां से श्री भागवत का उपक्रमरूप आरम्भ हुआ था। और अहं ब्रह्म, परं धाम, कि मैं जीवात्मा परमानन्द पर ब्रह्म स्वरूप हूँ। यह श्री भागवत का उपसंहार रूप समाप्ति है। क्यों कि जिस परब्रह्म के कथन से आरम्भ किया है। तिसही पर ब्रह्म के कथन से समाप्ति करने का

नाम उपक्रम उप संहार कहा जाता है। क्योंकि अज्ञान शोक मोहादि कृत जो जीवपना है। तिस जीवपने को परमानन्द पर ब्रह्म के साथ अभेद रूप एकता के ज्ञान से निवृत्त करने के लिये ही सर्व वेदोपनिषद वेदान्तों की प्रवृत्ति है। और यह श्री भागवत सर्व वेदो पनिषद वेदान्तो का सार रूप है। इसमें तो अज्ञान शोक मोहादि कृत जीव पने को ब्रह्मात्म स्वरूप ऐक्य अद्वैत ज्ञान से निवृत्त कर ब्रह्माहं परमं पदम्। ऐसा बोधन करने से ही श्री भागवत को सर्व वेदोपनिषद वेदान्तो का सार कहा जाता है॥ ८॥

तद् ब्रह्मानन्दमद्वन्द्वं निर्गुणं सत्यचिद्घनं विदित्वा स्वात्मनो रूपं न बिभेति कदाचनः॥

अ० ६ श्लो० ५

भगवंस्तक्षकादिभ्यो मृत्युभ्यो न बिभेम्यहं।
प्रविष्टो ब्रह्मनिर्वाणमभयं दर्शितं त्वया॥६॥

श्री शुकदेवजी से पूछा हुआ राजा परीक्षित प्रसन्न होकर नम्र भाव से निज की कृत कृत्यता कहते हैं। कि भो भगवन् आप करुणा सागर से अनुगृहित हुआ मैं पूर्ण सिद्ध मनोरथ हो गया हूँ। तीन तापों से तप्त अज्ञानी जनों पर जो आप अच्युत परमानन्द ब्रह्मनिष्ठ महात्माओं की कृपा है। सो कोई आश्चर्य नहीं है। क्यों कि दयानिधि

पूर्ण काम जीवन्मुक्त महात्माओं का, तापतप्त दीन दुःखी जनों पर कृपा करने का स्वभाव ही है। भो भगवन् अब मैं तक्षकादि सर्पों से तथा नाना मृत्युओं से भय नहीं मानता हूँ क्योंकि आप दयानिधि से परमहंस संहिता रूप श्री भागवत के उपदेश द्वारा आत्म रूप से दर्शित सर्वानर्थों से रहित निर्भय परमानन्द कैवल्य रूप ब्रह्म में प्रविष्ठ हूँ। इस कारण से निर्भय सच्चिदानन्द अद्वय ब्रह्म में हूँ। जो आपने कहा था कि अब आप क्या सुनना चाहते हो। तिस कृतार्थता की परीक्षा के विषय में राजा परीक्षित का यह कथन है। कि अब मैं पूर्ण सिद्ध मनोरथ हो गया हूँ। केवल आप की कृपा दृष्टि से युक्त आज्ञा चाहता हूं। कि वाणी सहित सर्व इन्द्रियों को नियमन कर सर्व कामना युक्त हुआ चित्तको परमानन्द ब्रह्म में प्रविष्ठ कर प्राणों को त्यागना हूँ। क्योंकि अद्वय ब्रह्मात्म ज्ञाननिष्ठा करके अज्ञान का निरास कर आप भगवत्पूज्यपाद ने कैवल्य मोक्ष पद दर्शा दिया है अवशेष कर्त्तव्य करने का कुछ नहीं रहा हैं। यह द्वादश स्कन्ध के छठे अध्याय में कृतकृत्य हुवे राजा परीक्षित के प्रश्नोक्ति की समाप्ति होगई। सूतजी शौनकादि ऋषियों से कहते हैं कि शुकदेवजी शिष्य की कृतार्थता को देखकर अति प्रसन्न हुवे आज्ञा देकर ब्रह्मनिष्ठ भिक्षुओं के साथ

निर्मान-मोह जित सङ्गदोष, निवृत्त काम हुवे चलेगये। और राजर्षि परीक्षित गङ्गा के तट पर उत्तर मुख होकर मन को परमानन्दात्मा में लगाकर ब्रह्मस्वरूप में स्थिर होगये, संसार का निजदेह का तथा तक्षक सर्प के काटने का ब्रह्मात्म स्वरूप से भिन्न किसी वस्तु का भान न रहा। तब तक्षक सर्प ने ऋषि शाप से प्रेरित होकर राजा को काटा ब्रह्म स्वरूप राजर्षि का देह तक्षक सर्प के विषरूपाग्नि से सर्व के देखते हुवे भस्मीभूत होगया तब देवताओं ने दुन्दुभि बाजे बजाए और प्रसन्न होकर नाना प्रकार के पुष्पों की वर्षा की ॥९॥

अ. १३ श्लो. १२

सर्व वेदान्त सारं यद् ब्रह्मात्मैकत्व लक्षणम्।
वस्त्वद्वितीयं तन्निष्ठं कैवल्यैक प्रयोजनम् ॥१०॥

जो श्रीमद्भागवत सर्व वेदोपनिषद् वेदान्तो का साररूप है तिस श्रीभागवत का ब्रह्म जीवात्मा की एकतारूप अद्वैत विषय है, और अद्वितीय वस्तु अनर्थ की निवृत्ति, परमानन्द की प्राप्ति रूप कैवल्य मोक्ष ही एक प्रयोजन रूप फल है जिसका, ऐसा श्रीमद्भागवत है वीतराग परमहंसो के जानने योग्य वैराग्य भक्ति सहित शुद्ध परम श्रेष्ठ ब्रह्म ज्ञान ही श्री भागवत में गायन किया गया है। सब कर्मों की उपरमता रूप नैष्कर्म्यता कैवल्य मुक्ति का ही प्रकाशक श्री भागवत

है। यह महान् अद्भुत ज्ञान प्रदीप रूप श्री भागवत विष्णु भगवान ने ब्रह्मा से कहा ब्रह्मा ने नारद से कहा है नारद ने वेदव्यास से कहा है। व्यासजी ने शुकदेव से कहा है शुकदेव ने राजा परीक्षित से कहा है तिस सत्य ज्ञानानन्द स्वरूप श्री नारायण नामक परम तत्व को "धीमहि" हम ध्यान करते हैं। इस गायत्री से जैसे उपक्रम रूप प्रारंभ किया था। तिसी गायत्री नाम से उप संहार रूप समाप्त से इस श्री भागवत को ब्रह्म विद्या रूपता दर्शादिया है ॥१०॥

स्वबाल चपलालापैः श्री श्रीकृष्णजगद्गुरो।
प्रीयतां परमानन्द दयाब्धे सद्गुरो स्वयम् ॥

इति श्रीभागवतसारबिन्दौ सारार्थदीपिका-
भाषाटीकायां श्रीमत्परमहंस परिव्राज-
काचार्योदासीन वर्य कृष्णानन्द शिष्य
ज्ञानप्रकाश विरचितायां द्वादश
स्कन्धः १२ समाप्तः

संपूर्णोऽयं ग्रन्थः। श्रीपरमानन्द कृष्णार्पणमस्तु ॥

卐 हरिःॐ तत्सत् 卐